



समस्यामूलक उपन्यासका  
प्रेमचन्द

भारत  
डा० महन्ड मटनागर  
॥३३॥ वा-१३३३

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय  
वागपसी—१

प्रचारक

धोमून्नाथ बेरी

हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय

पो० बॉ० नं० ७० जालबापी

वाराणसी—१

द्वितीय संस्करण—१९००

१९६१

मूल्य पाँच रुपये मात्र

मूल्य

मेराबाब पुता

बम्बई विटिंग स्टोअर

बंगलौर वाराणसी—१

## भूमिका

डा० मन्त्र भटनागर का पुस्तक 'समस्यामूलाक उपन्यासकार प्रेमचन्द' पढ़कर  
 मझे बड़ी प्रसन्नता हुई। भटनागरजी में प्रेमचन्द के जीवन-दरम और मानवता  
 वाली पद्य का बहुत उसमें बिरमपल दिया है। वे मानते हैं कि प्रेमचन्द मानवता  
 वाली सत्यक थे। गार्धीबाबा या साम्यवादी मिडाला में उग्राने सीधे प्रेरणा  
 पटल्य नहीं था। उग्रान जो कृष्ण जाना सीधा निवा बह सब धन धनुमक  
 मात्र से। इगामिन् उनक गार्हिरय में धररास्य शक्ति है। गार्धीबाबा और साम्य  
 बाबा कोई मानवता के बिरापी नहीं हैं धन प्रेमचन्द के बिचारों में जगह-जगह  
 बलों की मन्क मिल जाता है। मन्कि उनका मानवताबाद सबक उभरा बाखना  
 है। यह मानने में तो शायद बठिनाई धनुमक की आय कि प्रेमचन्द गार्धीबाबा  
 या साम्यबाबा मिडाला में कभी प्रभावित ही नहीं हुए, परन्तु यह स्वीकार करने  
 में कोई आपत्ति नहीं कि प्रेमचन्द पूणरप स मानवतावादी थे। उनके उपन्यासों  
 में धीरे सगा में जड़-जपति मोर—बाह बह परपरा प्राण्य मुबिधा के रूप में हा  
 जमाना या महाजनी बलि का परिणाम हा। या उक्थनर स्तर के परा में उप  
 मर्य हा मानव की रबाभाबिक मरुबलियो को र्ण्य करता है। प्रमचन्द में सबबाई  
 धीरे ईमानदारी का मनुष्य का मबन बहा उभापक पुण्य सबभ्य है। प्रम उनकी  
 दृष्टि में पावनवारी तरह है। अब यह मनुष्य में मबमुष उणि होता है ना उन  
 लाम धीरे सबबाई की धार उगुग करता है। भटनागरजी ने बड़ी कूठनता  
 पुबक प्रमचन्द की इन मानवतावादी दृष्टि का बिरमण्य दिया है। उनका यह  
 सबक बिन्दुन टीक है कि प्रेमचन्द में धोडापिक मन्किता का बन्दन का के  
 उभासन्किता को मनोबुलि के शिरद उभया तीवार किया है। उगनेने उम मर  
 कनता का पद्य दिया है जो रनिन है, पेन्नि है धीरे निरान्य है। पुनक में प्रम  
 चन्द के उपन्यासों धीरे मगों का उउररग दहर उगान इन बान का सप्यावरण  
 दिया है।

प्रेमचन्द्री साहित्य मन्त्र के । उन्होंने कथन पात्रों के मुँह से ही विचार नहीं व्यक्त किए हैं बल्कि पात्रों और घटनाओं के बीच गतिमय संघटना के द्वारा घपने मत्त की व्यञ्जना की है । मटनागरजी ने इस पहलु पर अधिक ध्यान नहीं दिया है । वही प्रेमचन्द की कलम से निकल हुए विविध प्रयोगों के उद्गारों से ही अपने कलात्म्य का समर्थन करते हैं । उनके निष्कर्ष स्वीकार बोध्य है परन्तु साहित्य के विचारों की सभी विज्ञानियों का व सन्तुष्ट नहीं करत । एसा जान पड़ता है कि समस्या का स्वरूप स्पष्ट करके प्रेमचन्द के उद्गारों से उनका गमा जान की ओर हँसना ही उनका मक्य है । इस काम की उन्होंने बड़े परिश्रम और कोशिश से सन्तुष्ट किया है । इस विषय में उनका प्रयत्न सफल हुआ है ।

पुस्तक बहुत उपयोगी हुई है । प्रेमचन्द के विचारों को उन्होंने बड़ी स्पष्टता और दृष्ट्या के साथ व्यक्त किया है । मुख्य धारा है कि साहित्य-रक्षक और समाज नहीं इससे समान रूप से ध्यान दे पा सकेंगे । हमारे देश की बहु-विधिय समस्याओं का इनमें उद्घाटन हुआ है और प्रेमचन्द की मनीषी का दिया हुआ समाधान इसमें स्पष्ट हुआ है । मटनागर जी से और सुन्दर रचनाओं की धारा सहृदयजन करने । अती शमकामना है कि परमात्मा उन्हें बीप जीवन सुन्दर स्वास्थ्य और अधिकारिण शक्ति प्रदान करे ।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी  
 अध्यक्ष हिन्दी विभाग  
 पञ्जाब विश्वविद्यालय ।



## वक्तव्य

'समस्यामूलक' उपन्यासकार प्रेमचंद मरा शोध-प्रबन्ध है जिसे मैं अर्द्धेय डा० विजयमोहन शर्मा जी के निवेशन में सिंगरर नामपुर बिरबबिद्यालय को प्रस्तुत किया था। इस प्रबन्ध में प्रेमचंद जी के मात्र औपन्यासिक दृष्टिकोण पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। यह था उन्हें समस्यामूलक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। प्रतिपाद्य विषय से संबंधित जिनकी बातें स्पष्ट थीं प्रायः सभी समेट ली गई हैं। प्रेमचंद जी बिरब से प्रमुख उपन्यासकारों में स्थान पाने के अधिकारी हैं। उनकी उत्तरोत्तर बढ़ती लोकप्रियता उनकी कृतियों के नकारमक मूल्य का अनेकानेक प्रमाण है। समस्यामूलक का वास्तविक मूल्यांकन तरब पर दृष्टिकोण करने पर ही प्रेमचंद जी के उपन्यासों का वास्तविक मूल्यांकन संभव है।

अर्द्धेय डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी जी न पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे जो आशीर्वाद दिए हैं उनका प्रति उनका हृदय से आभारी हूँ। प्रायः जिन विद्वानों ने इस प्रबन्ध को पढ़कर अपनी अपनी प्रतिक्रिया में मुझे जो प्रशंसा करायी उनके प्रति भी मैं कृतज्ञ हूँ। आचार्य जिनय मोहन शर्मा जी के लिए तो आभार का हर शब्द छोटा है। उन्हीं की प्रेरणा में यह प्रबन्ध लिखा जा सका है। पुस्तक को प्रकाशित कराने में भाई सुधाकर पाल्देय जी से मुझे सहायता मिली। उनसे ही अग्रवाद के पात्र हैं। भाई दीनद्वयचंद्र बेदी जी ने इसके अग्रवाद और प्रकाशन में जो अत्यंत सहायता दी। उनसे मुझे प्रशंसा और मनोरंजन है। वे उन्हीं हों के आभार प्रकाशक हैं। धारा है, 'समस्यामूलक' उपन्यासकार प्रेमचंद की स्थापना जो समीक्षक और शोधार्थी परमार्थों। उनके विचारों में मैं आभारिण ही हूँ।

इंदौर [ म० प्र० ]  
दि० १ जनवरी १९

—महेन्द्र मटनागर









## विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-निर्देश
१ प्रवेशक	११
२ प्रेमचन्द के समय का भारत	१३
३ प्रेमचन्द-युग में मध्यमम की स्थिति	२५
४ प्रेमचन्द की साहित्य-सम्बन्धी मान्यताएँ	३५
५ प्रेमचन्द जीवन-काल	४६
६ मानवतावादी प्रेमचन्द	६५
७ भारतीय स्वाधीनता की समस्या	७७
८ रिमासर्तों और बेरोज़गारी की समस्या	८७
९ साम्प्रदायिक समस्या	९८
१ शैक्षणिक समस्या	१०५
११ औद्योगिक समस्या	११२
१२ ग्रामीण-जीवन (किसान-बग की समस्याएँ)	१२५
१३ प्रकृत-बग	१३६
१४ बरसा-बर्ष	१४५
१५ विधवा-समस्या	१५५
१६ वैवाहिक समस्या	१६५
१७ पारिवारिक जीवन के पहलू	१८०
१८ समस्यामुक्त उपन्यास और प्रेमचन्द	१९





समस्यामूलक



उपन्यासकार

प्रेमचन्द





## प्रवेशक

सबप्रथम प्रस्तुत प्रबन्ध के शीर्षक में प्रयुक्त समस्यामूलक शब्द की व्याख्या प्रेषित है। 'समस्या-प्रधान' और 'समस्यामूलक' शब्दों के शास्त्रीय अर्थ में अंतर है, लेकिन विरोध नहीं है। प्रस्तुत प्रबन्ध का सीधा सम्बन्ध प्रेमचन्द के उपन्यासों में उदाई परी समस्याओं से है जिनके अरथ प्रेमचन्द के उपन्यास समस्यामूलक अथवा समस्याओं के उपन्यास मन बातें हैं। प्रेमचन्द-साहित्य के प्रमुख धारणात्मक प्रेमचन्द के उपन्यासों को समस्यामूलक या समस्या-प्रधान नहीं मानते। सामाजिक उपन्यास और व्यक्ति-चरित्र के उपन्यास नामक दो श्रेणियों में उनके उपन्यासों की मसुदा करते हैं। मेरा इमने तात्त्विक मतनेह है।

इसमें सर्वदेह नहीं कि प्रेमचन्द का प्रायः सभी उपन्यास सांघजिक है पर उन्हीं सामाजिकता किसी न किसी समस्या पर ही आधारित है। प्रेमचन्द का कोई भी उपन्यास ऐसा नहीं है जिसमें किसी समस्या को न उठाना गया हो। प्रस्तुत वे समस्यामूलक उपन्यासकार ही वे। वहाँ तक कि किसी-किसी उपन्यास में तो अनेक समस्याएँ प्रधान-समस्या के साथ बराबर बढ़ती हैं और छोटी-छोटी समस्याओं की धार तो शीघ्र ही अन्ततः ही बना रहता है। जहाँ भी अन्ततः निम्ना है प्रेमचन्द इन समस्याओं को बिना धार नहीं रहे हैं। मेरी धारणा है कि प्रेमचन्द के उन्नत उपन्यासों का अन्ततः केवल हिन्दुस्तान की सामाजिक राजनीतिक धार्मिक पारिवारिक आदि समस्याओं को धरने उपन्यासों में प्रस्तुत करना रहा है। समस्याओं का प्रथम प्रधान है। ये सब बातें समस्याओं को ही केन्द्र मानकर बढ़ती हैं और संकुचित होती हैं। समस्यामूलक उपन्यास में उपन्यासकार का अन्ततः केवल समस्या को रखने और उसे बुलझाने या क्यों-क्यों छोड़ देने की धार रहता है। उपन्यास ने अन्य सामान्य तत्त्व अन्ततः अन्ततः न चित्रित बातें हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में भी इतने बड़ी बात मिलती है। बिना इस दृष्टिकोण की सम्मुख रखे प्रेमचन्द के उपन्यासों का शास्त्रीय अध्ययन करना असंभव होगा। प्रेमचन्द पर कुछ धारणाओं ने प्रभावकारी होने का दावेप नपाया है। यह दावेप बिना उनके मूल अन्ततः की समझे किया गया

क्या है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यास हीर्षक निबन्ध में साहित्य और प्रचार के सम्बन्ध में लिखा है—

‘जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक मूल के प्रचार के लिए की जाती है तो वह अपने ऊँचे पर से बिर जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन धार्मिक परिस्थितियाँ इतनी तीव्र प्रति से बदन रही हैं इतने मए-नए विचार पैदा हो रहे हैं कि कश्चित् पर कोई लेखक साहित्य के धार्मिक को ध्यान में रख ही नहीं सकता। यह बहुत मुश्किल है कि सेवक पर इन परिस्थितियों का असर न पड़े वह उनसे प्रभावित न हो। यही कारण है कि धार्मिक भारतीय के ही नहीं यूरोप के बड़े-बड़े विद्वान भी अपनी रचना द्वारा किसी बात का प्रचार कर रहे हैं। वे इसकी परवाह नहीं करते कि हमने हमारी रचना जीवित रखनी या नहीं अपने मन की पुष्टि करना ही उनका ध्येय है, इसके सिवाय उन्हें कोई इच्छा नहीं। मगर यह क्योंकर मान लिया जाय कि जो उपन्यास किसी विचार के प्रचार के लिए लिखा जाता है, उसका महत्त्व अल्पक होता है? विक्टर ह्यूगो का ‘ला मित्रेबुम टासटाय के अनेक अन्य विद्वानों की किन्हीं ही रचनाएँ विचार प्रदान करते हुए भी उच्च कोटि की साहित्यिक हैं और जब तक उनका धारणक कम नहीं हुआ। प्रायः तो यह बात धारि बड़े-बड़े सेवकों के अर्थ प्रचार ही के उद्देश्य से लिखे जा रहे हैं।

साहित्य और प्रचार के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के उद्भूत विचार इस बात की पुष्टि करते हैं कि उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय जन-जीवन की समस्याओं को विचार-श्रम उपन्यासों से माध्यम से प्रस्तुत करना था। वे अपने युग की समस्याओं को समझने से और उन्हें को लेकर उपन्यास-लेख में आए। वेत को विभिन्न समस्याओं पर वे अपने विचार स्वतंत्र सेगों में भी व्यक्त कर मन्ने थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। विचारों का प्रचार एवं समस्याओं के प्रति जनता का ध्यान आकर्षित करने के लिये किसी कलात्मक माध्यम की आवश्यकता होती है। प्रेमचन्द ने यह कलात्मक माध्यम कथा-साहित्य चुना। यह बहुत कुछ सेवक की अपनी व्यक्तिगत रसि और विषयवस्तु पर निर्भर रहता है। प्रेमचन्द कलाशीली नहीं थे। औपन्यासिक कथा का उन्होंने अपने विचारों को व्यक्त करने का साधन बनाया था मान्य नहीं। वे किसी भी रचना में कलात्मक धारणक मात्र रूप सीमा तक प्रतिशर्ष बालते थे कि उनके समाज में वह रचना जीवन और प्रभावशाल्य न हो जाय। अपने उपन्यास हीर्षक लेख में वे अपने मन पर लिखते हैं—

उपन्यासकार को इतना प्रयत्न करना चाहिए कि उसके विचार पराजय से बच सकें हों। उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समानेष्ट से कोई विघ्न न पड़ने पाए। अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।<sup>१</sup>

उपन्यास-कला के व्याख्याकार के रूप में प्रेमचन्द की उपर्युक्त मान्यता थी। किसी सीमा तक वे इसमें सफल भी हुए हैं। मन्त्रिण उपन्यासकार प्रेमचन्द अपनी स्वयं की मान्यताओं को अतृप्त-अतृप्त छोड़ जाते हैं और सीधे भाष्यकारों के रूप में घा उपस्थित होते हैं। उनके उपन्यासों में ऐसे स्वतन्त्र घने हैं। उन्हीं स्वतन्त्रों के आधार पर कुछ आलोचक उन पर प्रचारवादी होने का आरोप लगाते हैं। मूल प्रश्न यह है कि प्रेमचन्द ऐसा क्यों करते हैं? उपन्यास-कला की व्याख्या करते हुए जिस तथ्य का उन्होंने विरोध किया है उसे वे उपन्यास लिखते समय क्यों दृष्टि से मोक्ष्य कर जाते हैं? उपन्यास-कला पर सैद्धांतिक जो उनके विचार हैं पृथक् उनके उपन्यास-साहित्य में क्यों नहीं मिलते? इसका एक मात्र उत्तर है—उनका समसामयिक प्रति प्रेम। सामान्य धोष्याधिक कला-सम्बन्धी विचारों को प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलते हैं, उनका अरथ बहुत कुछ उनके समसामयिकों के प्रति गहरा आकर्षण है। वे सभी तथ्यों को पीछे छोड़ कर समसामयिकों के जाने-जाने में चलते जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनके उपन्यासों को केवल सामाजिक उपन्यास की उपाधि नहीं दी जा सकती। उनकी सामाजिकता समसामयिकों के साथ है। कड़ो आलोचनाओं और आलोचकों के बावजूद प्रेमचन्द ने यह मान नहीं छोड़ा था। यतः उनके उपन्यास सत्यमूलक हैं। वे उपन्यास की पुरानी परम्परागत शास्त्रीय सीमाओं में नहीं बँध पाते।

इससे, कुछ आलोचक प्रेमचन्द के उपन्यासों को व्यक्ति-चरित्र के उपन्यास बताते हैं। यह धारणा है कि प्रेमचन्द का एक-मात्र उपन्यास चरित्र-प्रधान है, लेकिन इस तथ्य को स्वीकार कर लेने पर भी प्रेमचन्द के समसामयिक उपन्यासकार होने में कोई रूकावट नहीं आती। किसी भी सैद्धांतिक अथ मूल्यांकन उसकी केवल एक-मात्र रचना के आधार पर नहीं किया जा सकता। चरित्रांकन के सम्बन्ध में भी प्रेमचन्द की स्वयं की मान्यताओं में विरोध मिलेगा। 'उपन्यास नामक विद्वान् के प्रारम्भ में ही वे मिलते हैं—

'मैं उपन्यास का मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है।'<sup>२</sup>



यथा है। प्रेमचन्द ने धरने उपन्यास' शीर्षक निबन्ध में साहित्य और प्रचार के सम्बन्ध में लिखा है—

'बस साहित्य की रचना किसी सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक मन के प्रचार के लिए की जाती है तो वह धरने जैसे पर स गिर जाता है—इसमें कोई संदेह नहीं। लेकिन प्रायःकाल परिस्थितियों इतनी तीव्र गति से चल रही हैं, इतने नए-नए विचार पैदा हो रहे हैं कि कदाचित् यह कोई लेखक साहित्य के धारकों का ध्यान में रख ही नहीं सकता। यह बहुत मुश्किल है कि सेधक पर इन परिस्थितियों का धरने न पड़े वह उनमें सम्मिलित न हो। यही कारण है कि प्रायःकाल भारतीय के ही नहीं यूरोप के बड़े-बड़े विद्वान भी धरने रचना द्वारा किसी बात का प्रचार कर रहे हैं। वे हमकी परवाह नहीं करते कि हमने हमारी रचना जीवित रखेगी या नहीं धरने मन की पुष्टि करना ही उनका ध्येय है, इनके विचार उन्हें कोई इच्छा नहीं। मगर यह बर्बर मान लिया जाय कि जो उपन्यास किसी विचार के प्रचार के लिए लिखा जाता है उसका बहुत अधिक होता है? बिन्टन ह्यूमो का 'सा मिडवेरुम टासटाय के धरने के धरने विवेक की स्थिति ही रचनाएँ विचार प्रदान करते हुए भी उच्च कोटि की साहित्यिक हैं और यह सब उनका धार्मिक कर्म नहीं हुआ। प्रायः ही सा धरने धरने बड़े-बड़े लेखकों के धरने प्रचार ही के धरने से मिले जा रहे हैं।

साहित्य और प्रचार के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के उत्सुक विचार इस बात की पुष्टि करते हैं कि उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय जन-जीवन की समस्याओं को विचार-प्रधान उपन्यासों के माध्यम से प्रस्तुत करना था। वे धरने मन की समस्याओं को समझने से और उन्हीं को लेकर उपन्यास-लेखन में आए। देश को विभिन्न समस्याओं पर वे धरने विचार स्वतंत्र लोगों में भी व्यक्त कर सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। विचारों का प्रचार एवं समस्याओं के प्रति जनता का ध्यान धरने करने के लिये किसी कथामय माध्यम की आवश्यकता होती है। प्रेमचन्द ने यह कामात्मक माध्यम कथा-साहित्य चुना। यह बहुत कुछ लेखक को धरने व्यक्तित्व एवं धरने विचार पर निर्भर रहना है। प्रेमचन्द कथाकार ही नहीं थे। धरने साहित्यिक कथा को उन्होंने धरने विचारों को व्यक्त करने का माध्यम बनाया था माध्यम नहीं। वे किसी भी रचना में कथामय धरने धरने हीमा तक धरने मानने से कि उनके धरने में वह रचना नीरस और समावृत्त न हो जाय। धरने 'उपन्यास शीर्षक से वे धरने धरने धरने ?—

उपन्यासकार को इतना प्रयत्न करना चाहिए कि उसके विचार पराजय से ब्यक्त हों। उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार के समावेश से कोई विघ्न न पड़ने पाए। अग्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।<sup>१</sup>

उपन्यास-कला के व्याख्याकार के रूप में प्रेमचन्द की उपर्युक्त मान्यता थी। किसी सीमा तक वे इसमें सफल भी हुए हैं। लेकिन उपन्यासकार प्रेमचन्द अपनी स्वयं की मान्यताओं को जगह-जगह छोड़ जाते हैं और सीधे भावखण्डों के रूप में धा उपस्थित होते हैं। उनके उपन्यासों में ऐसे स्थान घने हैं। उन्हीं स्थानों के आधार पर कुछ धार्मिक जन पर प्रचारवादी होने का आरोप लगाते हैं। मूल प्रश्न यह है कि प्रेमचन्द ऐसा क्यों करते हैं? उपन्यास-कला की व्याख्या करते हुए जिस तथ्य का उन्होंने विरोध किया है उसे वे उपन्यास मिलते समय क्यों धृष्टि से मोड़न कर जाते हैं? उपन्यास-कला पर भेदबुद्ध को उनके विचार हैं। पूर्वत उनके उपन्यास-साहित्य में क्यों नहीं मिलते? इसका एक स्पष्ट उत्तर है—उनका समस्यार्थों के प्रति प्रेम। सामान्य धार्मिक कला-सम्बन्धी जितने दोष प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलते हैं, उनका कारण बहुत कुछ उनका समस्यार्थों के प्रति महत् धार्मिकता है। वे सभी तत्त्वों को पीछे छोड़ कर समस्यार्थों के जाने-बाने में डलन जाते हैं। ऐसी स्थिति में उनके उपन्यासों को केवल सामाजिक उपन्यास की उपा नहीं ही जा सकती। उनकी सामाजिकता समस्यार्थों के साथ है। कहीं धार्मिकताओं और धार्मिकों के बावजूद प्रेमचन्द ने यह मार्ग नहीं छोड़ा था। यत उनके उपन्यास सत्समायुक्त हैं। वे उपन्यास की पुरानी परम्परागत शास्त्रीय सीमाओं में नहीं बँध पाते।

इससे, कुछ धार्मिक प्रेमचन्द के उपन्यासों को व्यक्ति-चरित्र के उपन्यास बताते हैं। यह यथारथ है कि प्रेमचन्द का एक-धाय उपन्यास चरित्र-प्रधान है लेकिन इस तथ्य को स्वीकार कर लेन पर भी प्रेमचन्द के समस्यार्थों के उपन्यासकार होने में कोई कटौत नहीं होती। किसी भी लेखक के साहित्य का मूल्यांकन उसकी केवल एक-धाय रचना के आधार पर नहीं किया जा सकता। चरित्रांकन के सम्बन्ध में भी प्रेमचन्द की स्वयं की मान्यताओं में विरोध भिन्ना। 'उपन्यास' नामक विद्वान् के प्रारम्भ में ही वे लिखते हैं—

मे उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूल उद्देश्य है।<sup>२</sup>

१ कुछ विचार—पृष्ठ ४२ ४३।

२ कुछ विचार—पृष्ठ ३०।

प्रेमचन्द के चरित्रांश धारोचकों के लिए उपयुक्त वाक्य 'देव-वाक्य' हुआ है। व प्रेमचन्द के उपन्यासों का मूल्यांकन पूर्वाग्रह पर करते हैं। माना कि प्रेमचन्द न धीरग्यासिक रचनात्मक व चरित्रांकन को प्रधानता दी है पर वह कई पुत्र निरिच्छत दर्श नहीं कि वह तथ्य उनके उपन्यासों में भी प्रधान हो। व्यक्ति-चरित्र की नृसलता प्रेमचन्द के उपन्यासों में है। किन्तु इसी धारार पर उनमें उपन्यासों को चरित्र-प्रधान नहीं ठहराया जा सकता। समस्याओं में उनके हुए पात्रों का चित्रण नृसलता के साथ होना चाहिए। प्रश्न यह है कि क्या पात्र समस्याओं की प्रधानता का स्वाद लेते हैं एवं प्रेमचन्द अपनी कला का प्रयोग पात्रों के मनोवैज्ञानिक चित्रण में ही करते हैं? उनके पात्र के उपन्यासकारों में प्रथम यह प्रकृत पाई जाती है, पर प्रेमचन्द के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। इसका कारण केवल इसके धीर को नहीं कि प्रेमचन्द के सम्पूर्ण पात्र एक उद्देश्य या कि उपन्यास के माध्यम से भारतीय जीवन में परिवर्तन लाया जाय। वे अपने का कर्म का मजदूर कहने से धीर नहीं बचते जो महात्मा बाबा अपनी सक्रिय राजनीति से कर रहे थे, प्रेमचन्द अपनी सैखनी से पूरा करता चाहते थे। प्रत्येक घटनाकारण प्रतिभा में पात्रों के अनायास ही एक एक पर्वण की एक घनौकिक समता होती है और वह प्रेमचन्द में भी थी।

प्रेमचन्द पहले समस्याओं को महत्व देने हैं और बाद में चरित्रांकन का। इन बातों की पुष्टि उनके विरोधी धारोचकों के घाण्डों से भी होती है। उनके चरित्रानुसार प्रेमचन्द का चरित्रांकन बड़ा दुर्बल है। उनके पात्र स्वान-स्वान पर लेखकों की इच्छानुसार बहनुत्ता को तरह मानने लगते हैं। वहाँ तक कि प्रेमचन्द उनके स्वभावों में आ सकारण परिवर्तन कर देते हैं। धन उनके चरित्रों में मानव अनाधिकार की वृष्टि से दोष था बना है। मनुष्य का मन इतना सरल नहीं होता जो बड़ी नृसलता में अपनी इच्छानुसार मोड़ा जा सके। विरोध परिस्थितियों में और एक लम्बा समय जिसल जान के बाद ही चरित्र-परिवर्तन अभी-अभी सम्भव हो सकता है। तो प्रेमचन्द के पात्र वहीं-वहीं बड़े निर्जीव हो गए। इसमें सन्देह नहीं कि प्रेमचन्द की प्रधानता चरित्रांकन में वृष्टिवाचक नहीं होती बल्कि ही कुछ अज्ञान धारोचकों के अनुसार उनके उपन्यासों का मानव-चरित्र का स्वभाव समझें। वहीं-वहीं कहलिया व चरित्रांकन को बर्बादी पर व अक्षर्य गरी उनर है पर उपन्यासों में नहीं। उनके उपन्यासों का व्यक्ति-चरित्र व उपन्यास कहना उनके महत्व को कम करता है। वास्तव में उनके मानव-पर पर भारतीय जनता की समस्याओं का ज्ञान ऐसा बिना हुआ था कि वे उनमें किसी भी वृष्टि व मूल्य न पा सके और न जाना ही चाहते थे। अज्ञानियों की अज्ञानत्व धीरग्यासिक रचना के जीवन स्वयं और उन्हें नृसलता

में वे पाशों को अपनी इच्छानुसार माड़ लते हैं। सभी बृहत् धामोचक उनके पाशों का कठपुतली-प्राय की संज्ञा करते हैं। प्रेमचन्द तुलसीदास की तरह लोक-हितवादी थे। उनका साध्य चरित्रांकन मात्र नहीं था। यदि होता तो यह विरवासपूर्वक कहा जा सकता है कि उनके पात्र किसी भी प्रकार फिर हलके नहीं ठहरते क्योंकि उनमें एक घसाधारण प्रतिभा थी जो उन दिशा में भी अपना प्रभाव निरचय ही दिखाती।

अतः प्रेमचन्द के उपन्यासों का वैज्ञानिक मूल्यांकन उनके चरित्रांकन की या उनकी सामाजिकता की प्रचालता देखकर नहीं हो सकता। हमें इनके भी मूल में जाना होगा। और यह है उनका समस्यामूलक रूप। इसी क्षेत्र में उनका गौरव निहित है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में यह खोज का प्रयत्न किया गया है कि प्रेमचन्द के समय में देश की जो दबस्ता थी उसका अनुकूल उन्होंने किस प्रकार अपने उपन्यासों को बनाया। वे कौन-कौन सी समस्याएँ या जिन्हें प्रेमचन्द हल करना चाहते थे उनसे और समाज का ध्यान आकर्षित करना चाहते थे उन समस्याओं के प्रति प्रेमचन्द का अपने क्या विचार थे और इस प्रकार प्रेमचन्द एक समस्यामूलक उपन्यासकार के रूप में कहाँ तक गठन रहे।

## प्रेमचन्द के समय का भारत

प्रेमचन्द का जन्म ३१ जुलाई सन् १८०१ ई० को हुआ था। उनका साहित्यिक जीवन सन् १८०१ से प्रारम्भ हुआ है। सन् १८०१ से १८३६ तक का भारत प्रेमचन्द की गुरुवृत्ति का केंद्र रहा अर्थात् यह साक्षर्यक है कि प्रेमचन्द के समय के भारत की राजनीतिक, साहित्यिक व सामाजिक दशा पर पहले विचार कर लिया जाय क्योंकि प्रेमचन्द व्यक्तिवादी नव्यक नहीं थे— उन पर उन समय की परिस्थितियों तथा समस्याओं का पुरा-पुरा प्रभाव है। किसी काम-बिसेप में का विचारवाद्य पक्षवा दृष्टिकोण बनता है। उक्तका सम्बन्ध जायजक सेतकों से बहुत दिवट का रहता है। वस्तुतः विचारक घोर संशय ही अपने समय की विचार-वाद्य के बाहक होते हैं। वे ही राष्ट्र तथा समाज का जीवन व यनि प्रदान करते हैं।

प्रेमचन्द का युग भारतीय जनता के राष्ट्रीय संपर्प का युग है। पराधीनता के कारण प्रत्येक क्षेत्र में भारत का विकास र्हा हुआ था घोर उद्वेगी सभी मन स्वाप्नों का निराकरण बिना स्वाधीनता प्राप्ति के सम्भव नहीं हुआ था रहा था। राष्ट्रीय पराधीनता एक घंघि के ममान बन गई थी जो भारतीय जीवन की साहित्यिक तथा सामाजिक समस्याओं के मुर्ता को मुकभने नहीं देती थी। सबसे पहला प्ररत देश को साम्राज्यवादी शक्तिओं में मुक करने का था। भारत की तमघ बेनता व कम-शक्ति ब्रिटिश साम्राज्यवादी को उग्या फेंकने में लगी हुई थी। घः न संप्रथम राजनीतिक भारत पर दृष्टिगत करना उपयुक्त हागा।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में देश में निराशा का भावावरण घाया हुआ था। सन् १८२७ का स्वाधीनता-संग्राम विफल हो चुका था। ब्रिटिश सरकार का दमन-व्यक्त घनी पूरी तनि से चल रहा था। ब्रिटिश साम्राज्यवाद राजाघा शायीरशायीं उमीशायीं घोर ताम्बुनदारा का घनी र्हा के निरा पोपल कर रहा था। चारों घोर दमन घोर घभाव का दमनकार बगत था। मारतीय जन जीवन उनमें कोई राह व पावर अनिश्चयता के बेहू प्रदेय में बटक रहा

का। सन् १८८१ में इंडियन नेशनल काँग्रेस की स्थापना हुई। भारत के मुक्त प्रांत पुनः काय जटे। देश में एक नई हलचल पैदा हो गई।

सन् १९०१ में महाराणी विक्टोरिया की मृत्यु के परचात् सप्तम एडवर्ड वहाँ पर बैठे। सन् १८८५ से १९०५ तक इंडियन नेशनल काँग्रेस ने काफ़ी प्रयत्न की और बहु जन-संस्था के रूप में देखी जाने लगी। इस बीच काँग्रेस के कार्य शांतिपूर्वक समझौते तथा विरवास के माध्यम पर ही हुए। काँग्रेसियों के दिलों में कमी-कमी कुछ उल्लेखनीय घोर रोष के भाव घा गए हों पर इसमें कोई एक नहीं कि टेक १८८५ से १९०५ तक काँग्रेस की जो प्रयत्न हुई उसकी बुनियाद की बँध धात्वोलन के प्रति जनका बुद्ध और धर्मियों की स्वाभिमन्यता पर प्रबल विरवास ही। १

बीसवीं शताब्दी के प्रथम पाँच बर साल कर्जल के बमतपुर्ण शासन के थे। भारत को इस समय का सबसे बड़ा बरका बंग-भंग से गया। बंगला भाषा भाषी जनता की इच्छा के प्रतिकूल बंगाल को दो प्रांतों में बाँट दिया गया। काँग्रेस ने बंग-विभाजन के प्रत्यक्ष विरोध में बंग-भंग का निर्णय वास्तव में लिया गया। सन् १९११ की शाही घोषणा से बंग-भंग का निर्णय वास्तव में लिया गया। इसी समय भारत के राजनीतिक मंच पर सर धारा साँ के बरल हुए। धारा साँ के नेतृत्व में मुस्लिम लीग की स्थापना हुई जिसने साम्प्रदायिक पृथक् प्रतिनिधित्व की माँग की और इस प्रकार भारत-विभाजन की नींव डाली। "१९१२ में लार्ड हाइडको बर बुलूड के साज हाथी पर लई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे किसी ने जन पर बर लोका और बहु मरते-मरते बरने। ८ धरतीका के भारतीय धात्वोलन से भी देश की राष्ट्रीय नेतृता को नया बरल मिला।

जुलाई १९१४ में महासमर सिद्ध गया। इस समय में भारतीय लीजों ने ब्रिटेन की पुँटी रखा की। महात्मा गाँधी ने सरकार को पुँर्य छडपोय दिया। क्योंकि कुछ 'धारम-निर्णय' के माध्यम पर किया गया था। लेकिन भारत की पराधीनता क्यों की ल्यों रही। इसी समय धर्म सरकार द्वारा रोमट बिल (१९१९) को कानून बनाने के प्रयत्न किये गये। गाँधी जी ने इसका कड़ा विरोध किया। गाँधी जी ने यह घोषणा की कि यदि रोमट कमीशन की सिफारिशों को बिस का रूप दिया गया तो वे सरवाइड कुछ घेड़ देंगे। ३ गाँधी जी ने सम्पूर्ण देश का रोप किया और धरल में उन्हें धात्वोलन छेड़ना पड़ा। देश में चारों

१ काँग्रेस का इतिहास पृ. ५५—नेलक डा० पट्टाभि सीतारवैया पुष्क- ५  
२ वही  
३ वही

तरफ म इस धान्दोलन में साथ दिया। जयह-जगह गान्धियाँ बनी। सबसे मर्मकर नर-संहार जलियावाला बाग (घमृतसर) में जनरल डायर द्वारा हुआ।

उससे बड़ी दुःखर बात वास्तव में यह थी कि मोती बलान के बार मुठक घोर से जोष जो मफन घायस हो गये थे उन्हें सारी रजत बहूँ पड़ा रहने दिया गया। बड़ी उन्हें रात भर न तो पानी हो पीन को मिना घोर न डाकटरी का कोई धम्य सहायता ही। डायर का कहना था बीसा कि बार को उमने प्रकट किया 'श्रीकि शहर प्रेम क कम्मे में दे दिया गया था घोर इस की डीरी रिटबा की गई थी कि कोई भी ममा करने की इजाजत नहीं दी जायगी तो भी लोगों ने सनकी घबहेसना की इमबिसे मने उन्हें एक सबक बना देना चाहा ताकि वे उसकी मिल्की न उड़ा सकें। घाने बलकर उसने कहा कि मने घोर भी गोमी बलाई होती घगर मेरे पास कारतूम होये। सोसह ली बार ही मोली बलाई क्योंकि मेरे पास कारतूम प्रेम हो गये। उमन घोर कहा 'मै ता एक फोरो गाडी (घारमड कर) मै गया था मैकिन वहाँ बाकर देना कि वह बाज के भीतर बुस ही नहीं सरती थी। इसलिए उमे वहाँ धाड़ दिया था।' १ अक्टूबर १९१९ में हटर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की गई जिससे पंजाब के उपडर्बा को जांच करने के निम्ने कहा गया। गांधी जी ने मन्दाबहू म्पगिन कर दिया।

घाने बलकर १९२० क घसहयोग धान्दोलन में जोर पकड़ा। मन् १९२० की २८ मई को हटर-रिपोर्ट प्रकाशित हुई जिसके कारण देश में घोर जोष छा गया। भारतोप सरस्य उम रिपोर्ट से सहमन नहीं थे। घसहयोग की बोझना १ घमस्त से प्रारम्भ हुई। जयह-जगह धान्दोलनों की बाढ़-सा था बई। घनेक धान्दोलनघारी जेनों में टूँठ रिये गये। १९२० मधम्बर में त्रिणा घाँठ बस्त के स्वायत्त का बहिष्कार किया गया। धान्दोलन मऊमता की लीया को पहुँचन मना। लोगों के होमने बहुत बड़े हुए थे। घमहयोग धान्दोलन में हिन्दू-मुसल मानों ने मिलकर संघर्ष किया। लार्ड ऐरिब भी इस धान्दोलन से परेस्तान हो उठे। घमहयोग-धान्दोलन बहिष्कारक था। मैकिन बीरीबीरा के एक घाने पर मोनों ने धाक्रमल किया घोर उम जया दिया। गांधी जी मैहिता की देण धान्दोलन स्थगित कर दिया। लॉपी जो भी इस धान्दोलन में ३ वर्ष के लिए जेल में गये।

मन् १९२२ में टैक्स न देने का धान्दोलन दिना जिसमें लखनार में बड़ी कठोरता से काम किया। मन् १९२३ में त्रेनों में हूटे नेताओं में बोलियों में जाने का निरबध किया। म्बलम्य पार्टी का निर्मात हुआ। भाइमन-बभोठन (८ मधम्बर १९२८)

का इतिहास किया गया क्योंकि उसमें एक भी भारतीय नहीं था। सन् १९२७ में होनेवाले हिन्दू-मुस्लिम बंबों को शांत करने लिए ब्रिटिश गवर्नमेंट ने साइमन कमीशन भेजा था लेकिन उसमें कोई भी भारतीय न होने से भारत में उसे अपना अपना समझा। बोरे-बीरे असंतोष तीव्रतर होता गया। अवाहरनाथ नेहरू ने माफ़ो से लौटकर मद्रास-कांग्रेस में जाग सिया। कांग्रेस में गया जून आया और गांधी जी द्वारा विरोध करने पर भी पूर्ण स्वराज्य की घोषणा कर दी गई। १९३० में महारणा गांधी के नेतृत्व में नमक-कानून भंग करने के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। ६ अप्रैल १९३० को दमारी पहुँच कर नमक बनाया गया। विधियों ने पर्यटन छोड़कर इस आन्दोलन में भाग लिया। ब्रिटिश सरकार ने साठियों और गोमियों से इस आन्दोलन को भी रोकना चाहा लेकिन जनता का उत्साह बढ़ता ही गया। अन्त में सरकार ने समझौता करना चाहा। गांधी-इरविन-रीक्ट सामने आया। उत्तरवाण गांधी जी कांग्रेस के प्रतिनिधि बनकर गोलमेज कान्फ़ेस में भाग लेने इमर्जेंट गए। गांधी जी जब वापिस लौटे तब देश की हानत और भी बिपत्ती दिखाई दी। उस समय लार्ड बिलिपटन का शासन था जो बड़ा कठोर था। संयुक्त-प्रान्त के किसान लदान-बन्दी आन्दोलन कर रहे थे। नये भारत-कानून के अनुसार रिजर्वों को हिन्दुओं से घटाय करनी चेष्टा की गई। गांधी जी ने इस साम्प्रदायिक विषय के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ कर दी। बाद में गुता-रीक्ट हुआ और जन छोड़ दिया गया। सन् १९३५ में भारतीय शासन-विधान बना। कांग्रेस ने विधान के अनुसार चुनावों में भाग लिया बहपि वह उससे सन्तुष्ट न थी। इस प्रकार कांग्रेसी बहुमतवाले प्रान्तों में शासन-मूक कांग्रेस के हाथ में आ गया। मंत्रिमंडल बन ही रहे थे कि ७ अक्टूबर १९३६ को प्रेमचन्द की मृत्यु हो गई।

प्रेमचन्द के जीवन-काल में भारत उपयुक्त राजनीतिक घटनाओं में से कुछ। भारत में प्रेमचन्द का युग राष्ट्रीय स्थापना-संग्राम का युग है। उनके समय देश का जीवन अपने पूरे विकास पर था। एक ओर नवयुवक उत्साह से

१९२६ के मध्य में हमें देश की राजनीतिक स्थिति का विहास लेखन करने के लिए उठना चाहिए। ६ अप्रैल १९२६ को भारत में प्राण। लगभग उसी समय कमकठ में बड़ा साम्प्रदायिक बंधा हो गया। — कांग्रेस का इतिहास पृष्ठ ३ की भाँति कोई मार्क का कानून नहीं

सन् १९२७ की बंधियों में आनी बाइ-सी था गई। सबसे भीषण बंधा हुआ लेकिन देश में हिन्दू-मुस्लिम बंधे एक होना रहा और जिसमें २७ व्यक्ति घारे माहौर न हुआ जो ६५। विहार मुसलाम (पंजाब) बरेली (मुक्त प्रान्त) व पये और २७२ — भी इसी प्रकार के बंधे हुए। — कांग्रेस का इतिहास नागपुर (म



स्वतन्त्रता के लिए अपने प्राणों का बलिदान कर रहे थे तो दूसरी ओर ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का स्वतन्त्र अपनी पूरी कठोरता व निर्दयता के साथ काम रहा था। देश में जगह-जगह ममाघों और धान्योत्तनों की कृमि थी। विद्यालय जन-समुह के पुसुस प्रमुख नगरों में प्राथ निरक्षरता ही करते थे। प्रसिद्ध इतिहासकार और धर्म शास्त्री रजनी पामरदा 'घाब का भारत नामक ग्रंथ में लिखते हैं' १९११ १८ के पहले महामुठ से और उसके बाद छारी दुनिया पर जो क्रांति की लहर छा गई थी उससे दूसरे सभी धपनिनेहों की तरह हिन्दुस्तान में भी बड़े-बड़े परिवर्तनों का मुय धारम्भ हुआ। १९१९ २२ में बड़े बड़े जन-धाम्योत्तनों से भारत हिम उठ्य और विश्वध्यापी धार्मिक संकट के बाद जिसका हिन्दुस्तान पर बहुत धसर पड़ा १९१० १४ में और भी ओरों से जन धाम्योत्तनों की लहर धाई। ब्रिटिश हुकुमत इस उठने हुए राष्ट्रीय धाम्योत्तन का मुकाबला बारी-बारी से मुधार और दमन के लिए करती थी। एक तरफ प्रबिष्य में स्वतन्त्रकार मरकर देने के बारे किम् जाते थे दूसरी तरफ ऐसे वैज्ञानिक मुधार किमे जाते थे कि किन हाथों में ताकत पहले थी वह वहीं बनी रहती थी। १ प्रेमचन्द ने अपनी धाँगी से भारतीय धेनना के इस उमार को देखा ही नहीं था बरन वे उन धेनना के बाहक एवं प्रमारक भी थे। ध्यक्षिणवासी सैरक न होने के कारण वे धाने का उपर्युक्त महत्त्व एवं ध्यनाचर्कों में धयग मन्ने रन मरने थे।

मकिन उनके उपध्यास धाग्न के राजनीतिक धीधन का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते बरन् उसके धार्मिक सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक पहलुधों पर भी दुष्टिगत करते हैं। बस्तुन प्रेमचन्द के उपध्याग भारत की राष्ट्रीय धाधनाधों और उगरी जनधन धमध्याधों के प्रभोक हैं। वे कोई ऐतिहासिक उपध्याग नहीं हैं। धर्न मान धधनीति राजनीति पर ही निर्भर हैं और धार्मिक संगठन वा सामाजिक धीधन - पूरा-पूरा प्रधाव पड़ता है। प्रेमचन्द के समय देश की धार्मिक स्थिति बड़ी धयी-धी थी। स्वयं प्रेमचन्द का धीधन धार्मिक धधधों का धीधन था। उगनेनि गरीबी का - धनुमध किमा था। हाधों और नधरों में समान रन न उनका धीधन बीना था - <sup>हिन्दुस्तान</sup> की निर्बनगा और उनमे मुन्य होने का उगना संगान प्रेमचन्द के उगने <sup>में</sup> एक बियेन महत्त्व रगध है।

भारत की धार्मिक स्थिति <sup>में</sup> एक बियेन महत्त्व रगध है।

बंदध में प्रेमचन्द ने पूरा धारनेगु धरिचन्द ने लिखा है

धंधर राज मुग मार  
 धे धन बिदेश धनि जा रहे छ मारी।

१॥

ताहूँ के मँहूँपो काज रोग बिस्तापी ।  
 रिन रिन दूने दुःख ईस बड हा हा री ॥  
 सब के ऊपर टिककस श्री भाऊन धारि ।  
 हा हा । भारत दुबहा न देखी जाई ॥<sup>१</sup>

अंग्रेजों-राज्य में भारतीय जनता के शोषण का यह प्रभाव चित्र है। इन देश की छोटे सम्पत्ति धीरे-धीरे ब्रिटेन पहुँच रही थी। भारतीय जनता प्राथमिक प्रभावों में बड़े कठिनाई से जीवन काट रही थी। इस प्रकार निपनता के बीच जनता पर विभिन्न करों का भारी बोझ लाय दिया गया था और इस प्रकार भारतीय जनता के रक्त से ब्रिटिश-साम्राज्य का मजबूत बन बन रहा था। हिन्दुस्तान ब्रिटिश साम्राज्य की बुटी था। यहाँ के व्यापार का सबसे बड़ा भाग अंग्रेजों के हाथ में था। हिन्दुस्तान के ब्राह्मण के सम्बन्ध में भारत के प्रसिद्ध प्रपशास्त्री शाह और लंबाटा न लिखा—

‘हिन्दुस्तानियों को धारण धामरनी इतनी होती थी कि तीन धारणियों की धामरनी से दो का ही पेट भर सकता है। उनको तीन बार खाना खाने की जरूरत होती है। तीन बार न खाकर या दो बार खाएँ तो इनका हो सकता है कि इन लोगों धारणियों का पेट भर जाय। लेकिन इनके लिए तर्क यह है कि वे कपड़ों में अपने धीरे न भर न हो रहे बल्कि साल भर बाहर ही बिन कपड़े। तभी अपनी धामरनी से न भर पट खाना खा सकते हैं, लेकिन यह खाना भी ऐसा होगा ब्राह्मण का सबसे मोटा भौटा धीरे शारीरिक शक्ति के लिए बिलकुल मामूली है।’

सरकारी रिपोर्टों से भी साधारण जनता की दयनीय दशा प्रकट होती है

‘कुत्तल मजदूरों को छोड़कर हिन्दुस्तान के मजदूरों को इतना प्यार मिलती है कि मुश्किल से ही उनका पेट भर सकता है और उन डँका रह सकता है। हर जगह इनको बस्ती में ठूँसाईस मची हुई है। गर्मी धीरे तबाही की कोई हूर नहीं।’<sup>२</sup>

‘हिन्दुस्तान के लोगों का एक बहुत बड़ा हिस्सा घर भी एमी करीबी के दिन काट रहा है कि इस तरह की बीच परिषद के देशों में है ही नहीं। जिन्दगी धीरे मोल के अंगार पर इनके दिन कट रहे हैं।’<sup>३</sup>

‘उद्योग-धंधों के अधिकार क्षेत्रों में मजदूरी की कुल धारणियों का सं-तिहाई भाग एम लोगों का है जो कर्म में दूबे हुए हैं। ... अधिकार क्षेत्रों का अर्थ

१ भारत-दुबहा ।

२ भारत की सम्पत्ति धीरे उसकी करोपयोगी जनता १९२४-गुच्छ १९३ ।

३ १९१७-२८ में हिन्दुस्तान ।

४ १९२९ ३० में हिन्दुस्तान ।

स्थिति अपने उपन्यासों में चित्रित की। उत्क्रांतीय भारत की धार्मिक दशा का यथासं ज्ञान प्रेमचन्द-साहित्य से होता है। धार्मिक समस्या का सीधा सम्बन्ध राष्ट्रीय पराधीनता से था अथ देश को स्वाधीन करने का प्रयत्न प्रमुख था। प्रेमचन्द ने पूर्ण राष्ट्रीय स्वाधीनता के आन्दोलन को इसीलिए प्राथमिकता दी। सामाजिक समस्याएँ धार्मिक कारणों पर ही अवलम्बित रहती हैं। धर्मसम्बन्ध में परिवर्तन होने से सामाजिक ढाँचा अपने आप बदलने लगता है। अनेक सामाजिक कु-रीतियों की जन्म देनेवाली दूषित धर्मसम्बन्ध ही होती हैं। प्रेमचन्द के उपन्यासों में जहाँ कहीं भी सामाजिक समस्याएँ आई हैं उनका आधार धार्मिक है। शेरमा-श्रुति विवाह-विवाह, बाम-विवाह धर्ममेल-विवाह, छूटा-छूटा छिन्ना धर्म-धीबन आदि सभी के मूल में धार्मिक पहलू है। हमें चाये यह देखना चाहिये कि प्रेमचन्द ने अपने समय के भारत का किस प्रकार प्रतिनिधित्व किया। वे कौन-कौन-सी उत्क्रांतीय समस्याएँ थीं जिनकी युव-जन को माननेवाला जागृत साहित्यकार उभेना नहीं कर सकता था।

## प्रभञ्जन्व युग में मध्यवर्ग की स्थिति

भारत में मध्य-वर्ग का उदय धर्मोन्नी-साम्राज्य के फलस्वरूप हुआ। उन्नीतको उठाधी के उत्तरार्ध में भारतीय-मध्यवर्गीय समाज का स्वरूप सामने आया। सुप्रसिद्ध कवि और विचारक श्री हुसामुं कबीर अपनी पुस्तक 'बी इंडियन हेरिटेज' में षट्कामीन भारतवर्ष की सामाजिक स्थिति का विरलेषण करते हुए लिखते हैं: 'समस्त प्राचीन मूल्यों पर विरवासों की चुनौती दी जा रही थी। विरवास और ऐति-रिवाजों के प्राचीन रूप बह रहे थे। सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक संस्थाएँ तीव्र गति से टूट रही थीं। भारत वास्तविक अर्थ में परिवर्तन की परिस्थिति बना में था। प्राचीन सामाजिक संगठन अक्षयस्थित हो रहा था। नए तत्व उभर रहे थे जिनकी किसी भी बीते युग में कोई मिसाल नहीं मिलती।'<sup>1</sup>

'सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक जीवन का परम्परागत ढंग अक्षयस्थित ही नहीं कही-कहीं नष्ट हो रहा था। वही नहीं नए और सामंजस्यपूर्ण दृष्टि कोण के निर्माण का भी कोई प्रयत्न नहीं था जो अतीत की विरासत को परिष्कृत से पाले नए तत्वों के साथ जोड़ता। पर प्रकृति रिक्त स्थिति नहीं रहने देती। निरान प्रसन्नचित्त तथा अक्षिप्त विरवास और स्वभाव जीवन के प्राचीन ढंग का स्थान लेने लगा। प्राचीन प्रप्रस्थासिद्ध रूप से नष्ट हो रहा था लेकिन नए बुद्धि-कोण का उत्पन्न होना अभी लेप था।'<sup>2</sup> भारतीय समाज पर पारचात्य प्रभाव बढ़ता गया जिसके फलस्वरूप मध्य-वर्ग का उदय हुआ।

1. All old values and beliefs were being challenged. Social economic and political institutions were breaking up at a terrifying pace. India was literally in the melting pot. The old social stratification was disturbed & new types emerged, which have no parallel in any previous period —Chap Modern Ferment page 110-117

2. "The old tradition & pattern of social economic and political life was shattered and & times destroyed. No was there any attempt to build up new and integrated outlook which could combine the heritage of the past with new ingredients brought in the West. Nature cannot, however permit a vacuum. Haphazard and fragmentary belief and habits took the place of the old way of life. The old was destroyed beyond recall & the new remain still unborn. —The same page 118.

महर्षि पद-लिखे लोगों का बना। अंग्रेजी-राज्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभिन्न कार्रवायियों में पद-लिखे व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ी। इस आवश्यकता पूर्ति के निमित्त अंग्रेजों ने देशभर में विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना की और अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया। इन विद्यालयों और महाविद्यालयों से इस वर्ग के मस्तिष्क का उत्तरोत्तर विकास हुआ और मध्य-वर्ग देश के प्रधान बुद्धिजीवी-वर्ग के रूप में सामने आया। ब्रिटिश शासकों की सैद्धांतिक नीति का स्पष्टीकरण करते हुए हुमायूँ कबीर भागे लिखते हैं 'काफ़ी समय तक शासन व्यावसायिक काम को दृष्टि में रख कर किया जाता रहा। देश के ताबनों का पूर्णरूपेण होपस करने के हेतु ब्रिटेन को ऐसे मध्यम-वर्गीय के मनुष्य समुदाय की आवश्यकता थी जो उसके और भारतीय लोगों के बीच मध्यस्थ का कार्य कर सके। शासन-मन्त्र्य की आवश्यकता के सम्बंध में भी यही समस्या थी। उच्चमन्त्रीय नीति स्वयं अंग्रेज नियत करते थे पर शासन-प्रणाल्य में उसके वैदिक प्रयोग के बिना भारतीय लोगों की सेवाओं की आवश्यकता पड़ती थी। परिणाम यह हुआ कि प्रबंध संबंधी एक बड़े वर्ग का निर्माण हुआ जिसने अंग्रेजों को शासन प्रणाल्य और व्यापार में सहायता दी। इन सेवाओं की प्रस्तुत योग्यता अंग्रेजी भाषा में प्रवीणता' मानी जाती थी। शिक्षा का स्वभाव भी शासकों की आवश्यकता-नुसार निर्मित हुआ। मनुष्य के व्यक्तित्व पर शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य अंग्रेजी को मायावत प्रवीणता प्राप्त करना हो गया।'<sup>1</sup>

मध्य-वर्ग पर एक घोर पाश्चात्य प्रभाव पड़ रहा था तो दूसरी ओर भारतीय सुधारकारी संस्थाओं का। वास्तव में मध्य-वर्ग की स्थिति का कोई निरिचय रूप दिखाई नहीं देता। इस वर्ग में अनकल्पता मिलती है। हुमायूँ कबीर के शब्दों में 'पद-लिखे गए वर्गों ने अपने विचार अविचलित परिचय से ग्रहण किये।

1. "Administration was long conducted with a view to commercial advantage. For full exploitation of the country resources Britain needed a group of middle men who could act as interpreters between her and the Indian people. The needs of administration also posed the same problem. Higher policy could be determined by the British themselves but its application to the daily routine of administration required the services of indigenous men. The result was the creation of a large ministerial class who helped the British in administration and commerce. The primary qualification for such subordinates was a proficiency in the English language. Education was therefore remodelled to suit the needs of the rulers. Instead of development of human personality the chief aim of education became the attainment of linguistic proficiency in English. —Indian Heritage pag 113—114

उन्होंने किसी-न-किसी रूप में प्रदर्शनों के सम्बन्ध के कारण उनके रहन-सहन को भी अपनाया ।.... अंग्रेजी भाषा का ज्ञान गत शताब्दी में अत्यन्त बढ़ता गया जिसके कारण मध्य-वर्ग का दार्शनिक फैलाव हुआ । \* इसके प्रतिरिक्त इस मजबूत बन पर कुछ सुधारवादी संस्थाओं का भी प्रभाव पड़ा । ब्रह्मसमाज, धार्मिक समाज चियोसोसिज्जिस सोसामटी कांग्रेस आदि संस्थाओं का बुद्धिकोष सुधारवादी ही रहा । बुद्धिजीवी मध्य-वर्ग अपने को इन सुधारवादी-आन्दोलनों से मुक्त न रख सका और इस प्रकार उसके मानस पर भी सुधारवादी रंग बढ़ता गया । यह भारतीय मध्य-वर्ग की मानसिक बनावट का बिसिष्ट पहलू है जो उसे विरह के समय मध्य-वर्गीय बनने से प्रेरित करता है । मानसिक बनावट के प्रतिरिक्त धार्मिक दृष्टि से मध्यवर्गीय समाज में धार्मिक भेदभाव भी ध्यान देने योग्य है । हुमायूँ खीर लिखते हैं — 'मध्य-वर्ग कभी एकरूप नहीं हो सकता । कोई भी सामाजिक वर्ग पूर्ण रूप से एकरूप नहीं होता लेकिन मध्यवर्गीय लोगों में स्तरहीन विभाजन बिरोध रूप से दृश्य है । एक ओर तो वे बिलकुल मिन्नवर्ग की सीमा पर होते हैं तो दूसरी ओर जिनमें और पैनीपतियों में अन्तर करना कठिन हो जाता है । '

मध्य-वर्ग के उदय और विकास में पैनीवादी व्यवस्था का भी हाथ है । पैनीवादी देशों में मध्य-वर्ग की स्थिति काफी अच्छी है । भारत में कि पद्यहीन रहा इसलिए यहाँ पैनीवादी धर्म-व्यवस्था का स्वतंत्रतापूर्वक विकास न हो सका । भारतीय मध्य-वर्ग की स्थिति अच्छी न होने के कारण मध्य-वर्गीय बनता में सर्वाधिक असंतोष व्याप्त है । हुमायूँ खीर बीसा लिखते हैं, 'यही बगल मध्य-वर्ग यह अनुमान करने लगा है कि उसका कोई भविष्य नहीं है । भारत में उसकी बहा और भी दयनीय है । पैनीवाद के विकास से अन्य देशों में सामाजिक धर्म-व्यवस्था में उनके लिए स्थान बना दिया है, पर भारत में पैनीवाद को अर्थियों ने एक नैतिक और धार्मिक दबावों के अन्तर्गत बढ़ने नहीं दिया । इस पर भी समाज की अन्य श्रेणियों का मुकाबला मध्य-वर्ग की अनेकानेक धार्मिक दबावों द्वारा देखकर

1. The new literate classes largely derive their ideas from the West. They also have in one way or another derived their living from the British connection.....Literacy in English has continually expanded in the course of the last century and led to an inordinate expansion of the middle classes. —The same, page 118-119.

2 "For one thing, the middle classes can never be a homogeneous group. No social class is fully homogeneous but stratification is even more marked in the case of the middle classes. At one extreme are those who just escape being proletarians. At the other are those who are hardly distinguishable from capitalists. —The same page 141.

उसकी ओर बराबर ही रहा। मध्य-वर्ग इतना बढ़ा कि मौजूदा धार्मिक स्थिति उस संस्था को संभाल न सकी। उसके सबसे धार्मिक भेदी के निचले स्तर पर बापित जाने की उद्यत नहीं वे ओर पूंजीवाद के प्रति उनके बढ़ते हुए क्रम हवारों तरीकों से रोक दिए गए। बेकरी बड़ी नहीं और उसके साथ-साथ संतोष भी।

भारत का सर्वाधिक चिंत्य वर्ग यही मध्य-वर्ग है। इसकी अधिकांश समस्याएँ इनकी स्वयं की दुर्बलताओं के कारण हैं। मध्य-वर्ग के व्यक्तियों के स्वभाव का विरलेपक्ष करने पर यह तथ्य सामने आता है कि उनके मन और मस्तिष्क का प्रायः अभिजात-वर्गीय समाज की बेखी तक पहुँचने की भावना है। पर यह भावना धार्मिक समाजों के कारण कुटिल हो जाती है। इस कारण मध्य-वर्गीय परिवारों में 'दिल्ली का कर्म' प्रायः पाया जाता है। बाहर से वे अपने ऊपर एक अभिजात-वर्गीय परदा डाले रहते हैं। यह परदा इस कारण प्रभावहीन सिद्ध नहीं होता क्योंकि मध्य-वर्गीय व्यक्ति सामाजिक विकास में किसी से पीछे नहीं होते—विकसित सामाजिक ऋण के साथ अभिजातवर्गीय लोग निभ जाते हैं। पर वास्तविकता प्रकट होने पर प्रबवा जीवन-संघर्ष के बीच मध्य-वर्ग का नशाब रूप सहज ही प्रकट हो जाता है। घर में बन के नाम पर कुछ नहीं निकलता। पर, सम्मान भावना के पीछे मध्य-वर्गीय परिवार कर्म सेते हैं और अपने जीवन को बोरे-बीरे ससज्जते जाते हैं। यदि अभिजात-वर्ग की प्रतिस्पर्धा की भावना का सोप इस वर्ग में हो जाय तो इस वर्ग की अधिकांश समस्याएँ दूर हो सकती हैं प्रबवा उनको सुलभ करने में सुबलता उत्पन्न हो सकती है। निःसंदेह दिल्ली की भावना के कारण ही धार्मिक तंत्री का विरोध विकर इस वर्ग को रहता पड़ता है।

मध्य-वर्गीय समाज के मनोवैज्ञानिक पहलू और उसकी धर्म श्रेणियों से जुलना करते हुए जो हममें कबीर लिखते हैं— धार्मिक भारत का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण तथ्य मध्य-वर्ग का संस्तुमित कैमाव है। सम्पूर्ण विरव में मध्य-वर्ग के मोव प्रशांत,

1. "The middle classes have everywhere started to realize that they have no future. In India their plight is still more pitiable. The growth of capitalism has been in other countries secured them a place in the social economy. In India, the expansion of indigenous capitalism was resisted by the British through political and economic pressures. And yet the relative comforts enjoyed by the middle classes continually attract recruits from other strata of society. A middle class has developed which is too numerous for support by the existing economy. Its members refuse to go back to a lower level of economic competence, and yet their march forward to capitalism is hampered in a thousand ways. Unemployment has increased and so has discontent. —The same page 187-188.

सामोचनात्मक और व्यक्तिवादी है। ऐसी स्थिति के कारण उनकी धार्मिक स्थिति बीबाबोल है। पूँजीवादी श्रेणी में ऊपर उठने की प्रबल इच्छा के फलस्वरूप उनके बहुत से निम्न श्रेणी की स्थिति में पहुँच जाते हैं। वे अनुभव करते हैं कि उन्हें सम्मानपूर्वक स्तर बनाए रखना आवश्यक है जो प्रायः उनके छात्रों की पहुँच के बाहर होता है। अपना धार्मिक संघर्ष उनके जीवन के समस्त दृष्टिकोण पर प्रभाव डालता रहता है। अपनी स्थिति के संघर्ष में विरिक्त होने के कारण अभिजात वर्गीय कमी अपने महत्त्व को बचाने को धारमकता नहीं समझता। निम्न-वर्गीय भी अपने मामू से संतुष्ट रहते हैं। मध्य-वर्ग संतुष्ट नहीं रहता और वह प्रायः उईध धारम प्रदर्शनकारी घोर मुँहफट होता है। अपने पक्ष का समर्थन करने के लिए वह दूसरों की सामोचना करता है।<sup>1</sup>

दुम की तथाकथित वर्गीय मध्य-वर्ग के विकास में सबसे बड़ी रुकावट है। यह समस्या उच्च और निम्नवर्गों में नहीं है। निम्न वर्ग में प्रायः सभी सदस्य काम करते हैं और इस प्रकार अपना-पना जीविकोपार्जन करते हैं। उनको एक-दूसरे पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। परिवार के सभी सदस्य—युवक बालक स्त्रियाँ धार्मिक कृषक भी काम करने थोड़ा-बहुत बन काम ही लेते हैं। दूधरे उनकी धारमकताएँ भी धार्मिक नहीं होती। इस प्रकार धार्मिक बृद्धि से निम्न वर्ग के सामने कोई अदिक समस्या नहीं पड़ती। वह बहुत दुम संतुष्ट रहता है पर निम्न-वर्ग की तुलना में मध्यवर्ग की स्थिति बड़ी न्यायवह होती है। मध्य-वर्गीय परिवार में कमलेशवा केवल एक सदस्य होता है। दुम की वर्गीय के कारण स्त्रियाँ नौकरियाँ नहीं करती। इस प्रकार परिवार का सारा धार्मिक बोझ केवल एक व्यक्ति के कंधे पर पड़ता है और फिर मध्य-वर्ग को अपनी बोझी प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए भी धारमकरयक बाजों में अनिधाय रूप से खर्च करना पड़ता है। इस प्रकार मध्य-वर्ग धार्मिक घघाहों में बुरी तरह प्रसन्न मिषेया। उच्च वर्ग के पास पैसा है। यह

1 "The unbalanced growth of the middle classes in perhaps the most significant fact of modern India. Middle classes all over the world are restless, critical and individualistic. From the nature of the case they are economically unstable. Impelled by the urge to move upward into the ranks of the capitalist, many of them are yet fated to relapse into the ranks of the proletariat. They feel they have to maintain a standard of respectability which is often beyond their means. This constant economic struggle colours their whole outlook of life. The capitalist is so sure of his own standing that he feels no need to assert it. The proletariat also is apt to accept his lot. The middle class refuse to be content and are often aggressive, self-assertive and loud. They seek to justify themselves by criticising others. The same—Page 141.



घपने जन के बस पर हार बस्तु सरीर सकता है। घट मध्य-वर्ग का जीवन ही सर्वाधिक जटिल और प्रभावशाली जीवन है।

पर मध्य-वर्गीय घपने वर्ग को घपने स्वतंत्र चरित्रता को छोड़ना नहीं चाहता ... 'इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि मध्य-वर्गीय भावनाओं से मुक्त-जन समूह प्रतिस्पर्धा के दृष्टिकोण के होते हुए भी न तो 'शासन-वर्ग' में विचलित हुआ है, और न शक्ति-वर्गीय कामगारों के समान बना है। प्रत्युत पूँजीवाद के विस्तार-युग में बसकी संस्था बढ़ी है और पहले युग के मूल्यपूर्ण सामाजिक परिवर्तन में प्रायः निष्पत्ति का भाग लिया है।'

मध्य-वर्ग की नारी की समस्या भी एक जटिल समस्या है। धार्मिक पराधीनता तो उसके सामने है ही—सामाजिक और नैतिक नियमों से भी वह बुरी तरह बंधी हुई है। निम्न-वर्ग की नारी एक पति को छोड़कर दूसरा पति कर सकती है। इसी प्रकार उच्च-वर्ग की नारी में भी यौन-परिवर्तन को इतना महत्व नहीं दिया जाता पर मध्यवर्ग में नारी बर भी तबनी समझी जाती है। उस पर घट बर की प्रतिष्ठा धारणित रहती है। मध्यवर्गीय नारी को घपनी इच्छाओं को बहाना पकड़ा है। प्रेम-वर्ष ने 'गृह' की रचना में और 'निर्मला' में यही तथ्य प्रस्तुत किया है।

मध्यवर्ग प्राचीन संस्कारों से बुरी तरह प्रसूत है। उसमें घमी भी प्राचीन संस्कारों को गलत करने की शक्ति नहीं पाई है, यन्ने ही प्राचीन संस्कारों के प्रति मोह न रहा हो। परम्परागत कर्मियों को मध्य-वर्ग घाम भी इच्छा-यतिच्छा से छोड़े जा रहा है। इन्हीं संस्कारों के फलस्वरूप मध्यवर्गीय नारी-समस्या की रक्षा सर्वाधिक शोचनीय है। सामाजिक क्षेत्र में एक प्रकार का विघ्नघापन मध्य-वर्ग के नारी-समाज में प्रायः मिलता है।

मध्य-वर्ग में बुद्धिमत् नीति का अभाव भी मिलता है। उसके निरवयव बहुत कम पूरे हो पाते हैं। इसका कारण मध्य-वर्ग का धारमनिर्मल न होना है। उसे धम-क्षेत्र में निम्न-वर्ग के और अधिधर-क्षेत्र में उच्च-वर्ग के सहयोग की आवश्यकता पड़ती है। इस कारण उसे समक-समय पर धनक विरोधी तरकों से समझौता करना पड़ता है। समझौते की भावना इसलिए और भी उससे मिलती है क्योंकि वह संघर्ष से यथासंभव बचना चाहता है। मध्य-वर्ग के अधिकांश लोग जोकर-वेरा

1. ".....there is considerable evidence that groups marked by middle class sentiment, with their competitive attitudes and their refusal to become identified with either the "ruling class" or the exploited industrial workers have grown in size during the period of expanding capitalism and have often played a crucial role in the important social changes of that era. —'Society' by R. M. MacIver and C. H. Page, Chap —8—Social Class and Castes Page 264.

पाए जाते हैं। सरकारी या नैरसरकारी गौरवी करनवाले व्यक्तियों की स्थिति बिली नहीं होती कि वे सरकार अपना अपने मामलों के बिच्छ कोई कदम उठ सकें। निराम उन्हें समझते का मार्ग अपनाता पड़ता है। इससे उनके वैयक्तिक जीवन में कोई व्यवधान उत्पन्न नहीं होता। मध्यवर्गीय व्यक्ति यदि कुछ धागे बड़ेमा भी तो मात्र सुधार मावना तक ही। वह कोई ठोस क्रांतिकारी कार्य करने में अपना प्रसमर्ष रहता है। बौद्धिक दृष्टि से यद्यपि उसमें कोई कमी नहीं होती फिर भी सक्रिय रूप में वह कोई साम्यवादी सफलतापूर्वक नहीं बना पाता।

प्रेमचंद मध्य-वर्ग और निम्न-वर्ग के लेखक थे। वे जितनी सफलता के साथ मध्य और निम्न वर्गों का चित्रण कर सके उतनी सफलता के साथ उच्च-वर्ग का नहीं यद्यपि इस क्षेत्र में भी उनका व्यक्तित्व प्रप्रतिम है। परन्तु हम उनके समस्त व्यक्तित्व का अध्ययन करते हैं तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनका मन जितना मध्य और निम्न-वर्गों की समस्याओं में रमा है उतना उच्च वर्ग की समस्याओं एवं प्रश्नों में नहीं। स्वयं प्रेमचंद और उनका चरणा मध्य-वर्ग से सम्बन्ध रखता है। मध्य-वर्गीय होने के कारण मध्य-वर्ग से उनकी निकटता सामाजिक थी। वास्तव में मध्य-वर्ग से वे सर्वाधिक परिचित थे। यदि निम्न वर्ग का अधिकार चित्रण उन्होंने तत्कालीन वातावरण को देखकर किया तो मध्य वर्ग का चित्रण व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर।

प्रेमचंद के समय भारतीय मध्य-वर्ग की स्थिति अत्यन्त बर्धन और वैयक्तिक विरसेपक्ष था। इन्द्रनाथ मदान ने अपनी पुस्तक 'प्रेमचंद एक विवेचना' में काफ़ी विस्तार से किया है। वे लिखते हैं 'मध्य-वर्ग जीवन के प्रभान और लचील धारणों के संघर्ष के बीच से गुजर रहा था। पृथिवीवासी या पारंपार्य सम्प्रदाय के आधार में जीवन के मध्यकालीन और सामुदायिक दृष्टिकोण के बीच एक गहरी खाई खोव दी थी। प्रेमचंद की प्रारंभिक कृतियों का संघर्ष विशेष रूप से मध्यवर्गीय समाज के इसी संघर्ष से है। वह सुधार करने के लिए कटिबद्ध था सामाजिक मामलों में मध्यवर्ग ने व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का अधिक उपयोग आरम्भ किया।... यह मध्य-वर्ग जन आन्दोलन रखनेवाले सम्प्रदायों से मतभेद रखता था जो अपने क्रियाओं की सामयिकी के बल पर अविध्य की सभी चित्तार्थों से मुक्त थे। इसलिए मध्य-वर्ग और उत्साह के साथ नैतिकता को अपना रहा था।'

प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों में मध्य-वर्ग के इसी बल का चित्रण किया है। उनकी सहाय्युक्ति इसी सामाजिक बल के साथ रही। उनके प्रमुख मध्यवर्गीय उपन्यासिक पात्र नैतिकता को अपना कर बने हैं। चूँकि प्रेमचंद की नैतिक

मूर्खों पर गहन घास्वा की हससिए समझने धनीति की कहीं विजय नहीं बताई। सत्य की सदीय घससत्य पर विजय बताया ही सतक्य बीबन बरतन बा। इस प्रकार प्रेमचंद ने अपने उपन्यासों क माध्यम से भारतीय-समाज में समरनेबाले इस प्रग-तिशील मध्य-वर्ग के नैतिक मूर्खों को प्रतिष्ठित किया है। यह बात धूसरी है कि कहीं-कहीं वे स्वयं के मध्य-वर्गीय संस्कारों के कारण समझते का कार्य अपनाते हैं। समझते की भावना मध्यवर्गीय समाज के मानन न विरोध रूप से दिखाई देती है और इससे प्रेमचंद भी नहीं बच सके हैं।

प्रेमचंद के प्रथम उपन्यास 'बरदान' का सम्बन्ध मध्य-वर्ग के जीवन से ही है। बरदान की प्रथाप कमसाबरल जैसे प्रमुख पात्र मध्य-वर्ग के ही हैं, और उनकी समस्याए भी मध्य-वर्गीय परिवारों की समस्याओं से सम्बन्ध रखती हैं। मध्य वर्गीय समस्या में विवाह और प्रेम का जो पारस्परिक विरोध दिखाई देता है उसका बड़ा ही सफ़ल कथात्मक विषय 'बरदान' में हुआ है। प्रारम्भिक और साधारण उपन्यास होते हुए भी 'बरदान' से यह बात स्पष्ट हा जाती है कि प्रेमचंद का मन किस प्रकार मध्यवर्गीय समाज की समस्याओं की ओर आकर्षित हो रहा था।

'प्रतिज्ञा' में प्रेमचंद ने विधवाओं के पुनर्विवाह की समस्या न उद्घाटन मध्य-वर्गीय समाज की पृष्ठभूमि पर ही किया है। मध्यवर्ग में पाई जानेवाली हम समाजिक कुटीरि का पचाई विषय 'प्रतिज्ञा' की प्रमुख विशेषता है। य विधवाओं का जीवन की दयनीय स्थिति को बताकर विधवा-विवाह के प्रचलन पर जोर देते हैं। चूंकि 'प्रतिज्ञा' का युव मध्य-वर्ग के जापरल और संघर्ष का उपाकास का घत प्रेमचंद का बुद्धिकोश भी हम उपन्यास में सुचारवादी रहा है। वे सुधार के द्वारा इस सामाजिक कुटीरि को मिटाना चाहते हैं। प्रतिज्ञा का मुख्य मध्य-वर्गीय पात्र घमूठपत्र है जो विधवाओं की बहा सुधारने में ही अपने जीवन को डोम कर देता है। प्रेमचंद न मध्य-वर्गीय विशिष्ट नैतिक मूर्खों को घमूठपत्र के चरित्र में भली भांति बताबा है।

'प्रतिज्ञा' और 'बरदान' के पश्चात् 'सेवासदन' में प्रेमचन्द मध्य-वर्ग के जीवन का बड़े विस्तार से विषय करते हैं। वास्तव में 'सेवासदन' मध्य-वर्ग का जीवन का ही उपन्यास है। उसमें मध्य वर्गीय परिवारों की एक उबलन समस्या पर प्रकाश टासा गया है—यह समस्या नारी जीवन की समस्या है जो वैवाहिक वैधम्य और बेर्या नृति के पहलू विरोध रूप से रखती है। का इतरनाय मरान सेवासदन की घमीचा करती हुए एक स्वम पर लिखते हैं 'उपन्यास के गमी प्रमुख पात्र मध्य-वर्ग के हैं और उनका चरित्र-विषय जीवन के सुचारवादी बुद्धिकोश के ही किया गया है। सफ़री के पिता हृच्छाचर में हम बच के सब मुख और सबमुख विद्यमान हैं।' ... पचाई

मध्य-वय का एक विशेष प्रकार का प्रतिनिधि है। वह अपने पुराने विचारों का है और अपने व्यवहार में नैतिकता का भावग्रह रखता है।<sup>१</sup> इस प्रकार 'विवाहसम' की कहानी भी मध्य-वर्षीय परिवारों की कहानी है। उसमें प्रायः सभी पात्र मध्यवर्षीय संस्कारों को अपनाए हुए चलते हैं।

'बरदान, प्रतिज्ञा' और 'विवाहसम' के परचात् मध्य-वर्षीय समाज का उपन्यास 'निर्मला' हमारे सामने आता है। इसके पूर्व 'प्रेमाश्रम मित्रा वा बुका वा पर 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द किसानों और जमींदारों के संपर्क में ही उत्पन्न आते हैं। मध्यवर्षीय समाज का चित्रण इसमें प्रथम नहीं है। निर्मला में दो सम रचाए हैं—(१) बड़े प्रवा और (२) एक ऐसे बूढ़ से जिसकी पत्नी की मृत्यु हो चुकी हो एक नया लड़की का विवाह। उपन्यास की कथा तीनों मध्य-वर्षीय परिवारों के जीवन से संबंधी हुई है—एक परिवार बाबू उषमभागु का है दूसरा बाबू ठोठाराम का और तीसरा सिन्हा साहब का। इन तीनों परिवारों के पारिवारिक जीवन के चित्रण में मध्य-वय के संस्कारों और भावनाओं का बड़ा ही उत्कण्ड प्रकट हुआ है।

निर्मला के उपरान्त 'रंगभूमि' आता है। रंगभूमि में औद्योगिक समस्या प्रमुख है, यद्यपि इस उपन्यास में धनी-गणों अपना पुरीपत्तियों का उल्लेख ही अधिक है। किसानों और शमीक जनता का भी चित्रण समानांतर हुआ है। यद्यपि 'रंगभूमि' निम्न और उच्च-वर्गों के जीवन से सम्बन्ध रखता है। 'कायाकल्प' में प्रचलित उच्च मध्य और निम्न-वर्गों का सम्मिश्रित चित्रण दृश्य है। औपन्यासिक कथा के दो भाग इस उपन्यास में हैतो जा सकते हैं। एक भाग का सम्बन्ध सामाजिक समस्या से है और दूसरे का सम्बन्ध दार्शनिक और रहस्यमय मोक्ष के चित्रण से। प्रस्तुत उपन्यास में दो प्रसंग हैं (१) बजरंग-मनोरम का प्रसंग (२) सहिष्णु-बजरंग की कथा (३) मनोरमा-विठालसिंह की कहानी (४) रोहिणी-विठालसिंह की कथा (५) महेन्द्रसिंह-देवप्रिय की कहानी और (६) हरिदेवक-सौगो की कथा।

उपर्युक्त प्रसंगों में केवल बजरंग का प्रारम्भिक जीवन और उसका परिवार ही मध्य-वय से सम्बन्धित है। बजरंग का प्रारम्भिक जीवन उसके पिता और माताएँ प्रकटित मध्य-वर्षीय समाज के प्रतीक हैं, यद्यपि उसका पिता बजरंग पुरानी पीढ़ी के मध्य-वर्षीय समाज का प्रतिनिधि है।

'कामकल्प' के परचात् मध्य-वर्ग का सबसे प्रसिद्ध और चित्रित उपन्यास 'दहन' लिखा गया है। वास्तव में देखा जाय तो 'दहन' प्रेमचन्द का मध्य-वर्ग की समस्याओं का उद्घाटन करने वाला सर्वप्रथम उपन्यास है। इस उपन्यास में चरित्र चित्रण को भी पर्याप्त स्थान दिया गया है। 'दहन' का प्रमुख पात्र रमाकांत

है। रमाकांत के एवं मध्य प्रमुख पात्रों के चरित्रांकन में मोक्षक विरोध सजप दिखाई देता है। पर यहाँ भी मध्य-वर्गीय समाज की समस्याएँ पृष्ठभूमि में कार्य करती हैं। इस प्रकार 'शबन' भी समस्यामूलक उपन्यास उद्हरता है। रमाकांत स्वयं मध्य-वर्गीय समाज का व्यक्ति है एवं मध्य-वर्ग की घनेक चारित्रिक विरोधताएँ उसमें विद्यमान हैं। मध्य-वर्गीय सम्मान-माषना ही 'शबन' के कथाधार का आधार है। इसी सम्मान-माषना के कारण ही रमाकांत शबन करता है और अपने जीवन को संकट में डालता है।

'शबन' के बाद 'कर्मभूमि' गोदान' और 'मंगलमूत्र' मिले गए। 'मंगलमूत्र' प्रेमचन्द का उपन्यास है। इसमें अविवात वर्ग की ऋत्विगों के मात-सात संघर्षशील मध्य-वर्ग का चित्रण मिलता है। संभवतः यह उपन्यास भी मध्य-वर्ग से सम्बन्ध रखनेवाला बनता। 'कर्मभूमि' अछूतों की समस्या के अतिरिक्त राष्ट्रीय स्वाधीनता की समस्या से सम्बन्धित है। इसमें मध्य-वर्ग अतिरिक्त प्राप्त नहीं कर पाता। अमरकांत की परती और विचारा सात आर्थिक बुद्धि से मध्य-वर्ग की सीमा में नहीं आते अतः उनकी समस्या मध्य-वर्गीय न होकर सामान्य हो गई है। 'गोदान' किसान वर्ग का उपन्यास है—ग्रामीण बनता न महानाभ्य है। वृत्ती-पतिवों और मिलमालिकों का समावेश अविवात-वर्ग के सभी स्वटप को व्यक्त करने के निमित्त है। यह बात धुसरी है कि उसमें एक ही पात्र मध्य-वर्ग से सम्बन्ध रखते हों। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रमर्च के उपन्यासों में मध्य-वर्ग का विरोध महत्व है।

## प्रेमचन्द की साहित्य संयन्धी मान्यताएँ

प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताओं के सम्बन्ध में काफी सिखा गया है। आलोचकों ने अपने विचार-वाच को वृष्टि में रखते हुए या तो उनकी इन मान्यताओं को अपने अनुकूल प्रदर्शित किया है या उनका खण्डन किया है। इस वृष्टिकोश से प्रेमचन्द की साहित्यिक मान्यताओं की वास्तविकता धिपी रह गई है।

मनुष्य में वैचारिक परिवर्तन होते हैं। जीवन-घनूमों से वह घनेरु गई-गई बातें सीखता है। यह परिवर्तन प्राकस्मिक नहीं होता। पहले मनुष्य में अपनी पूरु बारण्याओं के प्रति एक अविश्वास का भाव बाप्रत होता है। इस स्थिति में वह एकदम गई बारण्याओं को पहल हृदय में स्थान नहीं दे बैठा क्योंकि उसे अपनी पूरु बारण्याओं से अविश्वास होते हुए भी मोह बना रहता है। फिर धीरे-धीरे उसके अविश्वास-भाव की पुष्टि होती है और वह नए विचारों की ओर प्राकणित होता है। एक समय आता है जब कि वह पूरी तरह से बरम चुनप होता है। अतः यह वैचारिक परिवर्तन कुछ समय लेता है—कम या अधिक। जिस साहित्यकार में वैचारिक परिवर्तन होता है उसके साहित्य में उपयुक्त स्थितियाँ कम या अधिक रूप में विद्यमान रहती हैं। कहीं-कहीं असंगतियाँ भी पाई जाती हैं। अतः उसके साहित्य में हमें उपयुक्त मनःस्थितियों को वैज्ञानिक खोज करनी चाहिए तभी हम उसकी वास्तविक मान्यताओं को समझ रूप में समझ सकेंगे। प्रेमचन्द में साथ यही बात है।

उनमें एक विशेष बात धीर देखने में आती है। वह यह कि पारिभाषिक (टेकनिकल) शब्दों का जो अर्थ वे लेते हैं वह कोई सभमान्य नहीं है। ऐसे पारिभाषिक शब्दों के अन्तर्गत अनेक शब्द हैं, जवा शृंगार आनन्द आदर्श, यथाप कला के सिने सौन्दर्यवृत्ति आदि। प्रेमचन्द ने इन पारिभाषिक शब्दों का यदी अर्थ लिया है हमें सबप्रथम उसके मूल में जाना चाहिये तभी हमारी ब्याख्या उनक प्रति उचित न्याय कर सकेंगी।

प्रेमचन्द आच्छताधी से अथवा अर्थाधी अथवा उनके वृष्टिकोश में दोनों का सम्मिश्रण वा इसप्रति नियम करने के पूरु प्रेमचन्द ने साहित्य धीर कला को किम रूप में बहुय किया वा समकी ब्याख्या करना आवश्यक है।

## साहित्य

प्रेमचन्द साहित्य की परिभाषा अपने डीप से करते हैं। वास्तव में किसी एक सत्य का लेकर साहित्य की परिभाषा सीमित नहीं की जा सकती। बिटोपी तर्कों को हम धसप-धमग कर सकते हैं, पर पूरक तर्कों को प्रत्यास वा अप्रत्यास की श्रेणी में ही विभाजित किया जा सकता है। प्रेमचन्द प्रागतिथीय साहित्यकार थे। वे प्रागिनाम्ही प्रतिक्रियावादी व अप्रागतिथीय तर्कों के बिरोधी थे। कला वाद से इनका साहित्य जोता हुआ है। कलावाद—काव्यनिक स्वीस-धरमीय की सीमाओं से मुक्त निराला वैयक्तिक भावनाओं का प्रतीक है। प्रेमचन्द ऐसे साहित्य के समर्थक नहीं थे। वे साहित्य का वास्तविक जीवन से अभिन्धित सम्बन्ध मानते हैं। जीवन साहित्य का आधार है उसके कटकर साहित्य अपना मूल्य को देता है। वे लिखते हैं—

'साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की बीमार खड़ी होती है।'

यह सहज ही प्रश्न उत्पन्न है कि जीवन क्या है और समझ क्या उद्देश्य है? प्रेमचन्द जीवन को सामाजिक सभेच्छता में ही देखते हैं। वे उसमें प्रति और संघर्ष ही नहीं चाहते प्रत्युत सद्भावों की प्रतियोग भी धनिबाध मानते हैं। जीवन के प्रति इनका दृष्टिकोण महान् है। ऐसे जीवन का क्या उद्देश्य हो सकता है? प्रेमचन्द कहते हैं—

'जीवन का उद्देश्य ही धामन्द है। मनुष्य जीवनपर्यन्त धामन्द ही की योग्य में पन्न रहता है।'

यहां धामन्द से धमियाय मय मनोरंजन धधका शैतिक मुय-मुधिया के धालि से लगी है। प्रेमचन्द धामन्द की माननिक लुति के धर्ष में प्रमुक्त करते हैं। और इसी से धामन्द का धामार मुन्दर और सत्य बताते हैं। बीसा कि वे धामे लिखते हैं—

किसी को बह (धामन्द) टल इम्ब म मिमता है, किसी को नरे-नूरे परि वार में किसी को लम्बे-बीड़े धवन में किसी को एरधर्ष में शैतिक साहित्य का धामन्द इन धामन्द से ऊँचा है, इससे पवित्र है उसकर धामार मुन्दर और सत्य है। वास्तव में सच्चा धामन्द मुन्दर और सत्य में विमता है, सनी धामन्द वा धमिना बहो धामन्द उत्पन्न करना साहित्य वा उद्देश्य है।<sup>१</sup>

१ कुछ विचार—पृष्ठ ०१

२. बही — पृष्ठ ७१

३. बही — पृष्ठ ७१

इसीलिए साहित्य की परिभाषा जीवन-दानन्द सत्य और सुन्दर के मेल से बनती है। जो सत्य सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य है। दानन्द के साम सत्य का प्रविष्ट सम्बन्ध है—

‘जहाँ मनुष्य अपने मौलिक यथार्थ प्रकृतिम रूप में है वही दानन्द है। दानन्द कृत्रिमता और बाबन्धर से कोधों दूर भागता है।’<sup>१</sup>

प्रेमचन्द साहित्यकार को सत्य और सौन्दर्य का प्राथमिक मानते हैं और वही की प्रामाण्यता को साहित्य की संज्ञा देते हैं—

‘मनुष्य ने जगत में जो कुछ सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।’<sup>२</sup>

लेकिन सत्य की खोज केवल साहित्यकार ही नहीं करता। वास्तविक धर्म वैज्ञानिक भी करते हैं। प्रेमचन्द सत्य से दानन्द का तीन प्रकार का सम्बन्ध बताते हुए लिखते हैं कि जहाँ सत्य दानन्द का स्रोत बन जाए वही वह साहित्य की सीमा में आ जाता है यथा—

सत्य से दानन्द का सम्बन्ध तीन प्रकार का है। एक विज्ञान का सम्बन्ध है, दूसरा प्रयोजन का सम्बन्ध है और तीसरा दानन्द का। विज्ञान का सम्बन्ध वर्तन का विषय है। प्रयोजन का सम्बन्ध विज्ञान का विषय है और साहित्य का विषय केवल दानन्द का सम्बन्ध है। सत्य जहाँ दानन्द का स्रोत बन जाता है वही वह साहित्य हो जाता है।<sup>३</sup>

अतः साहित्य जीवन-दानन्द के लिये सत्य की खोज और सुन्दर की प्रतिष्ठा करता है। साहित्यकार जीवन की भावनेना नहीं कर सकता। जब समाज में जीवन का स्तर गिरने लगता है तब साहित्यकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उसकी दानन्दता करे। साहित्य जीवन को व्याख्या है दानन्दता है। वह हमें जीवन की महत्ता से परिचित कराता है। प्रेमचन्द कहते हैं—

‘साहित्य की महत्ता-तो परिभाषाएँ को गई है, पर मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा ‘जीवन की दानन्दता’ है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो चाहे कहानियों के रूप में—उसे हमारे जीवन की दानन्दता और व्याख्या करनी चाहिये।’<sup>४</sup>

इतना ही नहीं वह मानव-जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं पर भी विचार करता है। उनको हम करने की प्रवृत्त कराता है। मात्र दानन्दता

१ वही — पृष्ठ ७४

२ वही — पृष्ठ २६

३ वही — पृष्ठ ७४

४ वही — पृष्ठ ६



## साहित्य

प्रेमचन्द साहित्य की परिभाषा अपने बंध से करते हैं। वास्तव में किसी एक सत्य को लेकर साहित्य की परिभाषा सीमित नहीं की जा सकती। विरोधी तर्कों को हम प्रसन्न-व्यसन्न कर सकते हैं। पर पुरक तर्कों का प्रभाव या प्रप्रभाव की भेखी में ही विभाजित किया जा सकता है। प्रेमचन्द प्रयत्नशील साहित्यकार थे। वे प्रविणामी प्रतिक्रियाकारी व अप्रयत्नशील तर्कों के विरोधी थे। 'कलावाद' से उनका साहित्य कोसों दूर है। कलावाद—काव्यनिक रमैल-परलोम की सीमाया से मुक्त नितास्त वैयक्तिक भावनाओं का प्रतीक है। प्रेमचन्द ऐसे साहित्य के समर्थक नहीं थे। वे साहित्य का वास्तविक जीवन से अविच्छिन्न सम्बन्ध मानते हैं। जीवन साहित्य का आधार है, उससे बटकर साहित्य अपना महत्त्व खो देता है। वे लिखते हैं—

'साहित्य का आधार जीवन है। इसी नींव पर साहित्य की बीमार छड़ी होती है।'

यद्यपि प्रेमचन्द ही प्रथम उठता है कि जीवन क्या है और क्या क्या उद्देश्य हैं? प्रेमचन्द जीवन को सामाजिक सापेक्षता से ही देखते हैं। वे उसमें प्रति और संघर्ष ही नहीं चाहते प्रबुध सञ्चारों की प्रवृत्ति भी परिवर्तन मानते हैं। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण महाम् है। ऐसे जीवन का क्या उद्देश्य हो सकता है? प्रेमचन्द कहते हैं—

जीवन का उद्देश्य ही धाम्य है। अनुप्य जीवनपर्यन्त धाम्य ही की खोज में पड़ा रहता है।<sup>१</sup>

यही धाम्य से धमिप्राम मात्र यमोरंजन धववा नैतिक सुग-सुविधा के प्राप्ति से नहीं है। प्रेमचन्द धाम्य की मानविक तृप्ति के धर्म म प्रयुक्त करते हैं। और इन्हीं के धाम्य का आधार सुन्दर और सत्य बताने हैं। और कि वे धाम्य सिद्धते हैं—

किसी को बहू (धाम्य) रत्न प्रण से मिलता है, किसी को नूरे-नूरे परिवार में किसी को लम्बे-नोड़े धवन में किसी को ऐरधर्म में लैरिज साहित्य का धाम्य, इन धाम्य से ऊँचा है, इससे पवित्र है, उसका आधार सुन्दर और सत्य है। वास्तव में सच्चा धाम्य सुन्दर और सत्य से निकलता है, उही धाम्य का वर्तना की धाम्य उत्तम्य करना साहित्य का उद्देश्य है।<sup>२</sup>

१ बुध विचार—पृष्ठ ७२

२. वही — पृष्ठ ७३

३. वही — पृष्ठ ७३

इसीलिए साहित्य की परिभाषा जीवन मानन्द सत्य और सुन्दर के मेल से बनती है। जो कथ सत्य और सुन्दर है, वही साहित्य है। मानन्द के साथ सत्य का अनिष्ट सम्बन्ध है—

‘वही मनुष्य अपने मौखिक मन्त्राण मङ्गलम रूप में है वही मानन्द है। मानन्द कृत्रिमता और बाह्यम्बर से कोसों दूर भागता है।’<sup>१</sup>

प्रेमबन्ध साहित्यकार को सत्य और सौन्दर्य का प्राराधक मानते हैं और उनको जो व्यक्ति को साहित्य की सीमा बतें हैं—

‘मनुष्य ने जगत में जो कृष्ण सत्य और सुन्दर पाया है और पा रहा है, उसी को साहित्य कहते हैं।’<sup>२</sup>

वेदिक सत्य की जोड़ केवल साहित्यकार ही नहीं करता वास्तविक मर वैज्ञानिक भी करते हैं। प्रेमबन्ध सत्य से धारणा का तीन प्रकार का सम्बन्ध बताते हुए लिखते हैं कि वही सत्य मानन्द का खोद बन जाए वही वह साहित्य की सीमा में पा जाता है। यथा—

सत्य से धारणा का सम्बन्ध तीन प्रकार का है। एक विज्ञान का सम्बन्ध है, दूसरा प्रयोजन का सम्बन्ध है और तीसरा मानन्द का। विज्ञान का सम्बन्ध दर्शन का विषय है। प्रयोजन का सम्बन्ध विज्ञान का विषय है और साहित्य का विषय केवल मानन्द का सम्बन्ध है। सत्य वही मानन्द का खोद बन जाता है, वही वह साहित्य हो जाता है।<sup>३</sup>

एक साहित्य जीवन-मानन्द के लिये सत्य की जोड़ और सुन्दर की प्रतिष्ठा करता है। साहित्यकार जीवन की प्रकृतिकता नहीं कर सकता। जब समाज में जीवन का छतर मिलने लगता है तब साहित्यकार का वह कर्तव्य हो जाता है कि वह उसकी धाराबन्ध करे। साहित्य जीवन की व्याख्या है धारणा है। वह हमें जीवन की महत्ता से परिचित कराता है। प्रेमबन्ध लिखते हैं—

‘साहित्य की बहुत-सी परिभाषाएँ की गई हैं पर मेरे विचार से इसकी सर्वोत्तम परिभाषा ‘जीवन की धारणा’ है। चाहे कठ निबन्ध के रूप में हो चाहे कहानियों के रूप में—उसे हमारे जीवन की धारणा और व्याख्या करनी चाहिये।’<sup>४</sup>

इतना ही नहीं वह मानव-जीवन से सम्बन्धित समस्त समस्याओं पर भी विचार करता है उनको हल करने की प्रयत्न करता है। मात्र धारणा

- १ वही — पृष्ठ ७४  
 २ वही — पृष्ठ २६  
 ३ वही — पृष्ठ ७४  
 ४ वही — पृष्ठ ६

जीवन के लिये पर्याप्त नहीं है। इहीलिए प्रेमचन्द कहते हैं कि साहित्य का मध्य जीवन का सही रास्ता बतलाता है, जिससे उससे पवित्रता एवं मङ्गलता बनी रहे—

‘साहित्य पर उदरम जीवन के धारणों को अस्थिर करता है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कर्म-कर्म पर मानेवालों कठिनाइयों का सामना कर सकें। अगर साहित्य से जीवन का सही रास्ता न मिले तो ऐसे साहित्य से मान ही क्या? जीवन की धारणता को लिए, चाहे चित्र कीचिमे घाट के लिये लिखिए, चाहे ईश्वर के लिए, मनोवृत्त विज्ञान चाहे विरहवादी सत्य की उत्पत्ति की लिए, अगर उससे हम जीवन का सच्चा माग नहीं मिलता तो उस रचना से हमारा कोई फायदा नहीं। साहित्य न चित्रकला का नाम है न सचै सबको चुनकर लबा देने का धर्मकारों से बाकी की ही भावना बनाने का। उंचे धोर पवित्र विचार ही साहित्य की जान है।’<sup>१</sup>

साहित्य की उपर्युक्त परिभाषा से ऐसी ध्वनि निकलती है कि वह ‘मीति-शास्त्र’ का पर्यायवाची है। प्रेमचन्द साहित्य और मीतिशास्त्र का लक्ष्य एक मानते हैं। अन्तर केवल उपदेश की विधि है। ‘मीतिशास्त्र’ का सम्बन्ध मरिचक की सर्वव्यक्ति से है, जब कि साहित्य का हृदय भावों से—

‘मीति-शास्त्र और साहित्य-शास्त्र का एक लक्ष्य है केवल उपदेश की विधि से अन्तर है। मीति-शास्त्र ठीक धोर उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन में प्रभाव डालने का माग करता है। साहित्य न अन्तर लिए मानसिक व्यवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन सिका है।’<sup>२</sup>

इस प्रकार साहित्य भावों के द्वारा मनुष्य को उसके मीतिक अङ्कित यथावत् रूप में प्रस्तुत करता है।

‘मनुष्य स्वभाव से देवगुण्य है। जमान के इस प्रपंच या धोर परिस्थितियों के बसोभूत होकर वह अपना देवत्व या बौद्धता है। साहित्य इसी देवत्व को अपने रचान पर प्रतिष्ठित करने को चेष्टा करता है, उदरता से नहीं नवीकृतों से नहीं, माया का स्मरण करके मन के कोमल ताप पर चोट मकाकर प्रकृति से सामं-जस्य उत्पन्न करके।’<sup>३</sup>

साहित्य भावों के चरित्र-निर्माण में बहुत बड़ा हिस्सा बँटाता है। साहित्यिक पाठकों की मङ्गलता प्रतिपादित करते हुए प्रेमचन्द कहते हैं—

१ हम — जनवरी १९१२

२ कुछ विचार—पृष्ठ ८

३ वही — पृष्ठ ७१

किसी राष्ट्र को सबसे मूल्यवान् सम्पत्ति उसके साहित्यिक धारा होते हैं। व्यास और वास्वीकि न जिन धारों की सृष्टि की वह धारा भी भारत का चिर अंबा किए हुए हैं। राम अगर वास्वीकि के साथे न न बनते तो राम न रहते। सीता भी उसी साथे इसकर सीता हुई।<sup>१</sup>

इस प्रसंग साहित्य को मानवीय उत्थान का साधन मानते हैं और अपने पूर्व की महान् सांस्कृतिक विपत्त पर नर करते हैं।

### कला, सामयिकता और साहित्यकार

कला के संबंध में प्रेमचंद के विचारों में कुछ परसंस्तिर्था दिखाई देती हैं। कहीं वे कला के लिये कला का स्पष्ट समर्थन करते हैं तो कहीं सैदान्तिक रूप से उसका महत्त्व प्रतिपादित कर मात्र वर्तमान में उसकी उपासना स्वीकार करते हैं, तो कहीं उसका स्पष्ट खंडन करते हैं।

प्रेमचंद कलावादी नहीं थे यह उनके समस्त साहित्य से स्पष्ट है। प्रेमचंद के विरोधियों ने यह प्रेमचंदमूगीन कुछ धारोचकों ने उनके साहित्य पर कलाहीनता का आरोप भी लगाया था। किसी साहित्यकार की कृति को कलावादी ठहराना एक घलघात बात है तथा उसमें कलाहीनता बताना सभ्यता के लिये निन्द्य। प्रेमचंद समस्त साहित्य और कला के संबंधों का समस्त समय 'कलावाद' और 'कला' में अंतर नहीं समझ पाए थे और इसी कारण उनके कथकों में परसंस्तिर्था मिलती हैं। वास्तव में वे 'कलावादी नहीं थे' यद्यपि साहित्य में कला का अनावेद्य भाव शक्य समझते थे। उस समय के कलावादी धारोचकों को इससे संतोष न था। वे प्रेमचंद के साहित्य में कला के लिये कला की प्रसिद्धि चाहते थे और जब उन्हें यह प्रसिद्धि नहीं मिली तो उन्होंने निराश होकर प्रेमचंद के साहित्य पर प्रचारवादी तथा कलाहीनता के आरोप लगाये।

यदि कतिपय गहराई से देखा जाय तो प्रेमचंद के कला-संबंधी विचारों में परसंस्तिर्था नहीं है यह समझ में आ सकता है। इस दृष्टि से हमें उन भावों पर ठट्ठा दृष्टि रखनी होगी जिसको प्रेमचंद विविध पारिभाषिक शब्दों के लिये प्रयुक्त करते हैं।

एक स्थान पर कला के लिये कला सिद्धान्त को साहित्य का सबसे अंबा धारोचक घोषित करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं—

'साहित्य का सबसे अंबा धारोचक यह है कि पुरानी रचना केवल कला की प्रति के लिये की जाय। कला के लिये कला' के सिद्धान्त पर किसी की प्रसंति नहीं हो सकती।'<sup>२</sup>

१ कुछ विचार—पृष्ठ ८०

२ कहीं — पृष्ठ ४१, ४२।

इससे प्रथम स्पष्ट शर्तों में 'कसा के लिए कसा' का समर्पण घोर क्या हो सकता है ? पर यह भी बेहता आवश्यक है कि प्रेमचंद 'कसा के लिए कसा' का मतलब क्या समझते हैं। यात्रे चलकर वे 'कसा के लिए कसा' की व्याख्या करते हुए लिखते हैं—

'बहु साहित्य विद्यार्थी हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियाँ पर धन लम्बित हो। ईर्ष्या और प्रेम श्लोथ और मौन भक्ति और विद्यार्थी बुद्ध और मज्जा सभी हमारी मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं। इन्हीं की घटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य है और बिना उद्देश्य के तो कोई रचना हो ही नहीं सकती।'

अब स्पष्ट है कि प्रेमचंद के सिद्धे 'कसा के लिए कसा' का अर्थ कसाबादियों का अर्थ नहीं है। वे उन्हे मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियाँ की अन्विष्टिपूर्ण समझते हैं और इन्हीं कारण सामयिक तथा शारदय साहित्य का प्रेम साक्ष्ये पाया है। वे लिखते हैं—

'कसा के लिए कसा का समय बड़े हुआ है जब देश संघर्ष और मुठो हो। हम सब देखते हैं कि हम भक्ति शक्ति के राजनीतिक और सामाजिक रूपों में अडके हुए हैं जिनपर निगाह उठती है, बुद्ध और शक्तिता के भीषण दृश्य दिखाई देते हैं विपत्ति का कसब कसब मुनाई देता है, तो कैन संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न बहुत उठे।'

यहाँ विद्वान्ठ रूप में 'कसा के लिए कसा' का महत्व स्वीकार करते हुए भी वे वर्तमान सामयिक समस्याओं के सम्मुख उठके प्रहृष्ट की उपादेयता प्रतीकार करते हैं। सामयिक समस्याओं को मौलिक प्रवृत्तियों के सम्मुख प्राबलिकता देनी चाहिये। उन्होंने कसाबादियों की सामयिक उपेक्षा का समर्पण नहीं किया। वे 'कसा के लिए कसा' की अर्थ में पाकर भोक्छित की चिन्ता न करने की बात नहीं करते। कसाबादियों के 'सौंदर्य' में शील-धरमीय में कोई अन्तर नहीं किया जाता। प्रेमचंद ने इस सौंदर्य-भावना को कहीं भी अन्तर नहीं बताया। 'कसा' बिना 'कसा के लिए कसा' के प्रति प्रेमचंद का निम्नो बुद्धिदोष समझे एवं बिना उनके भावों की महुराई में उतरे उनके विचारों में अन्तर्निर्वा कनाता अनुचित है।

अन्त-सामयिक साहित्य और शारदय साहित्य के बारे में निम्नो हुए प्रेमचंद कहते हैं कि कसा साहित्य कभी पुटना नहीं होता। मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियाँ सामयिक साहित्य में कोई लोग नहीं हो पायीं। और जब तक वे मौलिक प्रवृत्तियाँ

१ बुद्ध विचार—पृष्ठ ४२।

२ वही — पृष्ठ ४२।

उसमें विद्यमान है वह मिट नहीं सकता। चाहे उमदा विषय कोई सामयिक समस्या हो और चाहे कोई शारङ्ग तप्य। प्रेमचन्द एक उदाहरण देते हुए कहते हैं—

“यम का काका की कृटियाँ गुलामी की प्रथा से व्यक्ति हृदय की रचना है, पर मात्र उच्च प्रथा के उठ जाने पर भी उसमें वह व्यापकता है कि हमयोग भी उसे पकड़ मुक्त हो जाने है। सच्चा साहित्य कभी पुराना नहीं होता। वह सदा नया बना रहता है। दर्शन और विज्ञान समय की यंत्र के अनुसार बनने रहते हैं। पर साहित्य तो हृदय की वस्तु है और मानव-हृदय में तकरीबियाँ नहीं होतीं। हृदय और विस्मय क्रोध और द्वेष घाटा और मय मात्र भी हमारे मन पर सही तरह संचित है।”<sup>१</sup>

यत्र वे कलाकारियों की तरह सेवक का बेरकाम क बंधन में मुक्त नहीं करते जब तक वह बेरकाम का नहीं बनता तब तक सबैतरीय और सबकामीन भी नहीं बन सकता। प्रेमचन्द लिखते हैं—

‘साहित्यकार बहुधा अपने बेरकाम से प्रभावित होता है। जब कोई महूर बेरकाम में उठती है, तो साहित्यकार के लिये उससे अधिकलिन रहना अर्थात् हो जाना है। उसकी विद्याम आत्मा अपने बेरकामियों क कष्टों से विकृत हो उठती है और तीव्र विकृतता में वह गी उठता है, पर उसके कल में भी व्यापकता होती है। वह स्वदेश का होकर भी सार्वभौमिक रहता है।’<sup>२</sup>

साहित्य माननीय इतिहास का सच्चा सेवा-धोखा है। युग का प्रतिबिम्ब है—

जीवन पर साहित्य से अधिक प्रकारा और कीम वस्तु काम सकती है क्योंकि साहित्य अपने बेरकाम का प्रतिबिम्ब होता है।<sup>३</sup>

लेकिन प्रेमचन्द ने सामयिकता का मात्र ऊपरी स्पष्ट नहीं किया था। जैसा श० चमबिनास शर्मा लिखते हैं—

उनका उद्देश्य सामयिकता व बेरकाम की विशेषता से परे नहीं था उनका साहित्य सामयिकता की महत्त्व को धूनेबाना साहित्य नहीं था उसमें यहउई से दूबनेबाना बेरकाम की विशेषताओं के परस्पर संबंध का चित्रित करनेबाना साहित्य था। इसलिए वह इतना सरल और प्रभावशाली है।<sup>४</sup>

१ कुल विचार—पृष्ठ ७७।

२ वही — पृष्ठ ७७।

३ वही — पृष्ठ ७७।

४ प्रेमचंद और उनका युग—पृष्ठ १३२।

मानस्य और मनोरंजक शब्द पर्यायवाची नहीं है। प्रेमचंद मनोरंजन को साहित्य का निकृष्ट उद्देश्य मानते हैं—

साहित्य केवल मन बहुलाय की चीज नहीं है, मनोरंजन के सिवा उसका और भी कुछ उद्देश्य है।<sup>१</sup>

साहित्यकार के मन के संबंध में लिखते समय वे कहते हैं—

'साहित्यकार का मन केवल मूकजिह्व सजाया और मनोरंजन का सामान जुटाया नहीं है, उसका बरजा इतना न निराहने।'<sup>२</sup>

मनोरंजन को एकमात्र उद्देश्य मानकर जो रचना की जाएगी वह उत्सहीन होगी। कहानी-कला के संबंध में लिखते समय प्रेमचंद ने मनोरंजन की निकृष्टता के बारे में फिर लिखा है—

'उत्सहीन कहानी से चाहे मनोरंजन भले ही हो काम मार्गसिद्ध तपति नहीं होती। यह सच है कि हम कहानियों में उपदेश नहीं चाहते लेकिन विचारों को उत्तेजित करने के लिए, मन के सुन्दर भावों को बाह्य करने के लिए, कुछ न कुछ प्रवरण चाहते हैं।'<sup>३</sup>

धामे बसकर पाठकों का मन बहुमानेवाले साहित्यकारों की सुमना से भाटों मरारियों विद्वेषकों और मसखरे से करते हैं—

'साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन बहुलाना नहीं है। यह तो भाटों और मरारियों विद्वेषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पर इससे कहीं ऊँचा है। वह हमारा पच-मसखरक होना है, वह हमारे मनुष्यत्व को जपावा है, हममें सज्जनों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फेलावा है। कम से कम उसका यही उद्देश्य होना चाहिये।'<sup>४</sup>

अब प्रेमचंद का साहित्य उद्यम और सुन्दर की प्रतिष्ठा करनेवाला हमें मानसिक तपति प्रदान करनेवाला, संपर्क के लिये प्रेरित करनेवाला सच्चा साहित्य है। वह 'विमागी रेवाही' का साहित्य नहीं है। जीवन में श्रृंगारिक मनोभावों की सत्ता प्रवरण है पर वे हमारे जीवन के संवसाज हैं। साहित्यकार को अपनी दृष्टि श्रृंगारिक मनोभावों तक ही सीमित नहीं कर लेनी चाहिये—

'क्या वह साहित्य जितना किये श्रृंगारिक मनोभावों और उनसे उत्पन्न होनेवाली विरहस्यवा निराशा धारि तक ही सीमित है जितने बुनिया और

१ कुछ विचार—पृष्ठ ८

२ १०

३ ३०

दुनिया की कठिनाइयों से दूर भागना ही जीवन की सार्थकता समझी गई हो हमारी विचार और भाव संबंधी आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है? शृंगारिक स्त्रीभाव मानव-जीवन का एक अंग मात्र है और जिस साहित्य का अधिकारा हमी से संबंध रखता हो वह उन कानि और गुण के लिये पर्यं करने की वस्तु नहीं हो सकता और न उसकी सुदृष्टि का ही प्रमाण हो सकता है।<sup>१</sup>

कुछ साहित्यकार मपार्थकार के नाम पर मीन संबंधों का मन्त्र विमल करते हैं। प्रववा रसील-भरसील के बन्धन से मुक्त साहित्य में प्रति शृंगार का प्रचार करते हैं। प्रेमचन्द ऐसे कामोत्तेजक साहित्य के सक्त विरोधी थे। उन्होंने हम नयी संस्कृति का सर्वेक निरूकर तथा प्लेटफार्मों से विरोध किया। समाज की नैतिक गिरावट के लिए बहुत कुछ साहित्य उत्तरदायी होता है। प्रेमचंद भरसीलता को छान नहीं कर सकते थे चाहे वह कलावाकियों को घोर प्रकट हो और चाहे मपार्थवाकियों के। भारतीय-साहित्य-परिषद्' नामक टिप्पणी न परिषद् के उद्देश्यों की व्याख्या करते हुए वे करते हैं—

एक दल साहित्यकारों का ऐसा भी है जो साहित्य को रसील-भरसील के बंधन से मुक्त समझता है। वह कानिदास और वास्मीकि की रचनाओं से भरसील शृंगार की नमोर बेकर भरसीलता की सप्यई देता है। अगर कानिदास वा वास्मीकि वा और किसी नए वा पुराने साहित्यकार न भरसील शृंगार रचा है तो उसने सुदृष्टि और शौर्य की भावना को हत्या की है। जो रचना हमें कुराचि की घोर से जाए, कामुकता की प्रोत्साहन के समाज में पंथी कैनाए, वह त्याग्य है चाहे किसी की भी हो। साहित्य का काम समाज और व्यक्ति को ऊँचा उठाना है। उसे नीचे गिराना नहीं।<sup>२</sup>

रवि-वर्धन वा मन्त्र विमल को साहित्य का ऊँचा धादश कौन लोग समझते हैं इस संबंध में प्रेमचंद धारो निरूते हैं—

'जो प्राँत केवल मन्त्र विमल ही में शौर्य देखती है और वा रवि केवल रतिवचन वा मन्त्र-विमल में ही कवित्व का सबसे ऊँचा विकास देखती है, उसके स्वस्थ होने में हमें संदिग्ध है। यह 'मुन्दर' का धाराय न समझने की बरकत है। जो लोग दुनियाँ को अपनी मुदृष्टी में बन्द किए हुए हैं उन्हें विमानी ऐवासी का अधिकार हो सकता है। पर जहाँ प्यका है और मन्त्रता है और पराधीनता है, वहाँ पर साहित्य अपर नको कामुकता और निर्मग्न रति-वर्धन पर भुग्य है तो उसका यही धादय है कि ममी उसका प्रामरिचत पूरा नहीं हुआ और शायर दो-बार सदियों तक उसे बुझानी और बसर करनी पड़ेगी।"<sup>३</sup>

१ कुछ विचार—पृष्ठ ७

२ 'हैं' मई १९१६

३ 'हैं' मई १९१६



पत्र' स्पष्ट है कि प्रेमचंद उस शृंगार के विरोधी थे जो हमें कृत्रिम की धोर से बाठा है, जो उपास के शैतिकस्तर को गिराता है। शृंगार और प्रेम का हमारे जीवन में अस्तित्व है, लेकिन साहित्यकार को समय देकर चलना चाहिये। 'रंजमूर्ति' में घोषी के मुख से प्रेमचंद यही बात कहनाते हैं। घोषी प्रमुखेणक को कविता पर टिप्पणी देता है—

'तुम्हारी कविता उष्ण कोटि की है। मैं इसे सर्वथा सुन्दर कहने को तैयार हूँ। लेकिन तुम्हारा कर्तव्य है कि अपनी इस प्रतीतिक शक्ति को स्वदेश के हित में लगाओ। अवनति की बशा में शृंगार और प्रेम का राग समाप्त होने की बकरत नहीं होती इसे तुम भी स्वीकार करोगे।'<sup>१</sup>

साहित्य के संबंध में प्रेमचंद की क्या माय्यता थी वे उसके लिये गौन-दौल से अनिर्वाह्य तत्व मानते थे उन पर भी एक बुद्धि काम लेनी आवश्यक है। मनो रंजन और विजासिता को ही साहित्य समझनेवालों से प्रेमचंद कहते हैं—

'हम साहित्य को केवल मनोरंजन और विजासिता की बरतु नहीं समझते। हमारी कसौटी पर बही साहित्य बरा उठरेका जिसमें उष्ण चित्त हो स्वाधीनता का भाव हो सौंदर्य का छार हो सुख की धारणा हो जीवन की सचाइयों का प्रकट हो जो हममें प्रति संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाये नहीं।'<sup>२</sup>

साहित्य युग का प्रतिबिम्ब होता है। जाति की प्रतिहीनता उमरा हुआ ऐसे साहित्य से मानूम पड़ता है जिसमें प्रेम-वासना और वैराग्य भावनाओं की प्रमाणता हो—

'पुनः के काल में भोग या तो मासिकी करते हैं, या अंधास्य और वैराग्य मन रमाते हैं। जब साहित्य पर संसार की तरबट्टा का रंग लड़ा हो और उतभ्र एक-एक क्षण नैठरय में डूबा हो समय की प्रतिक्रमता के रोने से भर हो और शृंगारिक यात्रा का प्रतिबिम्ब बना हो तो समझ लीजिए कि जाति बढ़ता और हुआ के संबंध में कौन बुझी है और उसमें उद्योग तथा संघर्ष का बस बाकी नहीं रहा। उतने ऊँचे लक्ष्यों की धोर से धौतें बन्द कर ली है और उतमें ही कृत्रिमता को देखने और समझने की शक्ति लुप्त हो गई है।'<sup>३</sup>

एक स्थान पर प्रेमचंद शृंगार-रस के बारे में लिखते हैं—

साहित्य में केवल एक रस है और वह शृंगार।'<sup>४</sup>

१ रंजमूर्ति (भाग १) पृष्ठ १४४

२ बुध विचार—पृष्ठ २१

३ " ७-८

४ " १४४

उनके इस वाक्य से ऐसा समझता है कि शृंगार को ही साहित्य का एकमात्र उद्देश्य मान रहे हैं। यह वाक्य उनकी मान्यताओं में फिर धर्षवृत्ति उत्पन्न करता है। लेकिन वास्तव में धर्षवृत्ति कोई नहीं है। यहाँ शृंगार का धर्ष उन्होंने सौन्दर्य से लिया है। जैसा वे धामे लिखते हैं—

‘कोई रस साहित्यिक दृष्टि से रस नहीं रहता और न उस रचना की मज्जा साहित्य में की जा सकती है जो शृंगार बिहीन और असुन्दर हो। जो रचना केवल वासना-प्रयाग हो बिना उद्देश्य कुरिखत भावों को जगाना हो जो केवल बाह्य बगल से संबंध रखे वह साहित्य नहीं है।’<sup>१</sup>

प्रेमबन्धु ने सौन्दर्य-प्रेम पर बहुत जोर दिया है। लेकिन यह सौन्दर्य धारणा शारीरिक नहीं है। उसका स्वरूप मानसिक है जो हमारे हृदय का संस्कार करता है। सौन्दर्य को देखकर हम मुग्ध होते हैं उत्तेजित नहीं। प्रेमबन्धु लिखते हैं—

‘कलाकार हममें सौन्दर्य की धनुमुक्ति उत्पन्न करता है और प्रेम को उच्छ्रिता।’<sup>२</sup>

‘जिस साहित्य से हमारी मुग्धता न जाने धार्मिक और मानसिक तन्त्रि न मिले हममें शक्ति और गति न पैदा हो हमारा सौन्दर्य प्रेम न बाधत हो जो हममें उच्च संस्कार और कठिनाइयों पर विजय पाने की सच्ची दृष्टि न उत्पन्न करे, वह धाम हमारे लिए बेकार है, वह साहित्य कहाने का धक्करी नहीं।’<sup>३</sup>

धार्मिक-भावना को साहित्य का मूल्य बताते हुए उन्होंने लिखा है—

‘जो साहित्य जीवन के उच्च भावों का विरोधी हो मुग्धता को विगाड़ता हो प्रकृत साम्प्रदायिक उद्भावना में बाधा डालता हो ऐसे साहित्य को यह परिपक्व हृदय प्रोत्साहित न करेगी।’<sup>४</sup>

यह साहित्यकार को उच्च भावों की धर्मिकता करनी चाहिये—

साहित्य कलाकार के धार्मिक धर्मबन्धु का व्यक्त रूप है और धर्मबन्धु सौन्दर्य की सृष्टि करता है, नाश नहीं। वह हमें बख्शारी उच्च सद्भावमुक्ति ग्यापिमता और ममता के भावों की सृष्टि करता है। यहाँ से भाव है, यहाँ दृष्टि है और जीवन है, यहाँ इनका धाम है यहाँ कूट विरोध स्वार्थ-परता है द्वेष शत्रुता और मृत्यु है।<sup>५</sup>

साहित्य के विचारगत और कलागत तत्त्वों को प्रेमबन्धु एक साथ लिखते हैं—

१ कुसुम विचार—पृष्ठ ७४

२ “ “ “ “ ११

३ “ “ “ “ ५

४ ‘हंस’ मई १९३९

५ “ “ “ “ ११

साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सचाई प्रकट की गई हो जिसकी भाषा प्रौढ़ परिमार्जित एवं सुन्दर हो और जिसमें बिना और बिभाव पर असर डालने का मुख हो और साहित्य में यह मुख पूर्ण रूप से उसी अवस्था में उत्पन्न होता है जब उसमें जीवन की सचाइयाँ और अनुभूतियाँ व्यक्त की गई हों । १

उपयुक्त साहित्य के निर्माता का स्वभाव भी ऊँचा होना चाहिये । यदि साहित्यकार ऊँचे दर्जे का मनुष्य नहीं है तो वह सद्-साहित्य का सूत्रन नहीं कर सकता । इसीलिये हमें पहले मनुष्य बनने की साधना करनी चाहिये फिर साहित्यकार बनने की । प्रेमचन्द के मत से साहित्यकार को सत्यवादी होना चाहिये । वह हमारा पक्ष प्रवर्तक होता है, मनुष्यत्व को जगाता है, सद्भावों का संवार करता है तथा हमारी दृष्टि का व्यापक बनाता है । साहित्य के लक्ष्य को बताते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—

साहित्यकार का लक्ष्य केवल मूर्च्छित सञ्जाल और मनोरंजन का सामान पुटाना नहीं है, उसका दारवा इतना न बिराह्ये । वह ऐतयन्त्रि और राजनीति के पीछे चलनेवाली सचाई भी नहीं बल्कि उसके घागे मर्यादा विखाती हुई चलनेवाली सचाई है । २

साहित्यकार का क्या कर्तव्य है ? प्रेमचन्द कहते हैं—

‘जो बलिष्ठ है, पीड़ित है, शोषित है, चाहे वह व्यक्ति हो या समूह उसकी हिमायत और बकासत करना उसका कर्तव्य है । उसकी प्रशंसा समाज है, इसी प्रशंसा के सामने वह अपना इस्तबासा पेश करता है, और उसकी स्वायत्तता तथा सौन्दर्यवृत्ति को जाइत करके अपना मूल सफल समझता है । ३

लेकिन मात्र बकासत से काम नहीं चल सकता । साहित्यकार उपेक्षितों तिरस्कृतों का पक्ष लेता प्रथम है लेकिन सत्य का शोचन नहीं छोड़ता है । वह एक सत्यवादी बकील है ।

‘पर सामारण बकीलों की तरह साहित्यकार अपने मुबकिरम की ओर से उचित अनुचित सब तरह के दावे नहीं पेश करना अतिरंजना से काम नहीं लेना अपनी ओर से बालें बढ़ा नहीं । वह जानता है कि इन मुक्तिवों से वह समाज की प्रशंसा पर असर नहीं डाल सकता । उस प्रशंसा का हृदय-परिवर्तन तभी संभव है जब आप मत्प से ठिक भी विमुक्त न हों नहीं तो प्रशंसा की पारदा आपकी ओर से गिराव हो जायगी और वह आपके गिराव पैमाना मुना देगी । ४

१ मुख विचार—पृष्ठ ६

२ “ १०

३ “ ८

४ “ ८

## आदर्शवाद और यथार्थवाद

इस सत्यवादिता के साथ ही साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। सत्यवादी आदर्श और यथार्थ दोनों पर अपनी समान दृष्टि रखता है। प्रेमचन्द का यही सिद्धान्त था जिसे उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कहा है। या यों कहा जाय कि वे यथार्थवादी आदर्शवाद के समर्थक थे। साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद के प्रचलित अर्थों से इनका क्या सम्बन्ध था यह उनके लेखों और उपन्यासों में देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने अनेक पत्र-सुझावों से यथार्थवाद और आदर्शवाद को देखा है, यथा—

१. उपमोक्षी यथार्थवाद
२. यथार्थवाद
३. अति यथार्थवाद
४. आदर्शवाद
५. अस्वाम्याधिक आदर्शवाद

उपमोक्षी यथार्थवाद से अभिप्राय है समाज और व्यक्ति का ऐसा यथार्थ-चित्रण जो मानव को विकास की ओर उत्प्रेरित करे। इसमें अस्तु पक्ष सामाजिक स्वास्थ्य को दृष्टि से चित्रित किया जाता है। अस्तु पक्ष भी यथार्थ के अन्तर्गत है पर अस्तु के चित्रण में सामाजिक स्वास्थ्य का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह तो मानव दृष्ट्याण्ड का स्वयं प्रतीक है। सामाजिक स्वास्थ्य का प्रश्न अस्तु पक्ष के साथ ही गया हुआ है। समाज या व्यक्ति में जो अभाव है शोष है या कुचपटाई है उनका यथार्थ-चित्रण यदि मानव-विकास के दृष्टिकोण से किया जायगा तो वह उपयोगी यथार्थवाद कहलाएगा। यही सामाजिक स्वास्थ्य की ओर दृष्टि रखना लेखक का प्रथम कर्तव्य माना जाता है।

यथार्थवाद के अन्तर्गत लेखक सामाजिक हित-ग्रहित की कोई चिन्ता नहीं करता। वह अपनी कला को फोटोग्राफी मानता है। जो है उसका ज्यों का त्यों चित्रण कर देना ही उसका धर्म है। वह भौतिक सत्य को ही सब कुछ समझता है। भौतिक सत्य में उसे विश्वास होता अथवा नहीं, लेकिन वह उसका चित्रण उस समय तक नहीं कर सकता जब तक वह भौतिक सत्य का रूप न धारण कर ले। यथार्थवाद के अन्तर्गत मनुष्य में पाई जानेवाली समस्त कु-शक्तियों का चित्रण होता है। वह मनु और मयातक रूप में हमारे सामने आता है। यह मनुज शक्ति की सीमा को भी लाँच जाती है, इसी प्रकार यह मयातकता विश्वास भावना तक को कुचल देती है और मनुष्य को निराशवासी या अविशवासी बना देती है। यथार्थवाद के अन्तर्गत लेखक का कोई सामाजिक कर्तव्य नहीं होता।

' साहित्य उसी रचना को कहेंगे जिसमें कोई सच्चाई प्रकट की गई हो जिसको भाषा प्रौढ़ परिभाषित एवं सुन्दर हो और जिसमें विम धीर विभाव पर धरत डालने का गुण हो और साहित्य में यह गुण पूर्ण रूप से उसी प्रकृति में उत्पन्न होता है जब उसने जीवन की सच्चाइयाँ और अनुभूतियाँ स्पष्ट की गई हों । ' १

सर्वमुक्त साहित्य के निर्माता का स्वभाव भी ऊँचा होना चाहिये। यदि साहित्यकार ऊँचे दर्जे का मनुष्य नहीं है तो वह सच्चा-साहित्य का सृजन नहीं कर सकता। इसीलिये हमें पहले मनुष्य बनने की धारणा करनी चाहिये फिर साहित्यकार बनने की। प्रेमचन्द के मत से साहित्यकार को धर्मभाषी होना चाहिये। वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, मनुष्यत्व को बयास है, सच्चाओं का संभार करता है तथा हमारी दृष्टि को व्यापक बनाता है। साहित्य के लक्ष्य को बताते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं—

साहित्यकार का लक्ष्य केवल मनुकित सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है, उसका धरना इतना न गिरावने। वह देशमन्त्रि और राजनीति के पीछे चलनेवाली सच्चाई भी नहीं बरिक्त उसके धारें मराल रिकाली हुई चलनेवाली सच्चाई है । १

साहित्यकार का क्या कर्तव्य है ? प्रेमचन्द कहते हैं—

' जो धर्मित है, पीड़ित है, बन्धित है चाहे वह व्यक्ति हो या समूह, उसकी हिमागत और बन्धनत करना उसका कर्तव्य है। उसकी धरामत समाज है, इसी धरामत के सामने वह धरना इत्यमासा पेश करता है, और बतकी म्यावदृष्टि तथा सीधर्यवृत्ति को जागत करके धरना मल धरत समझता है । २

सेकिन मात्र बकालत से काम नहीं चल सकता। साहित्यकार धरिबिती तिरसुतों का पक्ष लेता धरय है सेकिन तल का धरिबत नहीं धीरता है। वह एक सत्यधारी बकील है ।

पर साधारण बकीलों की तरह साहित्यकार अपने मुबन्धित की धोर से उचित अनुचित सब तरह के धारे नही पेश करना धरिर्जना से काम नहीं लेता धरनी धोर से बाने गतता नहीं। वह जानता है कि इन बुक्तियों से वह समाज की धरामत पर धरत नहीं बाल सकता। उस धरामत का धरय-धरिर्जन सभी तर्क है जब धरय मल से तनिक भी बिमुन न हों महीं ता धरामत की धररका धरकी धोर से धरार हो जाधरी धोर वह धरके निलाठ धरना गुना देवी । ४

१ गुण विचार—पृष्ठ ९

२ " " " " १०

३ " " " " ८

४ " " " " ११

## आदर्शवाद और यथार्थवाद

इस सत्यवादिता के साथ ही साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद का प्रश्न उपस्थित हो जाता है। सत्यवादी आदर्श और यथार्थ दोनों पर अपनी समान दृष्टि रखता है। प्रेमचन्द का यही सिद्धान्त था जिसे उन्होंने 'आदर्शमुख यथार्थवाद' कहा है। या यों कहा जाय कि वे यथार्थवादी आदर्शवाद के समर्थक थे। साहित्य में आदर्शवाद और यथार्थवाद के प्रचलित अर्थों से उनका क्या सम्बन्ध था यह उनके लेखों और उपन्यासों में देखा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने अनेक पहलुओं से यथार्थवाद और आदर्शवाद को देखा है, यथा—

- १ उपयोगी यथार्थवाद
- २ यथार्थवाद
- ३ अति यथार्थवाद
- ४— आदर्शवाद
- ५ अस्वामिक आदर्शवाद

उपयोगी यथार्थवाद से अर्थात् समान और व्यक्ति का ऐसा यथार्थ-चित्रण जो मानव को विकास की ओर उन्मुख करे। इसमें अर्थात् एक सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से चित्रित किया जाता है। 'सत्' एक ही यथार्थ के अन्तर्गत है पर सत् के चित्रण में सामाजिक स्वास्थ्य का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह तो मानव कल्याण का स्वयं प्रतीक है। सामाजिक स्वास्थ्य का प्रश्न अर्थात् एक के साथ ही सदा हुआ है। समाज या व्यक्ति में जो अमान्य है, दोष है या कुबफ्तारी है उनका यथार्थ-चित्रण यदि मानव-विकास के दृष्टिकोण से किया जायगा तो वह उपयोगी यथार्थवाद कहलाएगा। यही सामाजिक स्वास्थ्य की ओर दृष्टि रखना लेखक का प्रथम कर्तव्य माना जाता है।

यथार्थवाद के अन्तर्गत लेखक सामाजिक दूित-महित की कोई चिन्ता नहीं करता। वह अपनी कला को फोटोग्राफी मानता है। जो है उसका यों का यों चित्रण कर देना ही उसका धर्म है। वह भौतिक सत्य को ही सब कुछ समझता है। भौतिक सत्य में उसे विरवास हाता प्रवेश है, लेकिन वह उसका चित्रण तब समय तक नहीं कर सकता जब तक वह भौतिक सत्य का रूप न बारस कर ले। यथार्थवाद के अन्तर्गत मनुष्य में पाई जानेवाली समस्त कु-प्रवृत्तियों का चित्रण होता है। वह नम्र और भयलक रूप में हमारे सामने आता है। यह नम्रता सिद्धता की सीमा को भी लाँच जाती है, इसी प्रकार यह अमान्यता विरवास भावना तक को कुचम देती है और मनुष्य को निराशवादी या अविशवासी बना देती है। यथार्थवाद के अन्तर्गत लेखक का कोई सामाजिक कर्तव्य नहीं होता।

‘साहित्य का उद्देश्य जीवन के धारस को उपस्थित करना है, जिसे पढ़कर हम जीवन में कदम कदम पर मानेवासी कठिनाइयों का सामना कर सकें।’<sup>१</sup>

वे यथार्थवादियों के शोषों का उत्तेज करते हुए उपयोगी यथार्थवाद से अत्यंत बाह का सम्मिश्रण करते हैं—

यथार्थवादियों का कथन है कि संसार में नेकी-बुरी का फल वहाँ मिलता नजर नहीं आता बल्कि बहुत बुराई का परिणाम अच्छा और भलाई का बुरा होता है। धार्मिकवादी कहता है, यथार्थ का यथार्थ रूप बिधाने से फयदा ही क्या है यह तो अपनी धार्मिकों से देखते ही है। कुछ देर के लिए तो हमें इन कुरिस्त व्यवहारों से प्रसन्न रहना चाहिए, नहीं तो साहित्य का मुख्य उद्देश्य ही याप्य ही जायेगा। यह साहित्य को समाज का बपल मान नहीं मानता बल्कि हीनक मानता है, जिसका काम प्रकाश फैलाना है। भारत का प्राचीन साहित्य धार्मिक-वादी ही का समर्थक है। हमें भी धार्मिकों को मर्यादा का पालन करना चाहिए। ही यथार्थ का अर्थमें ऐसा सम्मिश्रण होना चाहिए कि सत्य से दूर न जाना पड़े।<sup>२</sup>

‘यथार्थ भी उपयोगिता का पहलू रहता है। प्रचलित यथार्थवाद में और प्रेमचन्द के यथार्थवाद में यही अन्तर है। प्रचलित यथार्थवाद के सम्बन्ध में कायाकल्प’ न बरकर एक स्थान पर रहता है—

‘यथार्थ का रूप अत्यन्त मर्यादित होता है और हम यथार्थ ही को धार्मिक मानें तो संसार नरक के तुल्य हो जाय। हमारी दृष्टि मन की दुर्बलताओं पर न पड़नी चाहिए बल्कि दुर्बलताओं में भी उत्पन्न और सुन्दर को खोज करनी चाहिए।’<sup>३</sup>

प्रेमचन्द यथार्थवाद की एकानिता के बारे में लिखते हैं—

‘यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नाम रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतसब नहीं कि अच्छरिबता का परिणाम बुरा होता है या बुररिबता का परिणाम अच्छा। उसके चरित्र प्रायो कमत्रोरिदी या सूबिदी दिखते हुए अपनी जीवन-सीमा समाप्त करते हैं। संसार में सर्वत्र नेकी का फल नेक और बुरी का फल बुर नहीं होता बल्कि इनके विपरीत हुआ करता है भेक धारमी बनने गाते हैं यातनाएँ सहते हैं मुसीबतें भोगते हैं, अपमानित होने हैं, उनको मेरी का फल उलटा मिलना है, बुरे धारमी बन करते हैं, नामवर होने हैं, परास्वी बनते हैं—उनको बुरी का फल उलटा मिलता है। ( प्रकृति का नियम विधिब है। ) यथार्थवादी अनुभव की धिड़ियों में बहना जाना है और शौक संसार

१ हम जनवरी १९३५

२ कुछ विचार—पृष्ठ २५

३ कायाकल्प पृष्ठ १२६

में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है—यहाँ तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्र में कुछ न कुछ दाग-धब्बे रहते हैं। इसलिए यथार्थवाद हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी कुरताओं का मूल चित्र होता है। और इस तरह यथार्थवाद हमको निरपराधी बना देता है। मानव-चरित्र पर से हमारा बिरबास उठ जाता है, हमका ध्यान चारों तरफ बुराई ही बुराई खबर घाने लगती है।<sup>१</sup>

यह एकानिता विरुद्ध यथार्थवाद के अन्तगत ही है। प्रेमचन्द्र अपनी यथावस्था से समझौता ही नहीं करते बरन् उसे प्राथमिक भी मानते हैं, लेकिन वे विरुद्ध या अति-यथार्थवाद के विरोधी हैं—

हममें सन्देह नहीं कि समाज की कृपया की ओर उसका ध्यान दिमाने के लिए यथार्थवाद अत्यन्त उपयुक्त है, क्योंकि हमके बिना बहुत संभव है, हम उस बुराई को दिखाने में अत्युक्ति से काम लें और चित्र को उद्ये कहीं ज्यादा ब्रह्मा दिखाएँ जितना वह वास्तव में है। लेकिन जब वह दुर्बलताओं का चित्रण करने में सिरछा की सीमाओं से घामे बढ जाता है, तो आपत्तिजनक हो जाता है।<sup>२</sup>

घाम बनकर विरुद्ध यथाववाद की अनुपयोगिता का मनोवैज्ञानिक अर्थ यह है—

किर मानव-स्वभाव की विशेषता यह भी है कि वह जिस धम कुरता और कष्ट से बिरा हुआ है, उसी की पुनरावृत्ति उसके चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकती। वह थोड़ी देर के लिए ऐसे संसार में उड़कर पहुँच जाना चाहता है, जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुम्भित भावों से नवात मिले वह मूल जान कि न चित्ताधा के बन्धन में पड़ा हुआ है। जहाँ उस सज्जन सद्भाव उचार प्राणियों के बरत हों जहाँ धम और कष्ट विरोध और वैमनस्य का ऐसा प्राणाम्य न हो। उसके चित्त में क्याम होता है कि जब हमें क्रिस्ते-कुरताओं में भी उन्हीं भावों से सावका है जिनके साथ पाठों पहर व्यवहार करना पन्ता है, तो किर ऐसी पुस्तक पढ़ें ही क्यों?"<sup>३</sup>

यहाँ से एक ओर विरुद्ध यथाववाद की अनुपयोगिता प्रकट करते हैं वहाँ दूसरी ओर आदर्श के स्थापना अनुपयोगिता की धामार-रिक्ता पर ही करते हैं—

'प्रैबेरी गर्म कोठरी में बाय करने-करते जब हम बढ जाते हैं तब इच्छा होती है कि किसी बाय में निकल कर निजम स्वच्छ बाय का प्राण्य उद्ये। हमी कमी को धारसबाण पूछ करता है। वह हमें ऐसे चरित्रों से परिचित करता

१ कुछ विचार—पृष्ठ ३५४०

२ " " ४०

३ " " ४



हैं जिनके हृदय पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ भावना से रहित होते हैं, जो धातु प्रकृति के होते हैं । १

यदि किसी को घरेलूी कोठरी में कार्य करने में असुन्दोप है और वह अपनी बतमान स्थिति में परिवर्तन चाहता है, तो सधप्रथम उस आदर्शवाद की सुनी हवा का ध्यान होना आवश्यक है । तब उसे उस 'घरेलूी कोठरी' में पुनः कार्य करने की इच्छा नहीं होती और वह अपने कार्यक्षेत्र को हवा से पूर्ण बनाने का उत्कट प्रयत्न करेगा ।

लेकिन प्रेमचंद कितने सज्ज यथार्थ की स्थापना में हैं उतने ही आदर्श की—  
 'यथार्थवाद यदि हमारी आँसों कोस देता है, तो आदर्शवाद में हमें उदाकर किसी मनोरम स्वान में पहुँचा देता है । लेकिन वहाँ आदर्शवाद में यह सुख है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न विचित्र कर दें जो सिद्धान्तों की मूर्ति मात्र हों—जिनमें जीवन न हो । किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राक्ष-प्रतिपद्य करना मुश्किल है ।' २

वे आध्यात्मिक आदर्शवाद के समर्थक नहीं रहे । उनमें उपयोगी यथार्थवाद और आध्यात्मिक आदर्शवाद का असुन्द सन्बन्ध है । धार्मिक चमक के लिये—

"इसलिए वही उपधास उच्छकोटि के समझे पाते हैं, वहाँ यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो । उसे आप आदर्शोन्मुख यथार्थवाद कह सकते हैं । आदर्श को समीच बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिये । ३

इसी प्रकार कर्मभूमि में भी अमरकांत और डा० हाँसिकुमार के संघर्षों में आदर्श और यथाथ के सन्बन्ध की चर्चा आई है—

'तुम आदर्शों को धून में आध्यात्मिकता का विपकुल विचार नहीं करते । कोय आदर्शवाद ध्यामी पुसाव है ।

अमर ने चरित्र होकर कहा—म तो समझता था आप भी आदर्शवादी हैं । हाँसिकुमार ने आता इस बात को आस पर रोक कर कहा—मेरे आदर्शवाद में आध्यात्मिकता को भी स्थान है ।

इसका अर्थ यह है कि आप गुड़ पाते हैं गुलमुने से पछेन करते हैं ।

'बह ठक मुझे दपय वही स मिलने न लने तुम्हीं सोचो मैं फिच आचार पर लीकरी का परिव्याग कर हूँ । पाठ्यासा मैंने सोची है । इसके संघात्मक का

१ गुल विचार—पृष्ठ ४

२ " " " " " " ४ ४१

३ वही " " " " " " पृष्ठ ४१

सहित्य मुक्त पर है। इसके बन्ध हो जाने पर मेरी ब्रह्मता भी होती। अगर तुम इसके संशामन का कोई स्वायी प्रबन्ध कर सकते हो या मे भ्रातृ इस्तीफा दे सकता हूँ लेकिन बिना किसी भाषार के मैं कुछ नहीं कर सकता। मैं इतना पक्का भावार्थवादी नहीं।

मुझे संसार का तुमसे क्या तब्रबा है। मरा इतना जीवन मय-मये परीचर्या में ही गुबरा है। मैंने जो तत्व तिकासा है यह है कि हमारा जीवन समझते पर टिका हुआ है। सभी तुम मुझे जो काहे समझे पर एक समझ घाबेता जब तुम्हारी धारें कुसंगी धोर तुम्हें मामुम होमा कि जीवन म मयार्थ का महत्त्व धारर्स से जो भर भी कम नहीं है।<sup>१</sup>

'आदर्शमुक्त मयार्थवाद' का मुलभ्य हुआ कम उनके संख्या म इष्टम्य है मंकिम यह स्पष्टता सभी दिखार्ई देमी जब कि बिस्तु मयार्थवाद धति-मयार्थवाद उपमोगी मयार्थवाद धादर्शवाद धोर धति-आदर्शवाद धादि के सूक्ष्म धंतर को सामने रखा कम। जो धासोबक इस धंतर की धोर ध्यात नहा वेते मे या तो उनके बिचार म असंघटियाँ हुंते है मा फिर उन्हु धादर्शवाद से मयार्थवाद की धोर धाते बेकते है धोर ऐसा बिश्वास प्रकट करते है कि प्रेमधंद धगर धोर धीकित रहते तो वे निश्चय हो साहित्य में प्रचलित मयार्थवाद के समक हो धाते। उपर्युक्त वैज्ञानिक बिबेचन से मह स्पष्ट हो धाया है कि प्रेमधन्द अपनी साहित्यिक धेतना के प्रारम्भ से धन्त तक धादर्शमुक्त मयार्थवाद के समक रहे। इस धति से धनम धोई धैर्धान्धक परिधर्तन कुहिगोबर नहीं होया।

## प्रेमबन्ध : जीवन दर्शन

प्रेमबन्ध एक आश्चर्य कथाकार थे। कल्पना को छोड़कर सत्य घटनावृत्ति की छोड़कर बहिर्बुद्धि मृत्यु की छोड़कर जीवन निराशा की छोड़कर धाता तथा कृष्णता की छोड़कर सौन्दर्य के वे छोड़े उपासक थे। उन्होंने यथार्थ का प्राथम कभी नहीं छोड़ा। यथार्थ के सुबुद्ध बचपन पर ही उन्होंने अपने धारल-भोक का निर्माद्य क्रिया जिसे उन्होंने स्वयं 'आदर्योग्य यथार्थवाद' का नाम दिया है। जीवन में जो कुछ स्वस्व सुन्दर सत्य एवं प्रत्याख्यकारी है वही उन्हें प्राज्ञ है, श्रेय स्वयंवा त्याग्य। उन्होंने संपत्कार को कभी प्रकाश पर छाने नहीं दिया। पशुता और बालकता के सामने अनुप्यता का तिर उँचा रकटा। जन सन्धिकार-जय शोचल तथा प्रचलित धार्मिक सम्प्रदाय के विरोध में उन्होंने अपना जीवन व्यर्ष्य कर दिया। वे पौष्टि पद-वर्णन व उपेक्षित के सेतक थे। स्वयं मजदूर थे कर्म के मजदूर। उनही सेवनी प्यबड़े-नुचाली के समान युग-युग के संस्कारों विरवालों चारखाओं कभी कभी ज्यौन का छोड़ती कभी मयी। प्रेमबन्ध भारत की म्हात् सान्द्रिक परम्परा के एक योग हैं। सावती व मासैकन के वे साक्षात् व्यवहार थे।

प्रेमबन्ध का जीवन-वर्णन अद्वितीय था। मानवतावादी नेगक होने के नाते उनका विकसित मनुष्य उनके वाहिरव से वही महान् है। 'रैगभूमि' में मूरच्छा का वात प्रेमबन्ध के जीवन-वर्णन का प्रतीक है। इन गीत में उनके जीवन का रहस्य भग हुआ है —

मई क्यों रत से मुँह मोड़े ?  
 बोरों का काम है मरना  
 नुच राम बपन प करमा  
 क्यों निज मरवाहा छोड़े ?  
 मई क्यों रत से मुँह मोड़े ?  
 कयी जीन की तुमको इच्छा  
 क्यों हार की तुमको बिन्धा

क्यों दुःख से लला जोड़े ?  
 मई क्यों रत्न से मुँह मोड़ ?  
 तू रंयभूमि में घाया  
 दिग्भ्रमने घपनी माया  
 क्यों परम नीति को तोड़े ?  
 मई, क्यों रत्न से मुँह मोड़े ?<sup>१</sup>

वे जीवन को एक खेम समझते थे। प्रत्येक प्राणी इस संसार बनी धैरान में जिन्नाही बनकर जाता है और अपना-अपना खेम खेसकर चला जाता है। खन में हार-जीत होती ही है। मूरदास कहता है 'सबसे जिन्नाही कमी रोते नहीं बाजी पर बाजी हारते हैं, जोड़ पर जोड़ दाते हैं, बच्के पर बच्के लहने हैं, पर मैदान में जुटे रहते हैं, उनकी त्योरियों पर बल नहीं पड़ते। हिम्मत बनका साथ नहीं छोड़ती। दिन पर आत्मिय के बीने भी नहीं पाते न कितनी से बलते हैं न बिन्ने हैं। खेल में रोना कैसा ? खेम हँसने के लिए, दिन बहमाने के लिए है, रोने के लिए नहीं।'<sup>२</sup>

उनके जीवन का यह खेल प्रम न नीतिवत्ता पर आधारित है, 'क्यों परम नीति को तोड़े ? उनके जीवन का मूममन है। न 'बिजय' को बिजय के साधनों से महान् नहीं समझने। जीवन की सञ्चना बिजय में इतनी निहित नहीं है जिन्नी उत बिजय के पाने के साधनों में जाहे उन साधनों से बिजय मिले ना न मिले। पराजय धनेतिक प्रयत्नों की बिजय से कहीं भेष्ट है। मूरदास कहता है, हमारी बड़ी मूल यह है कि खेल को खेल की तरह नहीं खेलते। खेल में पाँवनी करके कोई जीत ही नाय तो क्या हाथ धाएया ? खेलना तो इस तरह चाहिए कि जिगाह जीत पर रहे, पर हार से मबराय नहीं ईमान को न छोड़े। जीतकर इतना न इराए कि मब कमी हार होनी ही नहीं। यह हार-जीत तो जिन्नागी के साम है।'<sup>३</sup>

प्रेमचंद के साहित्य में जीवन का यही दृष्टिकोण मिलेया। वे बहुत हँसते थे। उनके प्युँचते हो मुर्बा गोप्टियों में भी कहकहों की बून-सी मब जाती थी। हास्य उनके जीवन-दर्शन का एक प्रबंध है। प्रेमचंद के उपन्यासों में जगह-जगह ऐसे खेम घामे हैं जहाँ प्रेमचंद अपने पात्रों को बेहद हँसाते हैं तथा जिनके साब-साब पाठ्य भी हँसते हैं। जीवन की यन्मीरतन यन्दिबिक निदासाजनक बिबतनाजय तथा

१	रंयभूमि ( भाग १ )	पृ० ३२८
२	( १ )	१२
३	( २ )	१४०

समानक परिस्थितियों के बीच यह हास्य कोई साधारण चीज नहीं है। ऐसा लगता है, प्रेमचंद जीवन की विनीतिकाओं को एक साधारण वस्तु समझते थे। वे विनीतिकाएँ प्रेमचंद के साहित्यिक मन की बट्टान से टकराती थीं और मीठ जाती थीं और एक सम्पूर्ण हँसी उड़ने वाला वस्तु में गुँबकी जाती थी। प्रेमचंद ने जीवन की विपदाओं को वास्तविक रूप में हँस-हँस कर भेजा था।

सुख और दुःख जीवन रस के दो पहलू हैं। हास्य और रस मानव-जीवन की पूर्णता के लिये अनिवार्य हैं। एक के अभाव में दूसरे का कोई महत्व नहीं है। जो व्यक्ति दुःख की सत्ता को अस्वीकार करता है वह एक वास्तविकता पर धारण तो शक्य ही है, समाज की सामाजिक जीवन की मूल-मर्यादा का म भी मटका होता है। लौकिक जीवन से निर्मित जीवन की सत्ता प्रेमचंद को मान्य नहीं थी। उनके सभी पात्र सुख-दुःख की रूप-रङ्ग में अपना लौकिक-जीवन व्यतीत करते हैं। हँसते हैं और रोते हैं। वे कोई ऐसे पारदर्श महापुरुष अथवा अतिपातक नहीं हैं जो सुख-दुःख में समभाव धारण करते हैं। उनके पास एक प्रतिशान मनुष्य है और प्रेमचंद को उनकी मानवीय बुबलताओं से प्रेम है। सहायमूर्ति है। जहाँ एक ओर उनके पास सुख-दुःख में हँसते और रोते हैं जहाँ दूसरी ओर ऐसा नहीं है कि वे दुःख में निराश होकर आत्महत्या करके अथवा मृत्यु के मर्म में मानवीय मूर्खों को मृत्यु जाएं। मनुष्य के सम्मुख सबसे बड़ी लौकिक वेदना मृत्यु है। और वह वह अमम्य ही हो जाए तब और भी अमम्य है। मृत्यु मानव-जीवन में सबसे महत्वपूर्ण घटना है। मृत्यु मानव-जीवन का अनिवार्य अंग होने के कारण अविनाशक वस्तु नहीं है। प्रेमचंद के उपन्यासों में जहाँ किसी पात्र की मृत्यु होती है जहाँ का आत्महत्या और अन्तर्गत किताब अमम्य और बहना देने वाला होता है, यह देखते ही लगता है। प्रायः अविनाशक बुद्धि और हृदय को अविनाशक महत्त्वसे देखकर मृत्यु जैसे अमम्यता प्रसंग को एकदम साधारण बना समझकर छोड़ दे जाते हैं। किसी पात्र की मृत्यु हो गई और मानो कुछ हुआ ही नहीं। क्या घाने बड़ी जानी है। लेकिन प्रेमचंद के साथ ऐसी बात नहीं है। मृत्यु को दो परिणामों में अविनाशक अविनाश की तरह सिद्ध कर दे जाने नहीं बर ज्ञाने बरने-उत्पत्ते हैं और अपने अमम्य जीवन अनुभव से जो कुछ उन्होंने देखा किताब है वह पाठकों के सामने रखते हैं। अपना अमम्यता प्रसंग यदि पाठक को रना न सका तो अविनाशक को जीवन-साधना अपनी ही जानी जाएगी। प्रेमचंद के उपन्यासों में अविनाशक मृत्यु प्रसंगों के कुछ अविनाशक जीवन के प्रति उनके अविनाशक को समझने में सहायक होंगे—

(क) बालक कुमार से एक बार फिर और माघ पर हास्य-वीर न हिन मके। तब उनकी छाँटों से छाँटू बहने लगे। तब पर लौकी ने बहने देला। दो-बार आँसू पानी ने बूँदे पर एक ही जगह में बनेनहुँपर महुरों में समा गए

बैसन समय के फूल पानी पर तैरते रह गए, मागों उस बीजन का अंत हो जाने के बाद उनकी अत्युत्त सामग्री अपनी रक्तरीजित घटा दिखा रही हो ।<sup>१</sup>

(क) 'हमारा अन्त समय कैसा अल्प होगा है । वह हमारे पास ऐसे-ऐसे प्रतिफलियों को खींच जाता है, जो कुछ दिन पूर्व हमारा मुख नहीं देखना चाहते थे और जिन्हें इस शक्ति के प्रतिरिक्त संसार की कोई अल्प शक्ति पराजित न कर सकती थी । हाँ यह समय एसा ही बलवान् है और बड़े-बड़े बलवान् शत्रुओं को हमारे अधीन कर देता है । जिन पर हम कभी विजय न प्राप्त कर सकते थे उन पर हमको यह समय विजयी बना देता है । जिन पर हम किसी शस्त्र से अधिकार न पा सकते थे उन पर यह समय शरीर के शक्तिहीन हो जाने पर भी हमको विजयी बना देता है । घात पूरे वर्ष भर के बरबान् प्रजाप नै इस बार में पशार्पण किया । सुखीसा की भाँति बन्द थी, पर सुखमंडन एसा विकसित का जैसे प्रभावकाल का समय ।<sup>२</sup>

(ग) 'सँभेरा हो चला बा । सारे गृह में शोकमय धीर बयाबह सदाय आया हुआ बा । रोनेवाले रोते थे पर लंठ बाँध-बाँध कर । बाँते होंथी भी पर बड़े स्वर्णों से । सुखीसा भूमिपर पनी हुई थी । वह सुकुमार अंग जो कभी माता के अंग में पना कभी प्रेमांक में पोसा कना फूलों की सेज पर सोया इस समय भूमि पर पना हुआ बा । सभी ठक नाड़ी मन्द-मन्द गति से चल रही थी मुन्सीमी लोक धीर निराशा गद में मग्न उसक सिर की धार बैठे हुए थे । अक्षस्तात् उसन सिर पठमा धीर दानों हाथों से मुँहोंको का चरण पकड़ लिया । प्राण उड़ गये । दानों कर उनके चरण का मण्डल बाने हो रहे । यह उसक जीवन की अंतिम क्रिया थी ।

रोनेवाले रोयो क्याकि तुम राने के प्रतिरिक्त कर ही बना सकत हो ? तुम्हें इस समय कोई कितनी ही साम्रचना व पर तुम्हारे नभ अयुप्रबाह का न रोक सकेंगे । रोना तुम्हारा कर्तव्य है । जीवन में रोने के अन्तर कर्त्तव्य ही मिलते हैं । क्या इस समय तुम्हारे नेत्र शुष्क हो जायेंगे ? धानियों के ठार बीजे हुए थे अक्षिकों के शत्रु था रहे थे कि मूर्खानि दोपक बनाने पर में लाम्यी । बोड़ी हो बैर पहिलै सुखीसा के जीवन का दीप बुझ चुका बा ।<sup>३</sup>

(ब) लौपी ने दोनों छेने हुए हाथों क बीच में अपना सिर दिया और बस अन्तिम प्रेमालियन क आनन्द में निहल हो गई । इस निर्वीच मरछोम्बु प्राणी के आसिपन में उसने उसे आरमदल निरबल और सुप्ति का अनुभव किया जो उसके लिये अमूर्तपूर्व था । इस आनन्द में वह लोक मूल गई । पचीस वर्ष के साम्प्रत जीवन में उसने कभी इतना आनन्द न पाया बा । निर्दय परिवर्षाण रह रहकर

१ प्रतिज्ञा—पृ० २० २६

२ बरबान—पृ० ४७

३ बरबान—पृ० ६६

उसे ठकपाटा रूझता था । जमे सबैव यह संका बनी रहती थी कि वह डींगी पार पगलौ मा मसजार में रुक जाती है । वायु का हलका-सा बेव लहरी का झुकावा या आन्वोलन मौकर का हलका-सा कंपन उसे भयभीत कर देता था । घात्र उन सारी संकाओं और बेवनाओं का प्रस्य हो गया । घात्र उसे मामूम हुआ कि बिसके चरखों पर मीमे घपने को समपित क्रिया था वह प्रस्य ठक बेव रहा । वह साक-मय कल्पना भी कितनी मसुर और शांतिदायिनी थी ।

'वह इसी बिसृति की बशा में थी कि मनोरमा का रोना सुनकर चौक पड़ी और बीबाब साहब के मुख को घोर देखा । ठव अपने स्वामी के चरखों पर गिर रख दिया घोर फूट-फूट कर रोने लगी । एक चख में सारे चर में कुहराम मच गया । मौकर-भाकर सभी रोने लगे । जिन मौकरों को बीबाब साहब के मुख से गिरा घुड़कियाँ फिसली थीं वे भी रो रहे थे ; मृत्यु में मासिष्ठ प्रकृतियों को शांत करने की बिलचख शक्ति होती है । ऐसे बिरसे ही प्राणो संसार में हमें जिनके प्रस्य करल मृत्यु के प्रकाश से घासाकित न हो जाएँ । अगर कोई ऐसा मनुष्य है तो उसे पशु समझे । हरिसेबक को कुण्डला कठारता संकीर्णता पूर्णता एवं सारे कुर्मुख जिनके कारण वह घपने जीवन में बदनाम रहे इस बिद्याम प्रेम के प्रवाह में बह गये ।'

(५) 'घात्र साहब ने यह कबल बिभाव मुना घोर उनके पैरों तम बनीन निकल गयी । उन्होंने बिबि को परास्य करने का संकल्प किया था । बिबि ने उन्हें परास्य कर दिया । वह बिबि को हाथों का लिपौला बनाता चाहते थे । बिबि ने दिया दिया तुम मरे हाथ के गिनीने हो । वह अपनी घालों से भी कुप न बनना चाहते थे वह बैवना पड़ा घोर हजली लगे । घात्र ही वह मुसी बख्य कर के पाग से लीने थे । घात्र जो उनके मुँह ने वे घाईकारपूर्वक सस्य निकलें थे । घाह ! कीन जानता था कि बिबि इसी जल्दी यह संरगत कर देगा । हमने पहले कि वह घपने जीवन का प्रस्य कर दें बिबि न उनकी घाठाओं का प्रस्य कर दिया ।'

(६) 'मैं से 'तोम' सस्य निकलने ही बाहू साहब के सिर साठे का ऐसा तुला हुआ हाथ पड़ा कि वह सचेन हो कर जमीन पर गिर पड़े । मुँह से कबल हजना ही निकला हाथ पार डाला ..... हाथ बेबाटे क्या लोचकर बने थे क्या हो गया । जोवन तुमसे ज्वाइल घासर भी बुनिया में कोई बस्तु है ? क्या यह पस बापक की भांति ही बखर्नगुर नहीं है जो इबा के एक थ्येके से बुक जाता है ? पानी के एक बखबुने का देलने ही मेजिन उमे टूटने भी कुप बैर मचनी है

जीवन में उतना सार भी नहीं। सौंस का भरोसा ही क्या? घोर इसी तरहता पर हम धमिल्लापाओं के किन्ने बिहाम भवन बनाते हैं। नहीं आगते भीचे जानेवाली सौंस अग घ्राणी या नहीं पर सोचते इतनी दूर की है। मानो हम धमर है।<sup>१</sup>

प्रेमबंध जीवन को यद्यपि खेस समझते थे तथापि वह खेस निखेरय नहीं है। सुख और दुख के बीच मनुष्य अपने कर्तव्यों के प्रति सज्ज रहकर बिरब के रैपमंत्र पर अपना धमिलय' पूर्ण करता है। मनुष्य एक धमिलेता है, किन्तु वह इधिम धमिलेता नहीं है। प्रेमबंध उसे स्वामाबिक रूप में देखना चाहते हैं। उसका हँसना और रोना प्राकृतिक व्यापार है। उनके जीवन-दर्शन में धमिलेताता नाम की कोई चीज नहीं है, यद्यपि कायाकल्प म वे प्राध्यायिक-जीवन की धमक गुरिक्यां सुलभ्यते इष्टिगोचर होते एवं पुनजन्म में बिरवास ब्यक्त करते हैं तथापि कायाकल्प' प्रेमबंध के बिचारों की कोई सीमा नहीं है। उन्होंने भौतिक-जीवन की वास्तविकता को ही भाषक रूप म स्पर्श किया है। 'मोदान' मे प्रो मेहता के मूल से वे जीवन के प्रति अपने इष्टिगोच को एक तरह से, ब्यक्त करते हुए कहते हैं—

'मेरे जीवन का क्या प्राश्ट है। मे प्राकृति का पुकारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में रहना चाहता हूँ। जो प्रसन्न होकर हँसता है दुःखी होकर रोता है और श्लेष मे पाकर मार खाता है। जो दुःख और सुख दोनों का समन करते हैं, जो रोने को कमजोरी और हँसने को इतकापन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे लिये धानग्रमय बीडा है सरल स्वच्छन्द। जहाँ मुस्ता ईर्ष्या और बसन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं मूठ की बिता नहीं करता मबिष्य को परवा नहीं करता। मेरे लिये वर्तमान ही सब कुछ है। मबिष्य की बिमता हमें कायर बना देती है, मूल का मार हमारी कमर टोड़ देता है।... हम ब्यर्ष का मार अपने अगार साध कर, कर्तव्यों बिरबासां और इतिहासों के मसवे के भीचे बने पड़े हैं।... और जो यह ईरबर और मोच का बककर है, इस पर तो मुझे हँसी आती है। वह मोच और तपासना की परकाप्या है, जो हमारी मानबता को नष्ट किने खालती है। जहाँ जीवन है कीडा है, बहक है प्रम है जहाँ ईरबर है, और जीवन को मुसी बनाना ही तपासना है और मोच है। ज्ञानी बहता है। 'घोठों पर मूस्कण्ड क भाये। श्रीकं में धौतु क भाये। ये कहता हूँ, अगार तुम हँसनाही सपते और रो नहीं सकते ता तुम मनुष्य नहीं हो पत्थर हो।'<sup>२</sup>

जीवन किन्त प्रकार त्रिया बाय इसका यह उत्तर है।

१ निर्मला पृ० १५

२ 'मोदान' पृ २६८



उसे तड़पाता खड़ा था। उसे सबैव यह संका बनी रहती थी कि वह बोंगी पार सगरी या मैन्सपार में डब जाती है। वायु का हमका-सा बेग सहर्षों का हलका सा धांशोत्पन्न नीकर का हमका-सा कंपन उसे भयभीत कर देता था। धात्र उन सारी संकाधों और बेहलाधों का घन्त हो गया। धात्र उसे मामूम हुआ कि जिधके चरखों पर धने धपने की समर्पित किया जा वह घन्त तक मेरा खड़ा। वह लोक मय कल्पना भी क्लिप्तनी मजुर और शान्तिवाधिनो थी।

वह इसी विस्मृति की बहा में थी कि मनोरमा का रोना सुनकर चौंक पड़ी और शीबान साहब के मुख की घोर बेला। तब उनमें स्वामी के चरखों पर गिर रख दिया और फूट-फूट कर रोने लगी। एक चख में सारे धर में कुहराम मच गया। नीकर-बाकर सती रोने लगे। जिन नीकरों की शीबान साहब के मुँह से निरय घुड़ियाँ मिसली थीं वे भी रो रहे थे। मृत्यु में मानसिक प्रकृतियों को शान्त करन की बिलचख सविध होती है। ऐसे बिरसे ही प्राची संसार में होंने बिनके घन्त-करख मृत्यु के प्रकार से धात्वाकिय न हा जाएँ। धर कोई एना मनुष्य है, ता उसे परा धमम्तो। हरिसेबक को कुहलगा कठोरता संकीर्षणा पृर्षणा एवं सारे दुर्गुण बिनके कारण वह धपने जीवन में बरनाम रहे इस बिशाम धेम के प्रवाह में बह गये।<sup>१</sup>

(६) राजा साहब ने यह कठख विभाव मुना धोर उनके पैरों तने जमीन निकन मयो। उग्होंने बिबि को परास्य करनो का संकल्प किया था। बिबि ने उग्हें परास्य कर दिया। वह बिबि को हाथों का विधीमा बनाता चाहते थे। बिबि न दिया दिया तुम मेरे हाथ के गिनने हा। वह धपनी धीधों से जो कुध न देनता चाहते थे वह बेखना पड़ा धोर इतना बनरो। धात्र ही वह मुँठी बय धर के पाम में सीन थे। धात्र ही उनके मुँह में वे प्रह्वारपूर्व शम्न निकने थे। धाह! कौन जानता था कि बिबि इनो बन्दी वह धरनाथ कर देगा। इमने पहुने कि वह धपने जीवन का घन्त कर दें बिबि न उनकी प्राशाधों का घन्त कर दिया।<sup>२</sup>

(७) 'मुँह से 'तीन शम्न निकनते ही बाबू साहब के गिर साठो का ऐसा तुना हुआ हाव पड़ा कि वह धपेठ हा कर जमीन पर गिर पड़े। मुँह से धेबन इनना ही निकना हाव मार डाला।..... हाव बिचारे गया धाबकर धने थे क्या हो गया। जीवन तुमसे ग्यारह धपार भी बुधिया में काई बस्तु है? क्या यह उठ धोरक की भांति ही बखम्बुर नहीं है जो द्वा के एक भोंके से बुध जाता है? गामी के एक बुधबुने को देखने ही नीतिन उने दूटने को कुध धेर सगनी है

१ वायाजण पृ० १९१ १९४

२ , , पृ० ६९३

जीवन में उल्टा सार भी नहीं। सौंघ का भरोसा ही क्या ? और इसी तरहतरता पर हम अभिसापाओं के कितने बिहाल बनन बनाते हैं। नहीं जानते भीचे जानेवाली सौंघ ऊपर घाएंगे या नहीं पर सोचते इतनी दूर की है, मानो हम धमर हैं।<sup>१</sup>

प्रेमबंध जीवन को यद्यपि खेल समझते थे तथापि वह खेल निश्चय नहीं है। मुझ और बुद्ध के बीच मनुष्य अपने कर्तव्यों के प्रति खबर रहकर बिस्व के रंगमंच पर अपना 'प्रभिनय' पूर्ण करता है। मनुष्य एक प्रभिनैता है किन्तु वह इतिम प्रभिनैता नहीं है। प्रेमबंध उसे स्वाभाविक रूप में देखना चाहते हैं। उसका हँसना और रोना प्राकृतिक व्यापार है। उनके जीवन-दर्शन में प्रतीकितता नाम की कोई चीज नहीं है, यद्यपि 'कायाकल्प' में वे व्यापारिक-जीवन की धनक बुद्धियाँ धुमझंते इष्टिगोचर होते एवं पुनर्जन्म में विरवास व्यक्त करते हैं, तथापि 'कायाकल्प' प्रेमबंध के विचारों की कोई सीमा नहीं है। उन्होंने भौतिक-जीवन की वास्तविकता को ही व्यापक रूप में स्पष्ट किया है। 'गोदान' में प्रो मेहता के मुँह से वे जीवन के प्रति अपने इष्टिगोचर को एक तरह से व्यक्त करते हुए कहते हैं—

'मेरे जीवन का क्या भावर्त है... मैं प्रकृति का पुजारी हूँ और मनुष्य को उसके प्राकृतिक रूप में देखना चाहता हूँ। जो प्रसन्न होकर हँसता है, दुःखी होकर रोता है और श्लेष में भाकर मार खाता है। जो बुद्ध और मुझ दोनों का बमन करते हैं, जो रोने को कमबोरी और हँसने को हसकाफन समझते हैं, उनसे मेरा कोई मेल नहीं। जीवन मेरे बिने धानन्दमय श्रिया है सरस स्वध्वस्य ! वहाँ कुत्सा ईर्ष्या और बमन के लिए कोई स्थान नहीं। मैं मूठ की चिता नहीं करता भविष्य की परवा नहीं करता। मेरे लिये बतमान ही सब कुछ है। भविष्य की चिन्ता हमें कायर बना देती है मूठ का मार हमारी कमर तोड़ देता है।... हम स्वर्ष का मार अपने ऊपर साध कर, कर्मों विरवासों और इतिहासों के ममने के भीचे बसे पड़े हैं।... और जो यह ईश्वर और मोच का बनकर है, इस पर तो मुझे हँसी घाती है। वह भाँच और उपासना की पणकान्य है, जो हमारी मानवता को मछ लिये टालती है। वहाँ जीवन है श्रिया है, बहक है प्रेम है वहाँ ईश्वर है, और जीवन को मुँहा बनाता ही उपासना है और मोच है। ज्ञाना कहता है, धोठों पर मुस्कुराहट न घाये धालों में धामू न घाये। मैं कहता हूँ धमरधुमहँस नहीं सकते और रो महा सकते ताधुम मनुष्य नहीं हो पत्थर हो।<sup>२</sup>

जीवन किस प्रकार किया जाय इसका यह उत्तर है।

१ निर्मला पृ० १५

२ 'गोदान' पृ २१८

लेकिन प्रेमचंद का यह भौतिकवादी दृष्टिकोण भीम की भावना पर आधारित नहीं है। वे स्वयं 'कबीर और उपस्वी' थे। उन्होंने जन की कभी चिन्ता नहीं की। कलकत्ता मूस कर व्यक्तिगत मुक्त-सुविधाओं की धोर कमी ध्यान नहीं दिया। उन्हें अपने धारकों सर्वाधिक प्रिय थे। जन के लोभ में पड़कर वे अपने धारकों और सिद्धान्तों से कभी च्युत नहीं हुए। प्रेमचंद का जीवन इसका प्रमाण है। धार्मिक संकटों के बीच वे कभी गिराए नहीं हुए। महाराजा धनधर के निर्ममण को प्रस्वीकरण कर उन्होंने अपने धारकों के प्रति निष्पक्ष का ज्वलन्त उत्तर दे दिया था।

इसी प्रकार उपन्यास के धारका पात्र को उनके विचारों के बाहक है यही कहानी कहते। गोविन्दी अपने प्रति पत्रा से कहती —

सत्पुरुष जन के धारों सिर नहीं झुकाते। वह देखते तुम क्या हो धार तुममें सम्झाई है म्याम है त्याग है पुण्यार्थ है तो वे तुम्हारी पूजा करते।”<sup>१</sup>

जन हमें धारमनेवी भोषी और विधासी बना देता है। हम जीवन की पवित्रता को मूस जाते हैं। जन के लोभ ने धारक मानव-जीवन को फिष्ट उच्छ विच्छुत कर दिया है उरका यथाप-विच्छुत प्रेमचंद के साहित्य में मिलता है। स्वार्थ-भावना की जड़ यही धन-निष्ठा है। जन की मालसा ने सेवा-भावना को कुच्छिष्ट कर रखा है। प्रेमचंद ने समाज के सामने सेवा-भुक्ति को प्रतिष्ठापित किया है। सेवा-मार्ग उन्हें प्रत्यधिक प्रिय था। व्यक्तिगत और समष्टिगत दोनों रूपों में वे सेवाभाव को प्राथमिकता देते थे। राजा प्रजा के संबंधों पर लिखते हुए वे कहते हैं—

राज राजा और प्रजा में भोक्ता और भोष्य का संबंध नहीं है, धन सेवा और सेवा का संबंध है। धन धार किसी राजा की इच्छा है तो जनको सेवा प्रवृत्ति के कारण। ... जब तक कि कोई सेवा-मार्ग पर चलता नहीं सीधना चलता के दिनों में कर नहीं कर पाता।<sup>२</sup>

प्रेमचंद का प्रायः प्रत्येक उपन्यास में सेवा-धर्म की चर्चा मिलेगी। फिठन ही पात्र सेवा-भाव के पवित्र चिह्नित किए गये हैं। कर्मभूमि में धारकांत मीना, डा० शान्तिदुमार गोबान में हीरी प्रो० महारा काकाचन्द्र में यतीशानन्दन चरणर मन्तरमा शय्यकर 'प्रेमाधम' में प्रेम्सीकर 'बरदान' में विद्वानरात पणसिद्ध इच्छुक्ति के मुरदान, प्रेमचंद, मोक्षो, बिनयसिद्ध, धारि सभी के जीवन का जहरव सेवा है। अपने निबंध-संग्रह 'कुछ विचारों में भी प्रेमचंद एक जगह लिखते हैं—

१ 'गाथा' पृ० ३६७

२ रंगभूमि ( भाग १ ) पृ० ३९९

‘अगर हमारा अंतर प्रेम की शक्ति से प्रकाशित हो और सेवा का भाव हमारे सामने हो तो ऐसी कोई कठिनाई नहीं जिस पर हम विजय प्राप्त कर सकें ।’<sup>१</sup>

‘योग’ में प्रो० मेहता के विचारों की व्याख्या करते समय प्रेमचंद ने सेवा-मार्ग धर्म कर्मयोग पर एक विस्तृत टिप्पणी की है—

‘प्रकृति और निश्चित लोगों के बीच में जो सेवा मार्ग है, चाहे उसे कर्मयोग कहो वही जीवन को सार्थक कर सकता है वही जीवन को अंधा और पवित्र बना सकता है ।... सभी मनस्वी प्राणियों में यह भावना (त्याग भावना) किसी रहती है और प्रकाश पाकर चमक उठती है । बादमी घर पर धर्म का नाम के पीछे पड़ा है, तो समझ लो कि अभी तक वह किसी परिपुष्ट आत्मा के सम्पर्क में नहीं आया ।’<sup>२</sup>

उपर्युक्त विवेचन से उनका मीथिकनाशी बुद्धिकोश स्पष्ट हो जाता है । निःसन्देह प्रेमचंद में हुने एक उदात्त नैतिकता के कारण होते हैं । उनकी विचार-धारा प्रत्याशङ्कारिक नहीं है । वे सिद्धान्त और जीवन की एकता के समर्थक थे । कर्मजी शिष्यी से उन्हें कोई सरोकार नहीं था । ‘योग’ में प्रो० मेहता जीवन और सिद्धान्तों के संबंध पर कहते हैं—

‘यै चरुता है जीवन हमारे सिद्धान्त के अनुकूल हो । ... मुझे उन लोगों से क्या भी हमदर्दी नहीं है जो बातें करते हैं कम्प्यूनिस्टों की-सी मगर जीवन है रईसों का-सा उठना ही बिनासमम उठना ही स्वाम से मरा हुआ ।’<sup>३</sup>

प्रेमचंद के जीवन में सिद्धान्त-साम्य तबत्र मिश्रता उनके साक्षर्य में बिश्व ईमानदारी के दर्शन होते हैं वह अत्यन्त दुर्लभ है । सिद्धान्त रक्षा का धारम-सम्मान से अनिष्ट संबंध है । प्रेमचंद मनुष्य म आत्म-सम्मान रक्षना चाहते थे । उन्होंने मनुष्य मात्र को मरना और बोना दिखाना चाहा था । जनता को उत्तेजित करते हुए व लिखते हैं—

‘जब तक जनता स्वयं अपनी रक्षा करना न सोचेगी ईश्वर भी उसे आपा पार से नहीं बचा सकता ।

इसे सबसे पहले आत्मनिरास की रक्षा करनी चाहिए । हम कायर और बन्धु हो बने अपमान और हासि युक्त से यह भैते हैं, ऐय प्राणियों का तो स्वर्ग में जो सुख नहीं प्राप्त हो सकता । अकरत है कि हम निर्भीक और छाहसी बनें, संकटों का सामना करें, मरना सीखें । जब तक हमें मरना न आया बीना भी न आया ।’<sup>४</sup>

१ कृष्ण विचार पृ० १२

२ ‘योग’ पृ० ४१४-१५

३ ११

४ रबनूमि ( भाग २ ) पृ० २४५ ( प्रमुनेवक का कथन

प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन के ये मुख्य तत्व हैं जिन्होंने उन्हें महान् बनाया है। ये तत्व विशुद्ध मानवीय हैं। हमें के आचार पर प्रेमचन्द के हृदय घोर बहि की गहराई का अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि ये ही ये तत्व हैं जिनमें प्रेमचन्द बन है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उत्कृष्ट यह जीवन-दर्शन समर-उत्तर कर सामने प्रामा है। इससे उनका मानवतावाद भी भाँति प्रकट हो जाता है। जो आलोचक गांधीवादी प्रबन्ध साम्यवादी विचारधारामों के माध्यम से उनके जीवन-दर्शन को खोज करते हैं वे वास्तव में आचार की घोर गहो देखते। प्रेमचन्द न सही प्रचों में गांधीवादी न घौर न साम्यवादी। उन्होंने राजनीतियों प्रबन्ध समाजशास्त्रियों द्वारा निश्चित सिद्धांतों के आचार पर अपने साहित्य का सृजन नहीं किया। मानवीय मूर्त्यों को उन्होंने सर्वोपरि स्थान दिया। यदि उन्होंने साम्यवाद का समर्पण किया है तो इसीलिए कि साम्यवादी समाज-व्यवस्था में मानवीय मूर्त्यों की उपेक्षा नहीं की जाती। यही देखकर उन्होंने सोवियत संघ को 'नई सम्मता' का जोरदार समर्थन किया था। रबीन्द्र ठाकुर ने भी 'जस की बिट्टी' में सोवियत संघ की प्रशंसा की थी। इसी प्रकार प्रेमचन्द ने गांधीवादी-दर्शन का इसीलिए प्रपनाया था कि उसमें भी मानवीय मूर्तय अपनी पराकाष्ठ्य में विद्यमान थे। चाहे उसे गांधीवादी-दर्शन या गांधीवादी मैनिला बना जाय चाहे भारतीय। सत्य यहिमा स्वदेशी वस्तुओं हुरिजनों व शोषितों के प्रति प्रेम-भावना प्रादि बातें यदि उनमें मिलती हैं तो हम आचार पर हम उन्हें गांधीवादी नहीं ठहरा सकते भले ही ये प्रेरणाएँ उन्हें गांधीजी के वैचारिक सम्पर्क से मिली हों। चाहे गांधीवाद से प्रभावित प्रेमचन्द हों घोर चाहे साम्यवाद से उनका मौलिक दर्शन सबल स्पष्ट लक्षित है। तभी व आत्र इन महान् बन सके तभी व मनुष्य जाति को कुछ दे सके घोर तभी उनके साहित्य में इनकी बहुरई जा सकी।

## मानवतावादी प्रेमचंद

प्रेमचंद मानवतावादी लेखक थे। गांधीबादो और साम्यवादी सिद्धान्तों से उन्होंने सीधी प्रेरणा ग्रहण नहीं की। उन्होंने जो कुछ जाना सीखा सिखा वह सब अपने अनुभव मात्र से। इसीलिए उनके साहित्य में प्रपंचमय शक्ति है। गांधी बाद और साम्यवाद कोई मानवता के विरोधी नहीं है, बस प्रेमचंद के विचारों में बयहू-जयहू दोनों की छतक मिला जाती है। लेकिन उनका मानवतावाद सबब उभरा हुआ चीजता है। इसीलिए न उन्हें गांधीबादी ठहराया जा सकता है और न साम्यवादी। उन्होंने गांधीबादो और साम्यवादी धारण से ऊपर उठ से प्रभावित होकर साहित्य-सर्जन नहीं किया उनका व्यक्तित्व इन धारणों की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता। मूल समस्या प्रेमचंद के गांधीबाद से साम्यवाद को और मुझने की नहीं है, प्रत्युत उनके मानवतावाद के विकास की है। उनका मानवतावादी जीवन-दर्शन ही उनके समस्त विचारों के लिए उत्तरदायी है और इसमें संदिग्ध नहीं कि उनके मानवतावाद पर भारतीय दर्शन की गहरी छाप है। गांधीबादी और साम्यवादी विचारों में भारतीय व्यक्तियों के चिन्तन और सिद्धान्तों की यदि कहो छतक मिलनी है तो उन मौलिक नहीं ठहराया जा सकता। इसी प्रकार यदि प्रेमचंद में उनकी छतक मिलती है तो उन्हें कोई 'बादी' नहीं ठहराया जा सकता। वह तो भारतीय दर्शन की उपज के परिणामस्वरूप ही कहा जाएगा। उदाहरणार्थ, अहिंसा का सिद्धान्त है। यदि प्रेमचंद में अहिंसा-भाव मिलता है तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे गांधीबादो हुए गए। अहिंसा मात्र भारतीय दर्शन की उपज है।

प्रेमचंद के मानवतावाद का विकास मुबारकाद के दृष्टि की रिया में हुआ है। जहाँ वे मुबारकादी है वहाँ वे गांधीबाद के प्रतिक निष्ठ है और जहाँ दृष्टि जाती है वहाँ साम्यवाद के। इन क्षेत्र के होते हुए भी मुबारकाद और दृष्टिवादी प्रेमचंद के मौलिक जीवन-दर्शन में अन्तर नहीं प्राया है। इस बात का प्रमाण निम्नम्बर १९३६ के 'हृद्य' में प्रकाशित प्रेमचंद का 'महावती सम्बन्ध' शीर्षक लेख है जिस समय तक वे 'साजबज्ज' से 'भवनमूर्त' तक का एक जन्मा यह पार कर

बुके होते हैं, फिर जो उनकी पूज्यताओं का आहार नहीं बरता है। आतीर  
बाटी सम्प्रदा के बारे में प्रेमचंद लिखते हैं—

आमीरखान अरर बुरभन के पुन से अपनी व्यास बुझठा या तो अकसर  
आने किती बिब बा अपकारक के लिए आम की बाबो भी लमा देठा बा। बाए  
साह आरर अपने हूरब को आगून समझठा या पीर उठकी प्रबद्धा को क्योपि  
सहन न कर सकठा बा तो प्रबापानन भी करठा बा। म्यामसील भी होठा बा।  
बुधरे के देठ पर चडाई बहु या तो किछी अपमान-अपकार का बरबा करेने के  
सिने करठा बा या अपनी धान-धान रोब-बाय कापय रतने के सिने या फिर बैश-  
बिजय और उज्ज-विस्तार की बीरोबित महत्वाकांक्षा से प्रेरित होठा बा। उछरी  
बिजय का बहरेब प्रबा का जून बूझठा न होठा बा। अररख यह कि उमा और  
अमाद् बन-बापारख को अपने स्वार्थसाधन और बन-सोपल की अडुी का हवन  
न समझते थे किन्तु उनके दुःख-सुख में शरीक होते थे और उनके दुःख को अर  
करते थे।

यही बात उन्होंने 'आबरख १९३२ के अंक में कही है—

'किछी बर्न को बुरभे ने जलना भय न बा कि बहु अपना संवटन करठा।  
प्रत्येक बर्न का कार्यक्षेत्र निकल बा। उठ खेज के अंतर बहु अपना जीवन व्यतीत  
करठा बा। आहाण अथम और उच्छु का नेज बा। इतना नहीं कि उनमें  
बर्नबल या या बाहुबल या बलिक इसलिये कि उठमें जानबल बा। बैरब बन  
कमाठा बा, पर उठ बन को अनहित में खर्च करठा बा। मनोवृत्तिमा कुछ इठ  
उरह हो कई बाँ कि मोय आने अघिअरों की अघेक्षा अपने कर्तव्यों का अघाण  
बिचार रखते थे। उठ अरर का उमा केवल सिद्धांतन की ठोका न बड़ाठा बा,  
बलिक उठे उठ-दिन प्रबा के हित की बिन्धा बा। बहु लिये अपने लक्ष्य का कुछ  
न कुछ भाय प्रबा का कुछ-बर्ब लुनने में व्यतीत करठा बा बिपने प्रबा में उनके  
प्रति अहित और अडा का भाव अल्पन होगा बा। अभीअर केवल अियात से  
सबल बनून करके बैन न करठा बा, बलिक प्रबा के हित की रक्षा करठा बा।  
कुछे और आताअ सुत्रबाण अथम और अजिअ के उथम प्रबा के लिए प्रबता  
अर्बत्व अर्बत्व कर देना उठका धर्म बा।

५ अक्टूबर १९३२ के अंक में प्रेमचंद भारतीय संस्कृति अर अपने बिचार  
इस अरार अरर करते हैं—

'हमारे देठ की संस्कृति' कर्तव्य प्रबान' अम प्रबान पराअर्क प्रपाण अरिना  
प्रपाण अर और नियम प्रबान संस्कृति है। उथमें अ्यक्ति और अमहि के अमंत्रल्य  
का ऐसा बिधान है कि एक बुरभे का अरु न होकर महाअर बन रहे। अ्यक्ति के  
अिने अम और अीय प्राप्त करने की बुरी इबापीनता है, अर उनका अयोध अथम

घोर राष्ट्र के हित के लिये होना चाहिये भोग-विनाश निर्बलों पर प्रभुत्व बमाने के लिए नहीं। 'सहिंसा परमो धर्म' घोर 'बसुधैव कुटुम्बकम्' यह दो सूत्र हमारी संस्कृति के मूल तत्व हैं घोर इस प्रबोधत्वा में भी हम उन्हे धरनाए हुए हैं। यद्यपि अनेक कारणों से उस संस्कृति का रूप विकृत हो गया है उसमें अशुभ बुराईयाँ चुभ गई हैं यहाँ तक कि उसका रूप पहचाना नहीं जा सकता फिर भी ये तत्व प्रकाम्य-स्तम्भों की भाँति अब भी प्रतिकूल दशाओं का सामना करती हुए खड़े हैं। बहुत कुछ सो चुकने पर भी अब तक इसमें जो कुछ रह गया है, वह उन्ही प्रकाश-स्तम्भों का प्रसाद है। धर्मशा अब तक हमारी नीका न जाने कब की भँवर में पड़कर डूब चुकी होती।

प्रेमचंद का यह मानवतावादी-साहित्याचारी दृष्टिकोण १९३२-३६ तक बना रहा या जो कहा जाय कि बीजक पर्यन्त बना रहा। लेकिन बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। प्रेमचंद में वहाँ गांधीवादी संस्कार मिलते हैं, विशेषकर अन्तिम दिनों में, साम्यवादी संस्कार भी परिमिश्रित होते हैं। इन दोनों विचारों का अपूर्व सम्मिश्रण 'महात्मी सम्मता' शीर्षक लेख में देखा जा सकता है। 'महात्मी सम्मता' नामक लेख के विचार प्रेमचंद की बीजक-साधना से प्रतिफलित हैं। उन्होंने कोई पलटा नहीं खाया है। उन्हें अपने धारकों का मूल रूप यदि सोमियत रूप में दिखाई दिया तो उन्होंने उसकी एक ईमानदार मानव के नाते प्रतीति की घोर उक्त संस्कृति के विरोधियों पर तीव्र प्रहार भी किए।

प्रेमचंद की गांधी जी से भेंट नहीं हो पाई यद्यपि वे उनसे मिलने के लिए तरसते रहे। गांधी घोर प्रेमचंद का युग एक था। गांधी राजनीति में भारत का नेतृत्व कर रहे थे तो प्रेमचंद साहित्य में। प्रेमचंद के साहित्य का भी बड़ी उद्देश्य था जो गांधी जी का था—स्वतन्त्रता प्राप्ति। 'विशाल भारत' (सन् १९३०) में प्रेमचंद लिखते हैं—

'मेरी अनिजापाएँ बहुत सोमियत हैं। इस समय सबसे बड़ी समस्याया यही है कि हम अपने स्वतन्त्रता-संघाम में सकल हों। मैं बीजक घोर सोहरत का उरमुक्त नहीं हूँ। जाने को मिला जाता है। मोटर घोर बँबने की मुझे हविष नहीं है। हाँ यह बकर चाहता हूँ कि जो बार उच्छ-काटि की रचनाएँ छोड़ जाईं लेकिन उनका उद्देश्य भी स्वतन्त्रता-प्राप्ति ही हो।

गांधी के मनुष्य से किसी का विरोध नहीं है। वे महान् व्यक्ति थे। गांधी जी में पाये जानेवाले अनेक गुण प्रेमचंद में भी विद्यमान थे यथा—साधुता धर्म के प्रति विरक्ति साहिंसा-प्रेम उत्पत्तादिता अम-प्रेम प्रादि। प्रेमचंद गांधी जी को महामानव मानते थे। पर गांधी जी से प्रभावित होकर प्रेमचंद ऐसे बने यह बात नहीं है। गांधी जी यदि उत्पन्न न भी हुए होते तो भी प्रेमचंद जो वे बड़ी रहते।



अप्य बाहरी बातों में यदि कहीं साम्य पाया जाता है तो वह उद्देश्य को एका के कारण । बाँधी भी भी स्वाधीनता-प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील वे और प्रेमचंद भी । हमारा उद्देश्यवालों में एक दूसरे के प्रति प्रेम और साम्य का पाया जाता स्वाभाविक है । लेकिन उद्देश्य एक होते हुए भी उस उद्देश्य की प्राप्ति के साधनों में विविधता में अंतर हो सकता है । और यही प्रमचंद और गांधी जी में भी अंतर उपस्थित हो जाता है । सुधारवादी प्रेमचंद व्यक्तिवारी प्रेमचंद तो बन गये पर गांधी जी अन्त तक सुधारवादी ही बने रहे । जहाँ प्रेमचंद सुधारवादी हैं, वहाँ गांधीवाद के निकट हैं और वहाँ क्रांतिकारी हैं, वहाँ साम्यवाद के ।

प्रेमचन्द के बुद्धिकोश में यह परिचर्जन स्वाभाविक अनुभव ही थाया । प्रमचंद प्रारम्भ से ही व्यावहारिक आदर्शवाद के समर्थक थे यह बताया जा चुका है । गांधी जी के प्रबोधों पर उन्हें आकर्षित होने के कारण वास्तव में वह बहुत आस्था प्रणीत नहीं थे । प्रेमचंद ने जब प्रपञ्च अनुभवों के यह देखा कि गांधी जी के नीर-सरीके अत्यावहारिक हैं तो उनका उनसे मतभेद ही गया । ७ अक्टूबर १९१३ के 'आशा' की सम्पादकीय टिप्पणी में उन्होंने स्पष्ट लिखा—

व्यक्तिक सत्याग्रह का सर्वप्रथम एक को स्वीकार नहीं है । समर्थ है उसे पूर्ण रूप से व्यवहार में लाया जा सके तो राष्ट्र को उसके द्वारा स्वराज्य प्राप्त हो सके पर यह तो उसी तरह है कि रोगी की देख में रक्त बह जाय तो वह पथरव मच्छा हो जाएगा । किसी काम की सफलता के लिये असम्भव दर्ज लगा देने में हम सिद्धि के निकट नहीं पहुँचते । किसी प्रोग्राम को उससे व्यावहारिकता के आधार पर ही जाँचना उचित है । जिस दिन देश में ऐसे आदर्शी बड़ी संख्या में निकल आये, जो अपना आर्बस्व स्वराज्य के लिये त्यागने को तैयार हो जाएँ, उस दिन ही आप-ही-नाप स्वराज्य हो जाएगा । लेकिन ऐसा समय कभी आया, इसमें संदेह है । ऐसी वस्था में सत्याग्रही नीति से हमें उद्देश्य की प्राप्ति की आशा नहीं ।

आगे बतकर वे गांधीवाद की अत्यावहारिकता के आलोचक बन गए । 'आशा' १९ अक्टूबर १९१४ के संक में सम्पादकीय-टिप्पणी में वे लिखते हैं—

जब यह मान लेना पड़ेगा कि जिस बीज को मीनर को धाराज बनने है, जिसका मतलब यह होता है कि उसके गमन होने पर संवाधना नहीं बह बहूत मरने की बीज नहीं है, क्योंकि उमने एक से ज्यादा आदर्शों पर बननी को है ।

वास्तव की आकाश पर से उमका विरवात बाता रहा । 'मंगल गुरु' के प्रेषण लिखते हैं—

'मन्तुमार ने लिखने-पढ़ने का है कहा -कलक उर बुद्ध विद्या देनी है ।

स्वरथा प्रकृति का पहला नियम है। वह बायबाब को घापने बीस हजार में है वी घाम दो लाख से कम की गहो है।

'बह दो लाख की नहीं इस लाख की हो। मेरे लिए बह घारमा को बेचने का प्रस्न है। मैं बोडे से दस्यों के लिये अपनी घारमा नहीं बेच सकता।

बोना मिर्जा न एक-दूसरे की घार देखा घौर मुस्कराये। फिटनी पुरानी बलील है घौर फिटनी लखर। घारमा बीसी बीज है कहां? घौर जब साय संघार बोबे-बकी पर बस रहा है तो घारमा कहां रही? ... १

इसी प्रकार तबाकमित प्रजातंत्र पर से भी उनका बिरबास उठ गया बा। प्रजातंत्र के मात्र सिद्धान्तों से उन्हें कोई समाज न बा बे तो बसकी ब्याबहारिता पर बृष्टि रखते थे। 'बोबाल में मिर्जा के मुय स प्रेमबन्ध तबाकमित प्रजातंत्र के बारे में कहते हैं—

'जिसे हम डमोकेसी कहते हैं, बह ब्याबहार न बड़े-बड़े ब्यापारिया घौर बमीदारों का राज्य है, घौर कुछ नहीं। बुनाब में बड़ी बाजी से जाता है जिसके पास रुपये हैं। रुपये के बोर से उछके लिए सभी सुबिधाएँ तैयार हो जाती है।

प्रेमबन्ध कहते हैं, 'मिर्जा साहब ने बुरान को घामतों से सिख किया कि पुराने जमाने के बादशाहों के ब्यबर्त फिटने ठेके थे। घाम तो हम उसको ठरफ ठाक भी नहीं सकते। हमारी घाँकों में बकाबीज घा बाययो। बादशाह को बजाने की एक कौड़ी भी निजी खर्च में लाने का अधिकार न बा। बह फिटाने मकल करके कपड़े सीकर सड़कों को पककर घपना गुबर करता बा। मिर्जा ने बाबरा महीनों की एक लम्बी सूची गिना बी। कहां तो वे प्रजा को पामनेबाले बादशाह घौर कहां घामकस के मंत्री घौर मिनिस्टर, जिन्हें पाँच घा' घाठ घाठ हजार माहवार मिलना बाहिये। यह लूट है वा डेमोक्रेसी?' २

इसी मुट का उस्नेप करते हुए 'मंगससूत्र में प्रेमबन्ध पं० देवकुमार के मुल से कहलाते हैं—

'क्यों एक घारमी जिम्बगी भर बड़ी स बड़ी सेहनत करके भी भूखों मरता है, घौर दूसरा घारमी हाब-बाब न हिसाने पर भी फूलों की सत्र पर सोता है।.... बुष्टि बबाब हैती यही सभी स्वाधीन है, सभी को अपनी लकिन घौर साबनों के हिसाब से उपलब्धि करने का अधिकार है। मगर रंका पूछती सबको समान अधिकार नहीं है? बाजार मना हुवा है। जो बाहे बहां से अपनी इच्छा की बीज खरीद

१ मंगस-सूत्र पृ० ४२

२ गोबाल पृ० १२६

३ गोबाल पृ० १२६

छकटा है। मगर कहीबेग तो वही जिसके पास पैसे हैं। और जब सबके पास पैसे नहीं हैं तो सबका बराबर का अधिकार कैसे माना जाए।<sup>१</sup>

प्रेमचन्द की मानवता तथाकथित प्रजासत्तय की पापक नहीं थी। वे समाज से शांति और शोषक के ममूँके को मिटा देना चाहते थे। शोषितों के प्रति प्रेमचन्द के हृदय में घपार घटा और प्रेम है। वस्तुतः वे शोषित बगलता के ही मनुष्य थे। शोषक-समाज के प्रति उनके हृदय में कोई सहानुभूति नहीं है और यह बिरोधाभास निभ भी नहीं सजता। प्रारम्भ से ही उनमें शोषित के प्रति मानवीय संवेदना वृष्टियोधर होती है। शोषक-समुदाय क कृकमों से उन्हें बूछा भी उम्होंने लिखा—

निम्ना शब्द और पृछा यह सभी दुर्बुल है लेकिन मानव जीवन म से धरर इन दुर्बुलों को निकाम मीश्रित ठा संसार करक हो जाएसा....पारबंड भूर्तिता धन्यम बगलकार और एसी ही धन्य बुप्प्रवृष्टियों के प्रति हमारे धन्यर कितनी ही प्रबंड बूछा हो सतनी ही कल्याणकारी होपी। जीवन में कब पृछा का इतना महत्त्व है, ठो साहित्य कैसे उसकी उपेसा कर सकता है। वो जीवन का ही प्रति बिम्ब है। मानव-हृदय धाकि से ही 'मु' और 'तु' का रंयस्मन है और साहित्य की वृष्टि ही इनीलिए हुई कि संसार में वो 'तु' या 'सुन्दर' है और इसीलिए बल्याक कर है, उसके प्रति मनुष्य में प्रेम उत्पन्न हा और 'तु' या वसुन्दर और इतलिए धराय वस्तुओं से बूछा। साहित्य और कला का वही मुख्य बरेरक है। 'तु' और 'मु' का सधाम ही साहित्य का इतिहास है।<sup>२</sup>

लेकिन वे भावनाओं के प्रति ही पृछा का उत्रेक करते हैं ब्यक्तियों के प्रति नहीं—

इन पंक्तिओं के सेवक ही के बिषय में एक कृपानु धाताधक म धाच प किना है कि सबसे भागी रचनाओं में ब्राह्मणों के प्रति बूछा का प्रचार किया।

हरेक टकसंबी पुकारी को ब्राह्मण बहकर में इन पर का धपमान नही कर सकता। इस बिदुत पर्वोपश्रीपी धाबरण के हाथों हमारा सामाजिक धहित ही नही निगना राष्ट्रीय धरिठ हो रहा है। यह बर्साधम स्वराज्य मंत्र के इधकडों से ब्रह्मिर है। ऐसी धसामाजिक धराष्ट्रीय धमामुपीय भावनाओं के इति निगनी भी पृछा कैमाई जाए वह छोड़ी है केवल भावनाओं के इति ब्यक्ति के इति नहीं बर्बोकि बर्साधम-धर्म के नबालक हमारे कैमे ही भाई है धेठे धाताधक मधोरय के।<sup>३</sup>

१ मंगलभूष १० १८

२ इन दिनाकर १९११

३ इन दिनाकर १९११ ( जीवन में बूछा का स्थान )

बुद्धा के सम्बन्ध में भी उनके विचार न कठप्रतिष्ठत मांभीवादी हैं और न साम्यवादी। प्रेमचन्द पाण्डित्यों भूतों धर्म्यामियों का पर्याप्त प्रशंसक करते हैं, पर उनके विरुद्ध बुद्धा उत्पन्न नहीं करते। साम्यवादी धर्म्यामी के प्रति भी बुद्धा करने की बात कहते हैं। प्रेमचन्द भावनाओं और व्यक्ति में भेद करते हैं। डा० रामबिलास शर्मा 'प्रेमचन्द और उनका युग' नामक पुस्तक में लिखते हैं 'प्रेमचन्द का मानववाद मनुष्य की उत्पत्तारी करनेवाला मानववाद है। वह प्रमानुषीय भावनाओं को देखकर चुप नहीं रहता। प्रेमचन्द कुम्भमकुम्भा मयता उद्देश्य घोषित करते हैं कि ऐसी भावनाओं के प्रति विरुद्ध भी बुद्धा ईसायी वाय वह बोड़ी है। वह सोशियल साहित्य के समर्थक है। 'कमा कमा के लिए' का मिश्रित साहित्य से उन्हें बैर है। वह भावनाओं और व्यक्ति में भेद करते हैं लेकिन स्वयं उनके उपस्थास धर्म्यामी ही नहीं धर्म्यामी के प्रति भी बुद्धा करना सिखाते हैं। ज्ञानरंकर के चरित्र से कौन-सा पाठक झोप से विचलित नहीं हो सकता? ज्ञानरंकर को धनम रखकर उसका झोप कब सूख भावनाओं पर केन्द्रित होता है? विचार क्षेत्र में प्रेमचन्द धर्म्यामी और धर्म्यामी में भेद करते हैं इस तरह का भेद अस्वामाधिक है और साधारण प्रकृति के विरुद्ध है। धनम न धनने उपस्थासों में वह धर्म्यामी और धर्म्यामी से बुद्धा करना सिखाते हैं, जो पचित ही है।'

उपर्युक्त उक्त प्रांशिक सत्य ही हो सकता है। यह प्रशंसक है कि व्यक्ति को धनम रखकर सूक्ष्म भावनाओं पर पाठक का झोप केन्द्रित नहीं हो सकता लेकिन यह ठमी ठक होता है जब ठक वह व्यक्ति बुद्धित कम करता है। बाव में बुद्धा का भाव उस मूरत में कर्म ठक ही सीमित रह जाता है जब कि जयक उस व्यक्ति में साधु-प्रवृत्तियों का संचार कर रहा है। ज्ञानरंकर के मामले में भी यही बात बिकारी देठी है। ज्ञानरंकर में जब साधुता आगती है ठक वह धनने पूर्ववृत्त नीच कर्मा के कारण स्वयं से बुद्धा करने लगता है और धारमम्मानि से भरकर धर्म हत्या कर भेठा है। प्रेमचन्द ज्ञानरंकर के हृदय में प्रायश्चित्त के भावों का समावेश कर देते हैं। यदि व्यक्ति के प्रति ही बुद्धा का प्रचार करना प्रेमचन्द का उद्देश्य रहा होता तो ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

जीवन के अन्तिम दिनों में वे साम्यवाद के प्रति आकर्षित हुए थे। इस आकर्षण का मूल क्या है? २० फरवरी १९३३ के 'आमरण की सम्प्राप्तिय टिप्पणी में प्रेमचन्द लिखते हैं—

संसार में जितना धर्म्यामी और धर्म्यामी है, जितना झोप और मासिक्य है

क्रियता मूर्खता और अज्ञानता है, उसका मूल रहस्य यही विष की गंध है। जब तक सम्पत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार रहेगा तब तक मानव-समाज का उद्धार नहीं हो सकता।

यहाँ प्रेमचन्द का व्यक्तिवारी रूप साम्यवाद के निरुद्ध है। साम्यवाद उनके समय में बस में आकार हो उठा था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि साम्यवाद के सिद्धान्त कोई मानववाद के विरोधी नहीं है। प्रेमचन्द का मानव वासी-मन यदि साम्यवाद की धारणा समाज-व्यवस्था को धीरे धाकपित हुआ तो वह एक स्वाभाविक विकास है। जिस तरह प्रारम्भ में प्रेमचन्द नापीवाद की ओर धाकपित हुए वे कुछ उची प्रकार का यह भी धाकपित था। नापीवाद में प्रत्यावहारिकता देखकर प्रेमचन्द साम्यवादी धारणा की ओर मुड़े थे। यदि साम्यवादी व्यवस्था या सिद्धान्तों में उनके मन की भावनाओं के प्रतिकूल कोई बात उन्हें दिखाई देती तो वे उसकी धारणा धारण करते धीरे बहुत सम्भव है उनका मानवतावाद धारण चलकर एक नई विचारधारा को जन्म देता। लेकिन प्रेमचन्द इस मोड़ के पक्ष पर ही हमसे बिदा हो गए। इस अवधि में व्यक्त उनके विचारों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि वे भारतीय धारणाओं और अपने मौलिक जीवन-रक्षण से ही प्रभावित होकर साम्यवाद का समर्थन करते हैं। साम्यवाद का धर्म उनके लिये क्या था? साम्यवाद का विरोधी कौन हो सकता है? प्रेमचन्द लिखते हैं—

‘साम्यवाद का विरोध नहीं तो करता है जो दूसरों से ज्यादा सुख भोगना चाहता है, जो दूसरों को अपने अधिकार रखना चाहता है। जो अपने को भी दूसरों के बराबर ही समझता है जो अपने में कोई सुपरिष का पर मना हुआ नहीं देखता जो समदर्शी है उसे साम्यवाद से विरोध क्यों होने लगा?’<sup>१</sup>

महाजनी सम्पत्ता’ शीर्षक लेख में जो कि दिसम्बर १९३६ में लिखा गया था प्रेमचन्द ने जहाँ एक धीरे वर्तमान समाज को स्थिति का धारणा विष लीजा है तथा सोचियत इस की समाज-व्यवस्था की प्रस्ताव की है वहाँ दूसरी ओर बागीर बारी सम्पत्ता की धारणाओं का उल्लेख भी किया है तथा इन बात पर लेख प्रकट किया है कि दया और स्नेह सच्चाई और शोक्य का पुनरा मनुष्य व्यवस्था ममता मनुष्य अङ्ग-यंत्र बनकर रह गया है। प्रेमचन्द मानव को उसका मौलिक रूप में देना चाहते हैं। उसमें जा विद्वान् का यई है उसका मूल कारण धन-कामना व्यवस्था धनसंपत्ति है जिसे महाजनी-सम्पत्ता न बनाया है। धन के इन महाजनी सम्पत्ता

को मिटा देना चाहते हैं। सोबिमत कम है महाजनवाद को समाप्त किया, पर उस सम्प्रदाय में उन्हें मानव-कल्याण के दशन हुए।

वर्तमान समाज-व्यवस्था की यथार्थ स्थिति का बयान करते हुए प्रेमचन्द 'महाजनी सम्प्रदाय' शीपक लेख में लिखते हैं—

'अनुप्य समाज दो भागों में बँट गया है। बड़ा हिस्सा तो मरने-मरनेवालों का है और बहुत ही छोटा हिस्सा उन लोगों का जो अपनी शक्ति और प्रभाव से बड़े समुदाय को अपने बस में र्किए हुए हैं। उन्हें इन बड़े भाग के साथ किसी तरह की इतराई नहीं। उसका प्रतिफल केवल इतना है कि अपने मानिकों के लिए पसीना बहाए, लून मिराए और एक दिन चुपचाप इन दुनिया में बिना हो जाए।'

'कर्ममूर्ति' में भी एक स्थान पर प्रेमचन्द इस ओर लक्ष्य का समे हैं। प्रमरकण बहता है—

एक घादमी बस अपने में गुजर करता है, दूसर का बग-दुआर क्यों खाए ? यह बाँधनी उसी बन्ध तक बसेनी जब तक बनता की शक्ति बन्द है। समा कीविएया एक घादमी अपने की हवा जाए और लसनामे में बठ और दूसरा घादमी बोकदर की पूष में तप यह म म्याय है न धर्म यह बाँधनी है।<sup>१</sup>

'मंगल मूत्र' में साधु कुमार बहता है—

इन मरौकों में बना जाना मुझे ता स्वाभाविकता ही लगती है। मुझे तो इन बस में भी अपने ऊपर लज्जा घाती है, जब देखता हू कि मरे ही बँध लोच ठोकरे का रहे हैं। हम तो दोनों बल चुनझे हुई रोटियाँ और दूध और दूध-मंत्र उड़ते हैं। मगर ही में निम्नानमे घादमी तो ऐसे भी हैं जिन्हें इन पदाकों के दर्शन भी नहीं होते। बास्त्रि हममें क्या मुर्बाब के पर सम गए हैं ?<sup>२</sup>

और घाने चलकर 'महाजनी सम्प्रदाय' शीपक लेख में व कयी-संस्कृति और समाज-व्यवस्था का स्वागत करते हैं—

'परन्तु अब एक नई सम्प्रदाय का सुदूर परिचय है उदय हो रहा है जिसने इस नाटकीय महाजनवाद या वृमीवाद की बड़ ओरकर फेंक दी है। जिसका मूल सिद्धान्त यह है कि प्रत्येक व्यक्ति जो अपने शरीर या विमान से मेहनत करके कुछ पैसा कर सकता है, राज्य और समाज का परम सम्मानित सम्प्य हो सकता है, और जो केवल दूसरों की मेहनत या बाप-दादों के जोड़ हुए बल पर रईम बना

१ 'मूल' अगस्त १९३६

२ कर्ममूर्ति पृ० १२६

३ मंगल-मूत्र पृ० २३

किरता है वह पठित्तम प्राणी है, उसे राज्य प्रबन्ध में राय देने का हक नहीं और वह नागरिकता के अधिकारों का भी पात्र नहीं । १

इतना ही नहीं सोवियत कंस के विरुद्ध क्रुद्ध प्रचार करनेवासे महाजनों और साम्राज्यवादिनों की भी खबर लेना वे नहीं मूले हैं—

महाजन इस गई नहर से प्रति उद्दिष्ट होकर बीससाया हुआ फिर रहा है और सारी दुनिया के महाजनों को शामिल याबाज इस गई सम्पत्ता को कोस रही है, उसे तोप दे रही है । व्यक्ति स्वतंत्र याबाजी यह इन सबको बातक गला पोट देनेवाली बनाई जा रही है । उस पर एक मए-मए लांछन लगाये जा रहे हैं, गई-गई हुरकटें तराही जा रही है । वह कामे से कामे रंग में रंभी जा रही है, क्रुसित से क्रुसित कम में चिन्तित की जा रही है । जन कमी साधनों से जो पीसे बालों के लिए मुसम है, काम लेकर उसने विरुद्ध प्रचार किया जा रहा है । पर सचाई है, जो उस सारे प्रबन्धकार को भीरकर दुनिया में अपनी ज्योति का उजाला फैला रही है । २

माने बलकर विस्तार से लिखते हुए प्रेमचन्द सोवियत साम्यवादी समाज व्यवस्था की वास्तविकता बड़े निर्भीक ढंग से उपस्थित करते हैं—

निःसन्देह इस नयी सम्पत्ता ने व्यक्ति स्वतंत्र्य के पंजे मालूम और बाँट लोड़ दिए हैं । उसके राज्य में अब एक पृथ्वीपति वालों मञ्जूरों का गून वीकर मोटा नहीं हा सकता । उसे अब यह याबाजी नहीं कि अपने गले के लिये साधारण याबरवफता की वस्तुओं के बाम बड़ा लके बूटरे अपने मास को लुप्त कराने के लिये मुड करा दे गोला बाक्य और मुड सापत्री बनाकर दुर्बल राष्ट्रों का बमन करण । अगर इसको स्वाधीनता ही स्वाधीनता है तो निरसन्देह गई सम्पत्ता में स्वाधीनता नहीं पर बरि स्वाधीनता का अर्थ यह है कि जन-साधारण को हवा-बार मफान पुष्टिकर भोजन साठ-मुपरे गाँव मनीरबन की और व्यापार की सुविधाएँ, बिजली के पंजे और रोस्तनी सम्ता और उद्योगसुलभ भाव की प्राप्ति हो तो इस समाज-व्यवस्था में जो स्वाधीनता और याबाजी है वह दुनिया की किसी मन्मतम कइनेवाली बापठ को भी मुलम नहीं । बर्न की स्वतन्त्रता का अर्थ अगर पुठेष्टिों पान्तिरों मुस्ताधों की मुक्तजोत्र सम्यत के बममय उपदेष्टों और अन्य विरबासत्रलित कइियों का अनुमरण है तो निरसन्देह बर्न इस स्वतंत्रता का अभाव है, पर समस्वतंत्र्य का अर्थ यदि कोरनेवा सहिष्णुता समाज के लिए व्यक्ति का बलिदान मैकनीयती शरीर और मन की बलिजता है तो इस सम्पत्ता

में धर्माचार्य की जो स्वाधीनता है और किसी देश को उसके दर्शन भी नहीं हो सकते ।

यह नई सम्मता घनाडपता को हेय और लज्जाजनक तथा बातक बिय समझती है । वहाँ कोई धारणी धर्मी ही से रहे तो लोगों की ईर्ष्या का पात्र नहीं होता बल्कि तुच्छ और हेय सम्मत्त जाता है ।...

हाँ इस समाज-व्यवस्था ने व्यक्ति को यह स्वाधीनता नहीं दी है कि वह जनसाधारण को अपनी महत्वाकांक्षाओं की तृप्ति का साधन बनाए और तरह तरह के बहानों से उनकी मेहनत का फलदा उठाए या सरकारी पर प्राप्त करके मोती रकमें उड़ाए और सुखों पर ताब देता फिरे ।<sup>१</sup>

प्रेमचन्द बालते थे कि कुछ लोग हम नई सम्मता का इस प्रकार पर विरोध करेंगे कि वह बिबेची है, मारत की मिट्टी के अनुकूल नहीं । इस कुतर्क का उत्तर वे अपने इसी लेख में दे गये हैं—

यह सम्मता प्रमुक्त देश की समाज रचना प्रबन्ध धर्म-मन्त्रह्व से मेल नहीं खाती या उस बतारण के अनुकूल नहीं है, यह तर्क नितान्त असंगत है । ईसाई मन्त्रह्व का पोषा यक्ष्यपन में समा और सापी दुनिया उसके सीरम से बस गई । बौद्धधर्म ने उत्तर भारत में जन्म ग्रहण किया और धार्मी दुनिया ने उसे गुल-बदिया की । मानव-स्वभाव प्रखिल विरह म एक ही है । छोटी-छोटी बातों में घलतर हो सकता है पर मूल स्वल्प की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव-जाति में कोई भेद नहीं । जो शासन-विधान और समाज-व्यवस्था एक देश के लिए प्रत्याखकारी है वह दूसरे देशों के लिए भी हितकर होगी । हाँ महाजनी सम्मता और उसके गुरमे धरणी शक्ति भर उसका विरोध करेंगे उसके बारे में भ्रमजनक बातों का प्रचार करेंगे जन-साधारण को बहुप्रबन्धे । उनकी धारणों में बूल खोंकेगी । पर जो सत्य है, एक न एक दिन उसकी विजय होगी और प्रबल होगी ।<sup>२</sup>

‘मंगलसूच’ में पं० देवकुमार के मुख से प्रेमचन्द कहलाते हैं—

‘महीं मनुष्यों में मनुष्य बनना पड़ेगा । शरिणों के बीच में उनसे लड़ने के लिए हथियार बाँचना पड़ेगा ।’<sup>३</sup>

यहाँ ऐसा लकटा है कि प्रेमचन्द प्रहिषा-यन से हट गए हैं । हिन्दी के कई प्राज्ञोचकों ने हम प्रारण्य के विचार प्रकट किए हैं । यहाँ ‘हथियार बाँचने’ से धर्मिप्राय हिंसा से नहीं है, धरन् संघर्ष से है । प्रत्याय को चुपचाप छुड़न न करने से है ।

१ ‘ईत’ सितंबर, १९३६

२

३ मंगल सूच—पृ० ६०

४



इस प्रकार प्रेमचन्द के विचारों में घाने चलकर पर्याप्त विकास हुआ। भारतमें का सुधारवादी दृष्टिकोण क्रान्तिकारी विचारों के घामने न टिक सका। यह वैचारिक परिवर्तन उनके मानवतावाद के विकास के प्रति उत्तरवादी है।

## भारतीय स्वाधीनता की समस्या

प्रेमचन्द भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के निर्भीक व प्रबल योद्धा थे। विदेशी सत्ता के साम्राज्यवादी षड्यंत्र में दबा-पिसा भारत उनकी रचनाओं में बड़े ही मार्मिक ढंग में परिचित हुआ है। प्रेमचन्द भारतीय राजनीतिक आन्दोलन का एक स्तम्भ हैं। देश में स्वाधीनता के विचारों का प्रचार उन्होंने साहित्य के माध्यम से अपने ही बोरों से किया जिनका सक्रिय राजनीति में सग्य व प्रहिता के द्वारा योग्य भी ने। साहित्य का जनता के संस्कारी मन पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ता है, यथाकि उसमें कला प्रकृतिहित रहती है। प्रेमचन्द इस तथ्य को बखूबी तरह समझते थे। पदधीनता की मूखमाय तोड़ने के लिए भारतीयों में नवीन चेतना साहस और शक्ति का संचार प्रेमचन्द ने साहित्य के द्वारा किया। उन्होंने सोच भारत को भङ्गमोरकर जगामा ही नहीं उसे उसकी अपनी बसा से ही परिचित नहीं करामा बरन् उसे क्रांति के लिये—स्वाधीनता का हेतु संवर्द्धित समियाल के लिये तैयार भी किया। उनके साहित्य में भारत की धारणा बोझी है।

प्रेमचन्द के समय भारत की राजनीतिक अवस्था बड़ी अनिश्चित थी। राष्ट्रीय म्हासभा ( इण्डियन नेशनल काँग्रेस ) के नतृत्व में स्वाधीनता-आन्दोलन चार पकड़ रहा था यद्यपि कुछ असफलताएँ उसका इतिहास में लिखामा हैं। पर, इन असफलताओं से स्वाधीनता की प्राप्ति बची नहीं प्रत्युत और ध्यापक व तीव्र ही होती गई। प्रेमचन्द ने अपनी भाँखों जनता के से जुनुम देले से जो स्वाधीनता की म्हासना लिए सङ्घर्षों-सङ्घर्षों तथा बलिपों-मनियों निकमते व। इसके नाम-ही-नाथ प्रेमचन्द ने अपनी भाँखों प्रिमी कुकुमत के अस्थाचार प्रणाम व समन के भी कुरय देखे। लेखक ज्ञान के नाते प्रेमचन्द स्वाधीनता-आन्दोलन से ठटस्व नहीं रह सकते थे। सन् १९२ के जमाने में जब कि देशभंगी अग्रहयोग चल रहा था प्रेमचन्द ने समसे प्रभावित हुकर सरकारी नौकरों से त्यागपत्र व लिया था और 'जसम के मञ्जूर' बनकर स्वाधीनता-संग्राम में कूद पड़े थे। धाने चलकर से बराबर काँटेम को बैठक में प्राण लेते रहे। धीमती शिबराभी प्रेमचन्द ने बैठा लिखा है—

“काँग्रेस की पीटिंग रोजाना बस रही थी उसमें भी ब ठीक होत । पीटिंग से कभी-कभी सोटने में रात के बस बज जाते । ”

प्रेमचन्द के साहित्य का तरकामीन राजनीति से धनिष्ठ सम्बन्ध है । सिव राजी प्रेमचन्द का अधोनिष्ठित बाधसाप प्रेमचन्द के साहित्य और राजनीति सम्बन्धी विचारों को प्रकट करता है—

‘प्रेमचन्द—जब तक यहाँ के साहित्य में तरकमी न हावो तब तक साहित्य समाज और राजनीति सब के सब क्यों के लो पड़े रहेंगे ।

शिवराजी—ठी क्या भाप इन तीनों की एक माना-सी विरोधा चाहते हैं ?

प्रेमचन्द—और क्या । ये बीजे माभा बीसी ही है, जिस भापा का साहित्य बच्छा होगा उसका समाज भी बच्छा होबा । समाज के बच्छा होने पर मजदूरन राजनीति भी बच्छी होयी । ये तीनों साथ-साथ बननेवासी बीजे हैं ? ”

प्रेमचन्द ने अपने सपन्यासों में अंग्रेजी-साम्राज्यवाद की व्यापारिक नीति माट्टीय ठिचिठ बर्ग में अंग्रेजी-शिष्या के प्रति सवाब भारतीय ईसाइयों में अंग्रेजों की गरुम की प्रवृत्ति ब्रिटिश नीकरशाही का भारतकपूर्य शासन तथा उसके साम्राज्यवादी स्वार्थ धन्याय भादि पर जगह-बपूट लिखा है । वे पूर्ण स्वाधीनता के पक्षपाती थे । “डोमिनियन स्टेटम् में इनको तनिक भी बिरबाम न पा । ‘हंस की पहली सम्पादकीय टिप्पणी में उन्होंने डोमिनियन स्टेटम् का बड़ा विरोध किया है—

ईंग्लैण्ड का डोमिनियन स्टेटम् के नाम से न बबड़ला समझ न पाता है । स्वराज्य न किस्तों की गुंजाइश नहीं न पाकमेज की सतभन है इसलिए बहु स्वराज्य के नाम से कानो पर हाम रखता है । सकिन हमारे ही माइनों में इन प्ररत पर बनों मउमेब है इसका खड्डस्य धासानी से समझ में नहीं पाता । वे इतने बेसमझ तो हैं नहीं कि ईंग्लैण्ड की इस बात को न समझते हों । धनुमान यह होता है कि इन बात को समझकर भी वे डोमिनियन के पक्ष में हैं । इसका कुछ और धारण्य है । डोमिनियन पक्ष का गौर से देखिए तो कउमें हमारे राजे महाराजे हमारे बनीबार हमारे धनी-मानी भाई ही प्याश नजर पाते हैं । क्या इयक्य मह कारण है कि वे समझते हैं कि स्वराज्य भी बटा में उन्हें बहुत कुछ दबकर रहना पड़ेगा ? स्वराज्य में मजदूरों और किसानों की धावाज इतनी निर्बल न रहेगी । क्या वे लोग उस धावाज के धय से परपरा रहे हैं कि उनके कितों की रबा अंग्रेजी-शासन से ही हो एवती है ? स्वराज्य कभी उन्हें दरिबों को कुबलने और उनका रकन बूतने न देगा । डोमिनियन का धर्ब उनके बिने

१ प्रेमचन्द—पर में प० ५४

२ प्रेमचन्द—पर में प० ६४-६५

बड़ी है कि दो-चार यवर्गियाँ दो-चार बड़े-बड़े पर उन्हूँ धीर मिल जावेंगे । उनका डोमीनियन स्टेटस इसके सिवा धीर कुछ नहीं है । ठास्नुकेदार धीर एबे इसी तरह गरीबों को चुसते चसे जावेंगे । स्वराज्य गरीबों की प्राणाज है, डोमीनियन गरीबों की कमाई पर मोटे होनेवासों की । <sup>१</sup>

ब पूर्व स्वाधीनता के पक्षपाती तो थे ही पर उनकी स्वतन्त्रता का दृष्टिकोण निताप्त बनबादी था । कर्ममूमि में डा शान्तिकुमार के मुख से भी उन्होंने बनजा की सरकार तथा ब्रम्भित का समर्पन किया है—

‘बन तक रिधामा के हाथ में अक्षित्यार न होगा अफमरा का यही हाल रहेगा... गरीबों की सारा पर सबके सब गिडों की तरह जमा होकर उनकी रोटियाँ नाच रहे हैं इस हाहाकार को बुझाने के लिए दो चार बड़े पापी डामने से तो पाप धीर भी बड़े ही । इन्कमात्र की अकरत है, पूरे इन्कमात्र की । <sup>२</sup>

बे धार्मिक सम्राज की स्थापना करना चाहते थे जिसमें धमीर-गरीब का घेर न हो—

यवर्गमेष्ट तो कोई अकरो चीज नहीं । पड़े सिसे धारमियों ने गरीबों को बचाये रखने के लिए एक संघटन बना लिया है । उसी का नाम यवर्गमेष्ट है, गरीब धीर धमीर का फर्क मिटा दो धीर यवर्गमेष्ट का आत्मा हो जाता है । <sup>३</sup>

धर्महारा-धर्म के प्रति उन्हें स्वाभाविक सहानुभूति थी । वे उसे बलिक धर्म के सामने अयमानित होते देखना पसन्द नहीं करते थे । वे ऐसी धारामी के समर्पक न थे जो मानवीय धमिकारों को बचाकर रखे । आगती हुई बनजा के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

‘उसे अपने स्वत्व का ज्ञान हो चुका था । उन्हें मामूम हो गया था कि उन्हें भी धाराम से रखने का इतना ही धमिकार है, जितना धमियों को । <sup>४</sup>

माकसदादी समीचक धीमुत धमुतधाय के शब्दों में यह कहा जा सकता है—

‘धर्मबन्ध की देशमन्ति कोई शून्य हवाई देशमन्ति नहीं सन्धी बनबादी देशमन्ति है धीर अन्होंने जो कुछ लिखा है देश में बनजा का शासन बनबाद आयम करने के लिये लिखा है । <sup>५</sup>

धर्मबन्ध के विचारों में परिवर्तन होते गए हैं । ‘धर्म से ‘धर्मसमूह तक अन्होंने एक बहुत बड़ी वैचारिक यात्रा पूर्व की है । प्रारम्भ में वे सुधारवादी तथा नरम बहिष्कारवादी हैं, पर, बाद में बड़े धर्म ब्रम्भितकारी तथा धाममार्गी ।

१ ‘इस मास १९३०

२ कर्ममूमि—पृ० २३२

३ कर्ममूमि— २३४

४ धर्ममूमि— २३९

५. शान्ति के योद्धा ‘धर्मबन्ध —पृष्ठ ९

यह परिवर्तन उनके अनुभव पर आधारित है। उन्होंने दिन-दिन बढ़ते शोषण और अत्याचार को देखकर अपनी राय स्थापित की।

प्रारम्भ में उन पर गांधीबायी-बदल का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव था। प्रायः महान् साहित्यकारों में यह बात देखी गई है कि वे अपने युग के राजनीतिक नेताओं से विचारों में घाये होते हैं। जिस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने गांधी जी के प्राथमिक के पूर्व स्वदेशी और भारतीय-संस्कृति के प्रति देश का ध्यान आकर्षित किया था उसी प्रकार प्रेमचन्द भी गांधी जी के विचारों से घाये निकस आया करते थे। 'प्रेमाश्रम' के रचनाकाल से यह बात स्पष्ट होती है। मजदूर और जातिधारी के सम्बन्धों पर लिखा 'प्रमाश्रम' गांधी जी के आन्दोलन का प्राचीन पूर्वानुमान है। प्रेमचन्द-सिबरानी संवाद से यह बात स्पष्ट प्रकट होती है—

‘सिबरानी—तो आप भी क्या महात्मा गांधी के तरफदार हो गए ?

प्रेमचन्द—भरे, तरफदार होने का तुम कहती हो मैं उनका बना हो गया। जेना तो उसी समय हुआ जब वह बाराकपुर में घाये थे।

सिबरानी—जैसे तब हुए थे बरसम भव कर घाये।

प्रेमचन्द—जैसा होने के मानी किसी की पूजा करना नहीं होता बरसम उन सुखों का अपमाना है।

सिबरानी—तो आपने अपना भिये ?

प्रेमचन्द—मैंने अपना जिये। अपना को कहती हो उसी के बाद तो मैंने 'प्रेमाश्रम' लिखा है। सन् २२ में छपा है।

सिबरानी—बहु तो पहले से ही लिखा जा रहा था ?

प्रेमचन्द—इसके मानी यह है कि मैं महात्मा गांधी को बिना देखे ही उनका जेना हो चुका था।

सिबरानी—तो इसमें महात्मा गांधी की कौन पाल बात हुई ?

प्रेमचन्द—बात यह हुई कि जो बात यह करना चाहते हैं, उसे मैं पहले ही कर देता हूँ। इसके मानी यह है कि मैं उनका बना बनाना कुरखी जेना हूँ।

सिबरानी—यह कोई बात नहीं है न कोई दलील है।

प्रेमचन्द—दलील को यह कोई बात नहीं। इससे मानी है कि बुनिया में मैं महात्मा गांधी को सबसे बड़ा मानता हूँ। उनका जेरय भी यही है कि मजदूर और जातिधारी सुखी हो बहु इन सोचों को घाने बज्ज के लिये आन्दोलन मचा रहे हैं। मैं लिख कर के उनको जत्साह दे रहा हूँ। महात्मा गांधी हिन्दू-मुसलमानों की एगठा चाहते हैं, तो मैं भी हिन्दी और उर्दू को मिला करके हिन्दुस्तानी बनाना चाहता हूँ।<sup>१</sup>

प्रेमबन्ध के भाषा-सम्बन्धी विचारों को प्रागे बलकर गांधी जी ने भी धारण किया। इस प्रकार अनेक बातों में वे गांधी जी के पक्ष हो करन उठा चुके थे। गांधी जी के सिद्धांतों का प्रभाव उन पर पड़ा है, यद्यपि उनका प्रतिबिम्ब उनके साहित्य में मितता है। 'रंगभूमि' में जाहिर प्रती के शब्द विपत्ती के सम्बन्ध में गांधीवादी-दृष्टान्त के प्रतीक हैं—

'किन्होंने मुझ पर ज़ुलूम किया है उनके दिल में दया-धरम जाने बस मैं धारण लोगों से घोर क्रोध नहीं चाहता।'<sup>१</sup>

इसी उपन्यास में वे कहते हैं—

'रोप का घण्ट करने के लिये रोपी का घण्ट कर देना न बुद्धिमत्त है न न्यायमत्त। धाम धाम से शास्त्र नहीं होती पापी से शास्त्र होती है।'<sup>२</sup>

उन्होंने शास्त्र उपायों का सर्वप्रथम प्रयोग किया है। मोक्षी बिनयकुमार से कहती हैं—

'तुम धारण धारण से उसी समय पत्रित हुए, अब तुमने उस विद्रोह को शास्त्र करन क लिये शास्त्र उपायों की प्रवेष्टा करुता घोर दमन से काम लेना उपयुक्त समझा। शीघ्रान ने पहली बार तुम पर बार किया घोर तुम फिर न भ्रमसे भिगते हो जाने गये।'<sup>३</sup>

पर प्रागे बलकर मुबारकबादी बुद्धिकोण पर से उनका विरवास द्धित गया था। जीवन के अन्तिम दिनों में वे बड़े उग्र हो उठे थे। उनके उपन्यासों में भारतीय स्वाधीनता की गूँज सर्वप्रथम 'सेवासदन' में सुनाई देती है जहाँ कि उन्होंने एक अविष्णु-दृष्टा को उरुह यूरोप के व्यापारिक साम्राज्यवाद के प्रति सिखाया है—

'दिल्लि घोर कला-कौठन का यह महान् उद्योग ममय तक है जब तक संसार में निरान धर्ममय जातिवाँ वर्तमान है। उनके पने सन्ना मान मङ्कर यूरोपवाले बन करते हैं। परन्तु ही वे जातिवाँ जाँकेगो यूरोप की प्रभुता गह हो जावगी।'<sup>४</sup>

उन्होंने भारतीय मुक्तियों को पारश्चात्य-संस्कृति तथा विदेशी भाषा के पीछे मत्तवाये होने से रोका न सकेत किया। देश में जब स्वाभिमान तथा निरान की संस्कृति के प्रति उपेक्षा-भाव बढ़ते जाते हैं तब वह देश तथा जाति मृतक हो जाती है। भारतीय मुक्तियों के द्वारा भारतीय-संस्कृति की उपेक्षा ही नहीं हुई बरन् एक समय का जब कि पारश्चात्य सभ्यता के ये भक्त-मुक्त उसका उपेक्षा करते थे। अपनी भाषा में बोधना उनके लिये धारण को अविच्छिन्न तथा अतन्म्य बनाना

१ रंगभूमि (भाग १) पृष्ठ ११६

२ रंगभूमि—पृष्ठ २८१

३ वही (भाषण २) पृष्ठ ८४

४ सेवासदन—पृष्ठ १६६

संश्लेषी-राज्य में भारतीय जैनधर्मों की बसा तथा वैदिकों के जीवन पर कायाकल्प में बिरदार से लिना गया है। जिस राज्य में राजनैतिक वैदिकों को ऐसे स्थानों पर रखा जाता हो तो उसे क्या उम्भ कहा जा सकेगा?—

'जम्हें ईरवर के लिए हुए बायु और प्रकाश के मुक्तिम से बर्तन होते ने। मनुष्य के रणे हुए संसार में मनुष्यत्व की कितनी इत्या हो सकती है, इसका प्रथम प्रयास सामने बा। भोजन ऐसा विस्तार बा जिसे राज्य कृत भी सुंपकर छोड़ देते। बरन ऐसे जिन्हें कोई मिचारी भी पैरों से ठुकरा देवा और परिग्रम इत्या करना पड़ता बा कितना बस भी न कर सक। जेन शासन का विधान नहीं प्राथमिक व्यवसाय है, प्राथमिकों से व्यवस्था की काम सेने का बहाना बासा बार का निष्पटक साबन। दो समे रोज का काम सेकर, दो घाने का घाना विमाना एगा सम्याव है, जिसकी कहीं मदीर नहीं मिल सकती। प्राथि से प्रत्य एक साधन व्यापार मूखित व्यवसाय वैशाधिक और निम्ननीय है। अनीति की भी मकन यहाँ देन है, दुष्टता भी नहीं लोगों लगे लेगनी बसती है।'

मध्य में संश्लेषी-राज्य की नीव धार्तक की सिता पर बानी गई। शासन और शासकीय अधिकारियों का प्रथम और अन्तिम बहुरस्य देन में धार्तक का साया बालकर शोषण करना रहा। प्रथम धार्तक के कारण जनता को नामा सम्यावों तथा बिरतियों का सामना करना पड़ा। प्रेमचन्द ने इस धार्तकवाद के निष्पक्ष सैतनी बसाई क्योंकि जब तक जनता के हृदय से मम दूर नहीं होता वह दम्भ बनकर सम्याव को सहन करती बावनी। स्वाधीनता-प्राप्ति का प्रथम बाबरपक बरले हृदयों से संश्लेषी शासन के भय को बड़ से मिटाना बा। 'कर्ममूमि में मुदी के बोर्से द्वारा छठीय हरण की बटना पर अनीम साबता है—

'इस टके के सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुई? यह चोरे ठिपाड़ी रंगसैर की निम्नतम सेवी के मनुष्य होते हैं। इसका इत्या साहम कैसे हुआ? इतना कि नारय बराधीन है। यह मोब जानते हैं कि यहाँ के मोयों पर उनका धार्तक छाया हुआ है। यह जो मन्ब बाहें, करें कोँ नुँ नहीं कर सजता। यह धार्तक दूर करना होमा। इस पराधीनता की चञ्चोर का ठोड़ना होमा।'

'कर्ममूमि' में मि बगार्ड धार्तक की स्थापना के लिए सब मुय करने को तैयार है। साम्राज्यकारी भावनाओं ने मनुष्य का चिन्ता कलम हो सजता है। अन्ततः प्रत्यहरण बगार्ड के प्रबोधितिय शरतों से निवृत्ता है। बहो ग्याब सैतो बोर्से बीज नहीं होती—

१ 'नायाजल' पृष्ठ १८४

२. 'कर्ममूमि'—पृष्ठ १८४

‘हमारा साम्राज्य तभी तक दबेय रह सकता है, जब तक प्रजा पर हमारा प्रार्थक शासन रहे ।... अगर साम्राज्य को रखना ही हमारे जीवन का उद्देश्य है, तो व्यक्तिगत भावों और विचारों का यहाँ कोई प्रसिद्ध नहीं । साम्राज्य के लिये हम बड़े बड़े कुख्यात का उद्योग करते हैं, बड़ी से बड़ी उपस्थाएँ कर सकते हैं । हमें अपना राज्य प्रायः ही भी प्रिय है, और जिस व्यक्ति से हम प्रति की श्रेष्ठता की संका हो उसे हम कुशल मानना चाहते हैं, उसका नाश कर देना चाहते हैं उसके साथ किसी भी रिश्ता सहानुभूति नहीं तक कि स्वयं का व्यवहार भी नहीं कर सकते ।’<sup>१</sup>

अपने स्वार्थ के लिये धर्मों ने सब कुछ किया । ‘काबाकण’ में तुलसीदास मनोरमा से कहता है—

“इस उदारता और सम्मनता नाम की भी लो होनी बस अपने मतलब के मार है ये । इनका बर्म इनकी राजनीति इनका न्याय इनकी सम्मता केवल एक शब्द में आ जाती है, और वह शब्द है—‘स्वार्थ’ ।”<sup>२</sup>

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के द्वारा जो बड़े स्पष्ट और बेताब ईश से स्वार्थ के मुक्त से प्रेमचन्द कहता है । ईपरीयट म जाहे जिस पार्टी का सामन रहा हो सभी का प्रयत्न भारत में अपना साम्राज्य-स्थापन और रक्षा ही रहा । सत्ताशक्त पार्टी ने जब-जब प्रत्याचार किये तब-तब अन्य पार्टी ने मात्र विरोध को प्रकट बिरोध किया । इस प्रकार भारतीयों को भुलाया दिया गया । ब्रिटिश साम्राज्य-वाद की निर्मूल्यता का तथा उसकी नीति का पर्याप्त करने से प्रेमचन्द नहीं चूके हैं—

‘अंधे-जाति भारत को धनदात नाम तक अपने साम्राज्य का प्रकृ बनावे रखना चाहती है । अंधे-जाति हो या तिबरन रेडिकल हो या सेक्टर, नेशनलिस्ट हो या सोशलिस्ट इस विषय में सभी एक ही धारणा का पालन करते हैं... । प्राथमिक स्वयं करने की वस्तु नहीं है ।... अंधे-जाति कभी स्वयं के लिए, उच्च सिद्धांतों पर प्राथ होने के लिये प्रसिद्ध नहीं रही । सबके सब साम्राज्यवादी हैं । अन्तर केवल उस नीति में है, जो मित्र-मित्र बल इस जाति पर प्राथित्य बन्धने रखने के लिए प्रकृत करते हैं । कोई बठोर शासन का बचावक है । कोई सहानुभूति का कोई विद्वान-बुद्धि बाधो से काम निकालने का । बस वास्तव में नीति कोई नहीं है, केवल उद्देश्य है, यह यह कि सर्वोपरि भारतीयों पर हमारा प्राथित्य उत्तरांतर गुरुक हा ।’<sup>३</sup>

१ ‘रामभूमि’ ( भाग २ ) पृष्ठ २०

२ अन्धकार—पृ० २१२ २११

३ ‘रामभूमि’ ( भाग २ ) पृष्ठ १७६



“हमारा प्रथम और अन्तिम उद्देश्य शासन करना है।”

मि० कर्माच के उपर्युक्त शब्द अंग्रेजी राज्य के आज स्वयं को सामने रखते हैं। प्रेमचंद इस राज्य की मिटाया चाहते थे क्योंकि उसका अस्तित्व अन्धकार पर था। स्वयं का उपहास करता हुआ प्रमुखांक पुरवास से कहता है—

‘सरकार यहाँ स्वयं करने नहीं चाही है, मारि राज्य करने चाही है। स्वयं करने से उसे कुछ मिसता है? कोई समय वह या जब स्वयं को राज्य की बुनि याह समझ जाता था। अब वह जमाना नहीं है। अब व्यापार का राज्य है और जो इस राज्य को खोकार न करे, उसके सिने ठारों का निशाना मारनेवासी ठारों है। तुम क्या कर सकते हा? बीबानी में मुकदमा बायर करोयै? यहाँ भी सर कार ही के नीकर-बाकर स्वयं वह पर बैठे हुए है।’

अन्धकारी शासक बमन का उद्योग होता है। वह राष्ट्रीय भावनाओं जन-जागृताओं राष्ट्रीय साहित्य प्रादि को कुचलने के पदार्थ रखता है। अंग्रेजी-शासन ने जितने बमन बरक असायै इनके उदाहरण अन्धकार देखने को नहीं मिलेंगे। प्रेमचंद भारतीय जनता को बमन का खोटा से सामना करने योग्य बनाते हैं। उनमें आत्म-सम्मान साहस तथा देशप्रेम के भावों का प्रसार करते हैं। प्रमुखांक के मुख से रक्तपात से डरनेवालों की अज्ञानता पर अंग करते हुए अन्धकारि मिखा है—

‘बह ठरु हम खून से डरते रहेंगे हमारे स्वयं भी हमारे पास घाने से डरते रहेंगे। सनकी रखा तो खून ही स होगी। राजनीति का खेन समरखेव से कम मयाबह नहीं है। उसमें उठकर रक्तपात से डरना अज्ञानता है।’

इस प्रकार प्रेमचंद ने साहित्य के द्वारा देश और जाति में नयी खेतना उत्पन्न की स्वाधीनता-संग्राम को बायी दी और जनता के एक बहुत बड़े तथा महत्वपूर्ण भाग को स्वतन्त्रता के खस्य से परिचित कराया। अन्धकार साहित्य स्वतन्त्रता का सत्रण प्रहरी है। भारत के स्वाधीनता व खौर का खरोहर है। जिन देश न प्रेमचंद की सौजन्य उत्पन्न किए हैं वह अभी भी पथ भ्रष्ट नहीं हो सगना। वह खरीब एक अत्यन्तक बाताबरख में अज्ञान-अज्ञानता।

प्रेमचंद का साहित्य अन्धकार भारत की स्वाधीनता का ही साहित्य नहीं है बरन् संसार की समस्त कीर्ति दुनी और खोपित जनता का साहित्य है। अन्धकार खोपित या अज्ञानता के देश इनके साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि प्रेमचंद न अज्ञानता भावना को कमो भी खोर नहीं भी खोपित कर से नहीं देगा। जन-जागृता होने के कारण व मानव मात्र के है और अन्धकार मानवता को निरखय ही उनसे खोपित व नईव आत्मबल मिलेगा।

१ 'अज्ञानता ( भाग १ ) पृ० १४२

२. " ( २ ) ११०-११

३ " ( १ ) ४२२

## रियासतों और देशी नरेशों की समस्या

प्रेमचंद ने रियासतों और देशी नरेशों की उत्कण्ठीय स्थिति और उसके जटिल पर 'रंगभूमि' और 'आयाकल्प' में विस्तार से जस्सेब किया है।

भारतीय रियासतों स्वतंत्रता-प्राप्ति में एक बड़ी रुकावट थीं। इन प्रदेशों की जनता की स्थिति ब्रिटिश-भारत से भी गई-मुकरी रही। राजाओं में नैतिक बल बिगड़ना न था वे ब्रिटिश-शासकों के संकेतों पर नाचने वाले मात्र कठमुतली थे। इन राजाओं-महाराजाओं ने ब्रिटिश-शासन को चाकरी करके साम्राज्यवाद की बाड़ों को मजबूत किया और सामंत-प्रथा को पुनर्जीवित किया। एक समय था जबकि राजा ईश्वर का अक्षर माना जाता था। जनता उसका सम्मान करती थी किन्तु 'राजावाद' में जो मूल बोध थे वे धीरे धीरे छापने जाएं और राजसत्ता दूषित हो गयी। राजाओं के नैतिक आधार गिर गए, जनता के हृदय में उनके प्रति घृणा की भावना घिड़ गई। राजा-महाराजाओं और उनके हीजायों-सामंतों के अत्याचार और हमन के विरुद्ध जनता उठ पड़ी हुई। लेकिन इन रियासतों की जनता की मुक्ति का प्रश्न भारतीय-स्वाधीनता प्राप्ति का ही एक अंग था। जब तक भारत से ब्रिटिश-साम्राज्य का अंत नहीं होता इन रियासतों में भी कोई सीमित अल्प न तो संभव ही हो सकती थी और न स्थायी हो। पर इन प्रदेशों की जनता में भी स्वाधीनता के आशों का प्रसार करना आवश्यक था। नेताओं का भी यह कर्तव्य था कि वह इन रियासतों के मनमानी शासन के विरुद्ध आवाज उठाएँ और इन प्रदेशों की जनता का साथ दें उनके सामर्थ्यों की बल पहुँचाएँ तथा राजसत्ता को निरबन्धना प्रमाणित करें, जिससे एक स्वतंत्र जनवादी भारत का निर्माण हो सके।

प्रेमचंद ने साम्राज्य साम्राज्यवाद और उसको बच पहुँचाने वाली शक्तियों से जोड़ा किया। सामंती-वर्तों से उन्होंने कमी समझीता नहीं किया। व्यक्तिओं के प्रति बूझा उत्पन्न व करना एक दक्षय बाध है और किसी प्रखाली से समझीता करना निताय अक्षय। प्रेमचंद ने राजसत्ता की प्रखाली से कमी समझीता नहीं किया 'आयाकल्प' और 'रंगभूमि' के पत्रों पर राजसत्ता पर लिखी की अंश नहीं

बनेगी। प्रेमचंद ने उस व्यवस्था के प्रति असंतोष व्यक्त किया है तथा उसमें काने काने बाने बाने लोगों को बड़ ही पयार्ब डंब से प्रस्तुत किया है। यही नहीं बल्किने राजा-महापदार्थों के बिचल में भी किसी तरह का पक्षपात नहीं किया। इनकी दुर्बलताओं का इतना बन्ध धीरे धीरे व्यंग्यात्मक बिचल सम्यक मिलना दुःख है।

राजदत्ता से सम्बन्धित एक बटना स्वयं प्रेमचंद के जीवन में भी घटी है। शिवदात्री बेबी ने 'प्रेमचंद घर में' में इसका उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है— 'सन् २४ का जमाना था। माप लखनऊ में थे। रंगभूमि खप रही थी। मनबर रियासत से राजा साहब की बिट्टी लेकर पाँच-छः लज्जन माये। राजा साहब ने माये पाठ खूने के लिए बुलाया था। राजा साहब उपन्यास-कहानियों के लीखीन थे। राजा साहब ने ४००) प्रतिमास नबर मोटर बैपसा देने की लिखा था। उपरिचार बुलाया था। उन महाशयों को यह कहकर कि मैं बहुत बानी बान्नी हूँ इसी बन्ध से मैंने सरकारी नौकरी छोड़ी है, राजा साहब को एक शत लिखा 'मैं मापको सम्बन्ध देता हूँ कि मापने मुझे बाब किया। मैंने अपना जीवन साहित्य-सेवा के लिए जमा दिया है। मैं जो कुछ लिखता हूँ उसे माप पढ़ते हैं, इनके लिए मापको नबरबाब देता हूँ। माप जो पर मुझे दे रहे हैं मैं उसके बौम्य नहीं हूँ। मैं इतने में ही अपना लीमाय लभभूता हूँ कि माप मेरे लिखे को ध्यान से पढ़ते हैं। धरर हा लघ ली मापके रचन के लिए कमी बान्नी। एक साहित्य-बेबी, बन्धन राय।'

प्रेमचंद जानते थे कि रियासतों का बाताबरल किया हुआ इतिहास है। वहाँ बाकर धरने पील ली बिचल बाने है। कर्णिक मूलभूत लीप ली बल व्यवस्था का है, मन् उन्हीने न लल व्यवस्था को मुधारने का बा बाधर्ल बाने का प्रबल किया धीरे न ललसे बमभूता करने का। परि राजाओं के प्रति प्रेमचंद कटूता उत्पन्न न कर सके ली यह उनके धानकताबारी जीवन-दर्शन के कारण है। स्पष्टिचितेय के प्रति कटूता उत्पन्न न कर उन्हीने उस व्यवस्था के प्रति ही बिरोप प्रकट किया है।

बेबी-बरेलियों धीरे रियासतों पर प्रेमचंद के बिबाधों को बागने के लिए 'रंगभूमि ( १९२४ ) धीरे 'क्याकन ( १९२८ ) में बिबिध रियासतों धीरे बेबी बरेलियों के जीवन पर बुधि दासना बाबरवक है। रंगभूमि न कुँपर भरलललह राजी बाहूनी धीरे बिनबिबिद बनारस से लंबिबि है। म्युनिसिपैलिटी के प्रबान कुँबर भरलललह के बामार महेन्द्र कुमार सिद्ध कर्णारी के राजा है। इनु उनकी पली है। बनारस के प्रतिरिक्त राजभूताने की रियासत उरमपुर-उरबंजनवर का ली बिस्तार से बिचल किया गया है। यहाँ उरपपुर के महापदा धीरे लीबान उररार

नीलकण्ठसिंह प्रमुख हैं। इन दोनों प्रवेशों का सम्बन्ध जिना हाकिम धीर जिनाजीत मिस्टर बोजक विनियम बमार्क से पाठा है। उपयुक्त पात्र रिमासतों धीर हैती नरेशों की मन्त्रालय स्थिति का बिना उपस्थित कर देते हैं। इसी प्रकार 'कायाकल्प' में बबरीठपुर की मन्त्रारानी देवप्रिया धीर वहाँ के शीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह जिनके तथा रानी साहब के बचपने देवर धीर नए राजा साहब ठाकुर विशालसिंह हैं जिनके बगुमति रामप्रिया धीर रोहिण्यो नाम की तीन राधियाँ हैं धीर जो संतान-कायना के कारण पुनोबन्ध मनोरमा से चौबी शारी करते हैं। बिच प्रकार 'रंगमूमि' में प्रवेश हुनकाम मिस्टर बमार्क है उसी प्रकार कायाकल्प में जिने के मैजिस्ट्रेट मि० जिस धीर कीर के कप्तान मि० सिम है। रिमासती बन्धनारस में मने बाबनी भी किस प्रकार बियाह करते हैं यह बताने के लिए 'रंगमूमि' में बिनय धीर 'काया कल्प' में बन्धन की योजना हुई है।

इन सब राजाओं के मैजिक बल का बड़ा ही मयार्क धीर ब्यव्यात्मक बिचल प्रेमबन्ध ने किया है। उनका अपना कोई ब्यक्तित्व नहीं है। प्रेमबन्ध ने बताया है कि कायरा का दूसरा नाम 'राजा' है। राजा से अनिप्राय हैती-नरेशों से ही जो मय के साक्षात् प्रवृत्त बने हुए हैं।

बगारी के राजा महेन्द्रकुमार सिंह अपनी पत्नी इंदु से जो घनेक पद्धतियों पर बर्जासाय करते हैं वह उनके वास्तविक रूप को छानने का देता है। सेवा-समि तियों से सद्गुणमुक्ति रखता भी उनके लिए प्रापसिजनक है। भास्व-स्वाधीनता बीधी कोई भीरु जनमें नहीं पाई जाती। गुम्हारी समझ में धीर मैरी समझ में बड़ा अन्तर है। यदि मैं बोज का प्रयास न होता यदि मैं शासन का एक अंग न होता धरम भी रिवासत का स्वामी न होता तो स्वभावतया से प्रत्येक सार्वजनिक-कार्य में भाग लेता। वर्तमान स्थिति में मैरा किसी संस्था में भाग लेता इस बात का प्रमाण समझ बायना कि राज्याधिकारियों को जससे सद्गुणमुक्ति है। मैं यह प्रालि नहो कैमाना चाहता। १

समिति के सेवक गढ़वाल जाने के लिए स्टेशन पर एकत्र हो खड़े थे। इंदु अपने पिता महेन्द्रकुमार सिंह की कायरा की पर्याप्त मत्सना करके बिनय से मिलने धीर समिति के धैरकों को बिया देने स्टेशन जाती है। उसके जाने पर राजा साहब सोचने लगे इसको बच भी बिन्धा नहीं कि हुनकाम के कारणों तक यह बात पहुँचेगी तो वह मुझे क्या कहेंगे। समाचार-पत्रों के संवाददाता यह गुच्छत धरमरय ही मिचेंगे धीर उपस्थित महिलाओं में बगारी की राजी का नाम मोटे धरमरों में लिखा हुआ नजर आया। २

१ 'रंगमूमि' (पात्र १) पृ० २३२

२ 'रंगमूमि' (माय १) पृ० २३५

भाये जब उनका स्वाभिमान (7) बाधत होता है तो वे स्वयं स्टेसन पहुँचते हैं और इंदु से अपनी पूर्ण बुद्धिमत्ता भी निःसंकोच स्वीकार करते हैं, इंदु इतना धर्मि स्वास्य मत करो।..... तुम्हारी यह बात मेरे मन में बैठ गई कि तुम्हारा का विश्वास पात्र बने रहने के लिए अपनी स्वाधीनता का बलिदान क्यों कर्छे हो नेकनाम खाना धरणी बात है, किन्तु नकनामी के लिए लक्ष्मी बाठों में बरबाद अपनी आत्मा को हत्या करता है।<sup>१</sup> पर जब उनके स्टेसन जाने का समाचार ईशिक पत्र में प्रालोचना सहित प्रकाशित हुआ तब वह धारा स्वाभिमान धूमिल हो गया। कस्मिरनर छाह्व की संविहात्मक वृत्ति से वे निश्चित हो उठे। तारी रण इसी विधा में दूरे रहे और प्रातःकाल जब दो-चार मित्र उनके मिलने आए तब उसी समाचार की खर्चा हो उठी। एक साहब बोले, "मैं कस्मिरनर से मिलने गया था तो वह इसी मीठ को पत्र रखा था और खूब-खूबकर जयोग पर बैठ पटकता था।<sup>२</sup> इसी पर राजा महेन्द्रप्रसाद सिंह के होठ और भी बड़ बड़। वे सीधे बरबाद हुए कस्मिरनर के बँबले पर पहुँचे। वहाँ धरणी के बहने पर एक घंटे प्रतीक्षा करते रहे और ऐसा कह कर कि मिस्टर जान सेवक को पाँडेपुर की जमीन दिखाने के लिए जगता का विश्वास-पात्र बनने का डॉन रखा था कस्मिरनर को प्रत्यक्ष करने का प्रयत्न किया। यही नहीं मि० सेवक तक से उन्हें डर है क्योंकि मिस्टर सेवक और मि० क्लार्क के सम्बन्ध दली है। इस कारण वे अनुचित ईश से भी मि० सेवक की सहायता करने को बाधत है। तुम जानती हो मि० सेवक की यहाँ के अधिकारियों से मित्रता चाह-रसम है। मिस्टर क्लार्क तो उनके द्वार के दरवान बने हुए हैं। धरणी में उनकी इतनी सेवा न कर सका तो तुम्हारा का विश्वास मुझ पर से उठ जायगा।<sup>३</sup>

इस पर इंदुमती की टिप्पणी उनके धारे अधिकारों के योग्यता को उचारकर रख देती है, "मैं नहीं जानती कि प्रयाग की बरा इतनी योग्यता होती है।<sup>४</sup> प्रेमचंद जाने बातकर प्रयाग की बराब स्थिति का विश्लेषण और विस्तार से करते हुए लिखते हैं, "प्रयाग केवल राज्याधिकारियों के हाथ का विमोहा है। उनको इच्छा है जो चाहे करे, उनकी इच्छा के अतिकूल कुछ नहीं कर सकता। वह संस्था किन्तु है, जिसका मुख्य केवल दूरी संस्थाओं के सहयोग पर विरत है।<sup>५</sup> स्वयं महेन्द्रप्रसाद सिंह के मूल से राजधर्म की कागुल्यता और विषयता का बर्धन करवाते हुए प्रेमचंद लिखते हैं, "तुम्हें मान्य नहीं इन अर्थिन तुम्हारा के दिग्गज अधिकार

१	वही	, २५०
२	वही	, २८९
३	रंगमूमि (भाग १)	२५७
४		२५७
५		२५७

होते हैं। मो जाहूँ तो इसे नीकर रख नूँ, मगर इसकी एक शिकायत में मेरी याचक बाक में मिल जायगी। ऊपरबाने हाकिम इसके सिमापत मेरी एक भी न सुनेगे। रईसों को इतना स्वतन्त्रता भी नहीं जो एक साधारण किसान को है। हम सब इनक हाकों के विनीने हैं, जब जाहूँ, जमीन पर पटक कर बुर-बुर कर दें। <sup>१</sup> और इस वयनीय बीनता पर इंदु अपने मन में सोचती है बच्चे हीषा से भी इनका न डरते होंगे। <sup>२</sup> राजाघों की भवदस्त स्थिति पर इनम सुन्दर ध्वय्य और क्या हो सकता है।

इसी प्रकार राजपूताने की रियासत उदयपुर-जसमन्तनगर का भी बर्खन 'रंग भूमि में भिमता है। रेजीडेंट का दखरवा क्रिस्ता रहता है, इस पर शोबान सरकार नीलकंठ सिंह विनय से कहते हैं, 'रेजीडेंट साहब को इच्छा के बिन्दु हम दिनका एक नहो हिमा सकते।' <sup>३</sup> महाराजा अपने को ईरबर का प्रबठार समझते हैं पर वास्तव में बेला जाय तो वे भय के प्रबठार हैं। विनय से हुषा उनका वास्तविकता उनकी कामरवा और नैतिक पतन पर मस्ती-भाँति प्रकाश आल देता है। 'तिब-तिब ! बेटा तुम राजनीति की बातें नहीं जानते। यहाँ एक कीरो भी छोड़ा क्या और रियासत पर बख मिरा। सरकार कहेंगी मेम को न जाने किस नियम से क्षिपाए हुए हैं, कदाचित् उस पर मोहित है। तभी तो पहले बंड का स्वांग भर कर विरोधियों को छोड़ देता है। तिब-तिब ! रियासत भूल में मिल जायगी रसातल को जली जायगी। कोई न पूछेगा कि यह बख सच है या मूठ। कहीं इस पर बिचार न होगा। हरि हरि ! हमारे बटा साधारण प्रपठारियों से भी नई मोठी है। जाहूँ तो सफरई देने का प्रबठार लिया जाता है, न्यायालय में उन पर कोई बाध लगाई जाती है, और उसी घाट के प्रमुठार उन्हें बंड दिया जाता है। हमसे कौन सफरई लेता है, हमारे लिए कौन-सा न्यायालय है। हरि हरि ! हमारे लिए न कोई कानून है जो प्रपठार जाहा लगा दिया। जो बंड बाड़ा वे दिया। न कहीं प्रपील है, न ठरियाब। राजे विपय प्रेमी कहमाते हैं ही उन पर यह शोपारोपस होते क्रिस्तनी बेर सगती है। क्यूँ जायगा तुमने क्साक को प्रति क्यबती मेम को अपने रनिबास में क्षिपा मिया और भूट-भूट लड़ा दिया कि वह नुम हो गई। हरि-हरि ! तिब-तिब ! तुमता हूँ, बड़ी क्यबती स्त्री है, बरि क्य दूकड़ा प्रवठार है। बेटा इस प्रबठार में यह कर्तक न सयाधो। बुडा कस्या भी हमें ऐसे कुसिस्त शोवों से नहीं बचा सकती। मरठूर है, राजा सोम रसाति का केवन करते हैं, इसीलिए बीबन पर्यन्त हूड-मुड रहते हैं। तिब-तिब ! यह राज्य नहीं है, अपने कर्मों का बंड है। नकट्य भिये बुरे हवाल। तिब तिब !

१	पृ० २१४
२	पृ० २१४
३	पृ० २११

अब कुछ नहीं हो सकता। सी-पचास निर्दोष मनुष्यों का जेब में पड़ा रहना कोई असाधारण बात नहीं। वहाँ जो ठो बोजन बरफ मिलता है ही।...

जिनप को घाब राजा से पूछा हो गई। सोचा इतना नैतिक पठन इतनी कायरता। यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है।<sup>१</sup>

धीरे उभर कुँवर भरतानिहू भी अचानक होकर अपनी रियासत कोर्ट-मार्क-वार्ड से के सिपुर्ब कर बैठे हैं। इस प्रकार प्रेमचन्द ने इन राजा-महाराजों के व्यक्तित्व को बड़े ही अपार्ष डंग से चित्रित किया है, उस पर कोई आश्चर्य नहीं आता।

रियासत पर नास्तिकीक शासन पोलिटिकल एजेंट का रहता है, राजा उसी के संकेत पर नाचता है। उसको प्रसन्न करने के लिए वह अपने व्यक्तित्व का सर्वनाश ठा करता ही है प्रजा पर अत्याचार करने में भी नहीं चूकता। मि० क्लार्क पोलिटिकल एजेंट के घर का महत्व प्रतिपादित करते हुए सोफिया से कहते हैं 'हाँ मैं एक रियासत का पोलिटिकल एजेंट बना दिया जाऊँगा। यह पर बड़े मने का है। राजा तो केवल नाम के लिए होता है, साथ प्रकृतिकर ही एजेंट के हाथों में रहता है।'<sup>२</sup> "उसका अधिकार सर्वत्र यहाँ तक कि राजा के मृत्यु के अन्तर भी होता है।... वह राजा के पालने सोने धारण करने का समन तक नियत कर सकता है। राजा किससे मिले जिससे डूर रहे, किसका आश्रय करे, किसकी अज्ञानता करे ये सब बातें एजेंट के अधिकार हैं। वह यहाँ तक निर्णय करता है कि राजा की मेज पर कौन-कौन से प्यासे धारेंगे राजा के लिए बैठे और किसने कपड़ों की बकरत है यहाँ तक कि वह राजा के विवाह का भी निश्चय करता है। वह यों समझे कि वह रियासत का लुटा होता है।"<sup>३</sup>

ईशु के दुःखबहार पर सोफिया के मुख से प्रेमचन्द कहलवाते हैं— 'इसे अपनी रियासत का अर्थ है, मैं दिखा दूँगी कि वह नृत्य का स्वयं प्रकाश नहीं, चाँद की परमोष्ण ज्योति है। इसे मान्य हो जायगा कि राजा धीरे धीरे सब के सब शासनाधिकारियों के हाथ के बिलोने है।'<sup>४</sup> मूरदास पर अत्याचार किये जाने के निश्चय पर सोफिया मि० क्लार्क को इस बात का परिचय देती है कि राजा साहब इसका बोर विरोध करेंगे इस पर मि० क्लार्क फिर डंग से उत्तर देने हैं, "बुढ़। उनमें इतना नैतिक साहस नहीं। वह जो कुछ करते हैं, हमारा स्या देख कर सकते हैं। इस बजह से उन्हें कभी अतृप्तता नहीं होगी। हाँ उनमें यह विरोध कुछ

१ रंगभूमि (भाग २)—पृ० २ ७-२०८ २०९

२ रंगभूमि (भाग १)—पृ० ४१०

३ वही —पृ० ४१४

४ अ. —पृ० १४१

कि वह हमारे प्रस्तावों का ब्याख़र करके धपता काम बना लेते हैं और उन्हें बनता के सामने ऐसी बुराता से उपस्थित करते हैं कि लोगों की दृष्टि में उनका सम्मान बढ़ जाता है ।

कामाकम्प में भी प्रेमचंद राजा बिठारसिंह का व्यक्तिगत इसी रंग में रंग कर चित्रित करते हैं । बिठारसिंह जिसे के मंत्रिस्टुट मि० जिम से जब मिलने जाते हैं, तब उसके साथ किंच प्रकार का व्यवहार होता है, बोड़ी बैर तक तो राजा साहब बाय में टहनते रहे । फिर मोटर पर जा बैठे और बंटे भर इधर उधर घूमते रहे । बने वह सीट कर धाये तो मामूम हुआ धमी साहब नहीं धाए । फिर सीटे इसी तरह बंटे बंटे भर के बार वह टीम बार धाये मगर साहब बहादुर धमी तक न सीटे थे ।

सोचने लगे इतनी रात लये धरम मुमाकात हो भी गई तो बातचीत करण का पीका कड़ी । तरण के लगे में घूर होया । धाते ही धाते धीने जला जायगा । मगर कम से कम मुझे बेबाकर इतना तो समझ जायगा कि वह बेचारे धमी तक बड़े हैं । शायर दया धा बाय । धीर जिम के धाने पर—

जिम— 'धो ! ईम राजा धमी निकल बाघो । तुम भी बागी है । तुम बागी की सिफारिश करता है, बागी को पताइ पैठा है । सरकार का बोस्त बनना है । धमी निकल बाघो । राजा धीर रीसत सब एक है । हम किसी का मरोसा नहीं करता । हमको धपने बोर का मरोसा है । राजा का काम बागियों को पकड़वाना उसका पठा मगाना है । उनका सिफारिश करना नहीं । धमी निकल बाघो ।

यह कह कर राजा साहब की घोर धमका । .. राजा बीम भाव से बोले—

'साहब इतना बुझ न कीजिए । इसका बरा भी क्याम न कीजियेया कि मैं शाय से धन तक धापके बरबाजे पर बड़ा हूँ ? कहिए तो धापके पैरों पहुँ । बो कहिए, करने को हाजिर हूँ । मेरी धर्म कमूल कीजिये ।

जिम— 'धो ईमि' । बफ-बफ मत करो घूमर धमी निकल बाघो नहीं तो हम ठोकर मारेया । ध धाने प्रेमचंद ने बिठारसिंह का जो ज़ोच धीर मि० जिम से उनका मस्त-मुझ कथाया है उसका कोई मूल्य नहीं क्योंकि जिम उस समय तरण में बुन था ।

बिठारसिंह के राजकी के उत्सव में धामिग होने के लिए दूर-दूर से राजा-महाराजा धाये । प्रेमचंद उनके कैम्य का बखन करते हुए लिखते हैं, "बड़े-बड़े मरोठ धाये थे । कोई बुने हुए बरबारियों के साथ कोई साब-मरकर लिये हुए ।

१ रंगभूमि ( भाग १ )—पृ १४७-१४८

२ कामाकम्प—पृ २५२६



कहीं ऊंची बहियों की बहार थी, तो कहीं केसरिये बान की। काई रत्नचट्टि  
 भाभूपण पहने, कोई धँडेकी सूट से सँस कोई इतना विज्ञान कि विज्ञानों में सिरो-  
 मण्डि कोई इतना मूर्ख कि मूर्ख जँडली की शोभा। कोई २ पटि स्नान करता था तो  
 कोई साठ बँटे पूजा। कोई दो बजे रात को सोकर चला था कोई दो बजे दिन  
 को। रात-दिन तबने टनकते रहते थे। किठन ही महाशय ऐसे भी थे किनका  
 दिन धँडेको-कम्प का बन्दर लभाने म ही करता था। दो-चार सम्जन प्रजावादी  
 भी थे। ... विज्ञान का मूर्ख राजसत्ता के स्वाम्य या लोकसत्ता के मकस सची  
 अपने को ईश्वर का यन्तार समझते थे सची यस्कर के गये में सत्त्वामे सची  
 विनासिता में डूबे हुए, एक भी ऐसा नहीं जिसमें बरिष-बन हो सिद्धान्त-प्रेम  
 हो मर्पाश-शक्ति हा। <sup>१</sup> उसी कँम्प के राजाघों का बिषय करते हुए प्रेमचन्द  
 लिखते हैं— 'राजा रईस अपनी बासनाघों के सिवा घोर किसी के मुसाभ नहीं  
 होते। <sup>२</sup> इस प्रकार राजाघा की कापुस्वता तथा उनके विनासी जीवन का बिषय  
 'रंगमूर्ति' और 'कायाकल्प' में स्पष्ट रूप में किया गया है। इन राजाघा और  
 रियासतों के परिचित के पीछे जो कारण हैं उनका स्पष्टीकरण इन्डु के मुख से  
 प्रेमचन्द करवाते हैं हमारे पूर्वजों ने धँडेको की उस समय शास्त्र-रक्षा की जो  
 जब धनकी बावों के सामे पड़े हुए थे। सरकार उन धँडेको को फिटा नहीं  
 सकती। <sup>३</sup> राजाघों ने जो देशप्रेमी कार्य तथा देश के प्रति जो विरक्तान्याय  
 किया उसके फलस्वरूप 'बलशौरा' के रूप में उन्हें रियासतें दी गई।

राजाघों के बिषय तक ही प्रेमचन्द इस समस्या को स्पष्ट नहीं करते बरन्  
 और भीतर रियासतों के शासन-प्रबन्ध पर भी प्रकाश डालते हैं। वास्तव में रिया-  
 सतों के शासन-प्रबन्ध की दृष्टि प्रचाली बताना ही प्रेमचन्द का मुख्य उद्देश्य है।  
 राजाघों का तो वे बिषय करके ही छोड़ देते हैं उनके प्रति पूछा का कोई भाव  
 पैश नहीं होने देते। रियासती प्रबन्ध पर उन्होंने जगह-जगह जिस प्रतिरंजना का  
 फट्टा का परिचय दिया है बहु सत्त सम्बन्धा की प्रसारता व निरर्बन्धा का  
 परिचायक है। अक्षरगतपर के शासन प्रबन्ध पर डाफू कीरपान विनय के प्ररन  
 पर टिप्पणी करता है—

कीरपान— ... ये लोग प्रजा को दोनों हाथों से मूट रहे हैं। इनमें न बचा  
 है, न बर्भ। है हमारे ही मार्गदर्श पर हमारी सरकार पर धुरी चमाते हैं। बिनी  
 ने जरा साफ कपड़ पहने और ये लोग उसके तिर हुए। जिसे घूट न बीजिए,  
 बड़ी धानना दुरमन है। चाही बीजिये डाके शनिये परों में माय लपारये गयीं

१ वही —पृ० १३४

२ —पृ० १४६

३ रंगमूर्ति (भाग १)—पृ० ३०१

का गला काटिये कोई पाप से न बोलेंवा । बस कर्मचारियों की मुद्रियाँ धर्म करते रहिए । बिन-ब्याड़े बूग कीबिए, पर पुलिस की पूजा कर बोलिए, घाप बचाए छूट जायेंगे घापके बबसे कोई बेकसूर फौसी पर सटका दिया जायगा । कोई फरिबार नहीं सुगता । कौन सुने सभी एक ही बैनी के बट्टे-बट्टे हैं । यही समय बोलिए कि हिंसक बंशुओं का एक मोस है, सबके सब मिल कर शिकार करते हैं, और मिल-जुम कर घाते हैं ।”<sup>१</sup>

रियासत का बाकिया बिनय से कहता है— ‘तब है, वह छान भर तक नहीं मिलती भक्ति यहाँ जो जितने ही ठेके ब्योहरे पर है उसका पेट भी उठमा ही बड़ा है ।’<sup>२</sup>

म्यादासों पर ब्यंभ्य करता हुआ बीरपाम बिनय से कहता है, ‘यहाँ के म्यादासों से म्याद की धासा रखना बिद्विया से बूम निकामना है । हम सब के सब इन्हीं धरामतों के मारे हुए हैं । मैं कोई धपराब नहीं किया था मैं धपने याब का मुस्तिपा था किन्तु मेरी छारी धामपराब केमस इसीबिए ज्यत कर की गई कि मैंने एक धसहाय मुबती का इसाकेदार के हाथों से बचाया था । ... बस इसाकेदार जसो बिन से मेरा जानी बुरमन हो गया । मुझ पर बोटी का धमिबोम लगाकर कैद कर दिया । धरामत धंधी भी वैसे इसाकेदार ने कहा वैसे म्यादाबीरा ने किया । ऐसी धरामतों से घाप ब्यंभ्य की धारा रखते हैं ।’<sup>३</sup>

बड़े-बड़े धससतों पर ब्यंभ्य करते हुए बीरपाम बिनय से कहता है कि ‘रियासत घाप वैसे धर्मपरययध निर्भीक धौर स्वाभीन पुस्य के रहने योग्य बपइ नहीं है । वहाँ छधी का निबाह है, जो पहले बने का बाब कपटी पारबंदी धौर बुरालता हो धपमा धम निकालने के सिवे बुरे से बुरा काम करने से भी न हिंजके ।’<sup>४</sup>

बीरपाम ने वहाँ रियासत की स्थिति का बर्षन छीब डंग से धबदा ब्यंभ्य के छाप किया है, वहाँ छीबान बड़े धामकारिक डंग से साधन का बर्षन करते हैं रियासतों को घाप सरकार की मझसरा समझिने वहाँ सूर्य का भी मुब्र नहीं हो सकता । हम सब इस इरमसरा के बकरी ब्याबासरा हैं । हम किसी भी धेम रसपूर्य बृधि को इबर जठने न बेंगे कोई मनबसा ब्याब इबर कबम रखने का छाहस नहीं कर सकता । धमर ऐसा हो ता हम धपने पर के धमोम्य समझे जायें । इम्यरा रसीला बाबशाह, इध्यानुतार मनोबिनोद के सिवे कभी-कभी यहाँ पवार्य्य करता है । इरमसरा के छामे माम्य जस बिन बाग जाते हैं । धपने इस

- |                  |              |
|------------------|--------------|
| १ यही            | —पृ० ३०२ ३०३ |
| २ रंभूमि (भाग १) | —पृ० ३०४ ३०५ |
| ३ यही            | —पृ० ३१३ ३१४ |
| ४ यही            | —पृ ३१४      |

हरमसरा में बुस घाने का बुसाहस किया है, वह हमारे रसोले बाबसाह को एक भाँस नहीं भाटा और घाप घकेने नहीं है, घापके साब सभाब-सेबकों का एक जल्पा है। इस जल्पा के लम्बान्ब में भाँति-भाँति की संघरें हो रही हैं। नाबिरसाही बुबम है कि कितनी जस्ब हो सके यह जल्पा हरमसरा से दूर हटा रिया जाव। .. हम घापको घपने प्रेम-कुंज में घाप न सयाने देंगे। १

रियासतों का सन्बन्ध घण्डसतों की सनमानो पर निर्भर है। बीबाग साहब बहते हैं, सरदार की रसा में हम सनमानो कर बगुल करते हैं मनमाने कानून हैं मनमाने दंड लेते हैं कोई बूँ नहीं कर सकता। १ बिनपसिह के कपघास-बंड पर बाफ्टर बांगुती घबिघरियों की निर्कुलता पर कहते हैं, बहाँ का हाकिम सोग लुद पसिठ है। बरता है रियासन में स्वाधीन बिचारों का घसार हो बापना तो हम प्रय को बेंसे लूटेगा। रासा सगभर लबाकर बीटा रहता है उसका लीकर बाकर सनमाना राब करता है। २ घण्डसतों की सनमानो का एक घौर उराहराब बह घोपछा है बिसमें कहा गया है कि जसबतनगर एक लखाह के सिए घानी कर रिया जाव। इस घोपछा पर लोफिया का मठ रियासतों के प्रबन्ध की गुनी घालाघना करता है, "ऐसी ज्यारती रियासतों के सिधा घौर कहीं नहीं हो सकती।" ५

प्रेमबन्ध बताने हैं कि इन रियासतों का हासन-धबन्ध ग्याप पर नहीं घाठक पर निर्भर है। सरदार नीमकंड सिह बिनय से बहटा है.. 'उनके बिन से रियासन का भय जाता रहेवा घौर बब भय न र्हा तो घग्ग भी नहीं र्हा सकता। राग्ग-भ्यबस्या का घाचार स्याय नहीं भय है।" ५

रियासती घण्डसतों के सनमाने घत्याचारों का बर्जन कायाघल में भी बिस्तार से किया गया है। मनोरमा बाबबर से कर्नी है 'घभी एक घोप या जाव तो बर में दुम दबा कर घापने। उस बकन जबाग भी न लुलैनी। घवसे बरा घाँते पिलाहये वी हैसिए, डेरुद बमाता है या नहीं। घवसे तो बोसने की झिम्मत नहीं, बचारे बीनों को सनावे फिठें हैं। यह तो मरे को मारना हुआ। बडे बुकूमठ नहीं बहते। यह घोपी भी नहीं है। यह बैबठ मुखे घौर पिठ का तमासा है।" ५

१ रंगमुनि (भाग १)—पृ० ३१८ ३२

२ बही — ३२१

३ बही — ४२६

४ रंगमुनि (भाग २)—पृ० ९

५ बही — २०

६ कायाघल — पृ० १११

भारत राजाओं की बात धर कल्पना में ही सरय हो सकती है। प्रेमचन्द इस तथ्य से भक्ति-भावित परिचित से इसलिए उन्मुक्ति उस घादरा व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न नहीं किया। सम्य बरत जाने पर घादरा भी बरत जाते हैं। प्रेमचन्द लिखते हैं— धर बहु अमाना नहीं रहा जब राजे-रजों के नाम घादर से लिए जाते थे जनता को स्वयं ही जगमे भक्ति होती थी। वे दिन बिना हो गये। ऐस्वय-भक्ति प्राचीन काल की राज भक्ति का एक अंग थी। प्रजा धरने राजा बागीरदार, यहाँ तक कि धरने बमीदार पर सिर कट्य जाती थी। बहु सचमान्य नीति-सिद्धान्त का कि राजा भोज्य है, प्रजा भोग्य है। यही सृष्टि का नियम का सेक्यन धर राजा और प्रजा में भोज्य और भोग्य का सम्बन्ध नहीं है, जन-सेवक और सेव्य का सम्बन्ध है। धर धर किटी राजा की इज्जत है तो उसकी सेवा-प्रवृत्ति के कारण। धरया उसकी बसा बातों तसे बरी हुई जिज्ञा की-सी है।<sup>१</sup> फिर रियासतों की समस्या क्या है? प्रेमचन्द बिनाप के एक भाष्य में रियासतों के भविष्य पर लिखते हैं— इससे तो यह कहीं धरया का कि रियासतों का निहान हो न रहा।<sup>२</sup> रियासतों और राजाओं की निरर्थकता प्रेमचन्द ने 'रंगभूमि और 'कायाकल्प म मनीमांति प्रगट कर बी है। रियासतों और देशों भरशो का सारा बबरबा धरिनी-सत्ता के कारण ही या यह बात धर निर हो चुकी है।

१ रंगभूमि—पृष्ठ ३११

२ वही —पृष्ठ ३२६

हरमसर में बुझ धाने का बुझाहूँ किया है, यह हमारे रसोने बाहराहूँ को एक पाँच नहीं भाता और पाप धकेले नहीं है, धापके पाप समाज-सेवकों का एक बन्ना है। इस बन्ने के सम्बन्ध में भाँपि भाँपि की शंकाएँ हो रही हैं। नाबिरर्याही हुषम है कि अिठनी अस्व हो सके यह बन्ना हरमसर से दूर हटा दिया जान। हम धापको धपने प्रेम-कुँज में धाप न धपाने दें।<sup>१</sup>

रिवाजों का सम्बन्ध धक़्तरों की मनमानी पर निर्भर है। बीजान साहब कहते हैं सरकार की रक्षा में हम मनमानी कर बसूत करते हैं मनमान धगून है मनमने बँड सेते हैं, कोई खूँ नहीं कर सकता।<sup>२</sup> बिम्वसिंह के कारावास-बँड पर डाक्टर माँपुली धबिकारियों की निर्भरता पर कहते हैं, 'बहाँ का हाकिम सोम खुद पठित है। बरता है रिवाज में स्थापीन बिचारों का प्रसार हो धापना तो हम प्रजा को कैसे मूटेया। राजा मसुनर समाकर बैठा रहता है धसका नौकर धाकर मनमाना राज करता है।<sup>३</sup> धक़्तरों की मनमानी का एक धौर उदाहरण यह धोपछा है अिधमें कहा गया है कि बसबँतनगर एक सप्ताह के लिए धाली कर दिया जाय। इस धोपछा पर सोक्रिया का मत रिवाजों के प्रबन्ध की खुली धालोचना करता है "ऐसी ज्यादती रिवाजों के सिधा धौर कहीं नहीं हो सती।"<sup>४</sup>

प्रेमबन्ध बढाते हैं कि इन रिवाजों का धासन-मबन्ध न्याय पर नहीं, धाठक पर निर्भर है। सरकार नीलबँड सिंह बिनाय से कहता है "उनके दिन है रिवाज का मय जाडा रहेया धौर धब मय न रहा तो राज्य भी नहीं रह सकता। राज्य-म्वबन्धा का धाधार न्याय नहीं मब है।"<sup>५</sup>

रिवाजों धक़्तरों के मनमाने धालाचारों का बर्धन कायाधन में भी बिस्तार से किया गया है। मनोरमा बरबर से कहती है 'धमी एक धौर धा काय तो पर नें हुन रबा कर भाँगेने। उध बकन उवान भी न गुनेनी। उधसे धप धालें मिताहमे तो बेखिए, ठोकर बमाता है या नहीं। उधसे ती बोलने की हिम्मत नहीं बिचारे दीनों को सत्राते फिठते हैं। यह तो धरे को धरना हुषा। इसे हुकूमत नहीं बहते। यह धीरी भी नहीं है। यह बेधन मुटे धौर धिद का समाना है।"<sup>६</sup>

१ रंगभूमि (धाय १)—पृ० ३१६ ३२

२ वही — ७ ३२१

३ वही — ८ ४२२

४ रंगभूमि (धाय २)—पृ ६९

५ वही — ५ २००

६ कायाधन — ५० १३१

वैदिक व्यक्तिगत स्वार्थों ने उन्हें उचित माग पर नहीं धाने दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों एक भिन्नी-बुनी संस्कृति निर्माण करने के प्रयत्न जब निम्न स्वार्थों से टकराये तब मजहब के नाम पर सीधे धीरे धर्मपरम्परा को बरगलाया गया और रंगी-फिराशों को प्रोत्साहित किया गया। अन्त में अंग्रेजों की आल सफल हुई। देश को कमबोर बनाये रखने की नीयत से उसका विभाजन कर दिया गया। वैदिक देश का विभाजन कोई हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल नहीं है। केवल कुछ लोगों की स्वाक-मावना की कृति हो इसके होती है।

जिस तरह प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में अनेक समस्याओं को स्थापित किया है उन्ही तरह उनमें हिन्दू-मुस्लिम समस्या का भी प्रवेश किया गया है। ये उपन्यास 'क्याकम्प' 'कमभूमि' और 'सेवासदन' बिलेय रूप से अस्नेहनीय हैं। 'क्याकम्प' में तो इस विषय पर पर्याप्त विस्तार से लिखा गया है। प्रेमचन्द हिन्दू मुस्लिम एकता के बबरबस्त समर्थक थे। उनकी रचनाएँ हिन्दू और मुसलमान दोनों समान आदर में पड़ते हैं। उपन्यासों के प्रतिरिक्त अनेक कहानियों में भी वे इस प्रश्न को लेकर आते हैं और उनमें मानवीय आधारों को प्रतिष्ठित की है।

हिन्दू-मुस्लिम अन्धों के क्या कारण हैं और वे तब हल भगनों को सत्तेजना देते हैं, इस समस्या के सुलभाने का यथार्थ और स्थायी हल क्या हो सकता है, प्राणि विषयों पर प्रेमचन्द ने अपना विचार उपर्युक्त उपन्यासों में स्पष्ट-स्पष्ट व्यक्त किया है।

'क्याकम्प' में यह समस्या गाय की कुरबानी को मुख्य विषय बनाकर उपस्थित की गई है। प्रायः हरूर में गाय की कुरबानी पर विचार हो जाता है। इस तरह के विचार कौन लोग करवाते हैं? प्रायः हिन्दू-समाज मन्त्री एवं सेवा-समिति के सदस्य यशोदानन्दन जब बनारस से सीटकर आकर आते हैं तो एक धानेदार जनका भी असबाब रखना शुरू करता है। इस पर यशोदानन्दन आश्चर्य से पूछते हैं क्यों साहब, भाग यह सक्ती क्यों है?

धानेदार—भाप लोगों ने जो कान्ते बोये हैं, उन्हीं का फल है। हरूर में फ़िराव हो गया है।

यशोदा—धमी तीन दिन पहले तो धमन का राज्य था यह मूख नहीं है उठ उड़ा हुआ ?

इतने में समिति का एक सेवक बीड़ता हुआ आ पहुँचा। यशोदानन्दन ने धाने बढ़कर पूछा—क्यों राधापोहन यह क्या मामला हो क्या ? धमी किस दिन मैं गया हूँ उस दिन तक तो दाने का कोई लच्छा न था।

राधा—जिस दिन धान मये उन्ही दिन पंजाब से मीनवी रीत मुहम्मद साहब का सामन हुआ। तुने मीरान में मुसलमानों का एट बड़ा बलसा हुआ उसमें

## साम्प्रदायिक समस्या

यहाँ साम्प्रदायिकता से समिप्राय हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायों से है। भारत में हिन्दुत्व और इसलाम के भ्रमड़े बहुत पुराने समय से चल पा रहे हैं। यद्यपि हिन्दू-मुस्लिम एकता की समस्या मरि नहीं है, उसका धपना इतिहास है। इसलाम-धम विजेता बनकर इस देश में आया। हिन्दुत्व का विनाश करके उसने धपना प्रसार करना चाहा। इसलाम की मजहबी कट्टरता ने उसे और ब्रम बना दिया। यद्यपि प्रारम्भ में इसलाम एक साम्प्रदायिक शक्ति थी। मुसल शासन काल में उसे फैलाने के सभी धमड़े-बुरे साधन काम में लामे गए। इस तरह एक कट्टरता की भावना हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्धों में प्रारम्भ से उत्पन्न हो गई थी। मध्ययुगीन शक्तों और सूक्तिजों ने हिन्दू-मुस्लिम भेद-भाव बुर करने में काफी सहायता पहुँचाई। यदि शक्तों की यह परम्परा धामे और विकसित हुई होती तो सम्भव था उक्त समस्या का महत्त्व नगण्य रह जाया। सेकिंग विटिख-शासन का सबसे बड़ा कुण्ड-रिश्ताम हिन्दू-मुसलिम विरोध के रूप से सामने आया। हिन्दुओं और मुसलमानों की भावना में लड़ाकर धमड़ेजों ने भारत में धपने शासन की मौज मजकून की और कूटनीतिक तीर-तरीकों से ऐसी धमाकह स्थिति पैदा कर ली कि उक्त समस्या त्रिन पर त्रिन उलझनी ही मरि। उसे मुसलमानों के धारे निक उपाय धर्ष प्रथाकित हुए। इस इतिहास से यह बात धमो-भाति स्पष्ट हो जाती है कि हिन्दू-मुस्लिम सम्स्या का धाधार धामिक नहीं है, बरन् उसका विविध राजनीतिक पहलू है जिसने एकता के किसी भी प्रयत्न को कारगर सिद्ध नहीं होने दिया। ऊपर तीर पर उगका रूप धामिक दिखाई देता है। सेकिंग बास्तर में धर्म का तो राजनीतिक महत्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए मात्र 'हथियार' के रूप में लाम लिया गया। यदि राजनीतिक पहलू मूल में नहीं होता तो केवल धम के कारण इन दो धानियों में इतना धमनत्व कमी नहीं बढ़ता। भारत में धमके धमो-धमनी धरते हैं और उनमें इनकी कट्टरता बूढ़े थी नहीं मिलती त्रिनकी कि हिन्दू और इसलाम धर्म के धमनेधामों में पाई जाती है।

इन राजनीतिक पहलू से हिन्दू और मुसलमान धमो धपरिधिन नहीं रहे,

सैक्रिज व्यक्तिगत स्वाधीनता के उन्हे उचित मार्ग पर नहीं जाने दिया। हिन्दुओं और मुसलमानों एक मित्री-बुनी संस्कृति निर्माण करने के प्रयत्न जब मित्रो स्वाधीनता से टकराये तब मद्रहब के नाम पर लोपी धीरे बमपरायण बनता को बरतलाया गया और बंधे-निकमारी को प्रोत्साहित किया गया। अन्त में अंग्रेजों की शान सफल हुई। देश को बमबोरे बनाये रखन की नीयत से उनका विभाजन कर दिया गया। सैक्रिज देश का विभाजन कोई हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल नहीं है। केवल कुछ लोगों की स्वाध भावना को तृप्ति ही हमसे होती है।

त्रिस तरह प्रेमबन्धन में अपने उपन्यासों में अनेक समस्याओं को स्थापन किया है उनी तरह हममें हिन्दू-मुस्लिम समस्या का भी प्रवेश किया गया है। य उपन्यास 'आयाकल्प' 'कर्मभूमि' और 'सबासदन' विशेष रूप में उल्लेखनीय है। 'आयाकल्प' में तो इस विषय पर पर्याप्त विस्तार से लिखा गया है। प्रेमबन्धन हिन्दू-मुस्लिम एकता के अन्वेषण समर्पक है। इनकी रचनाएँ हिन्दू और मुसलमान दोनों समान भाव में पढ़ते हैं। उपन्यासों के परिचित अनेक कहानियों में भी वे इस प्रश्न को लेकर आते हैं और उनमें मानवीय धारणा की प्रतिष्ठा को है।

हिन्दू-मुस्लिम अन्तर्गत के क्या कारण हैं, कौन से तत्त्व इन अन्तर्गत को उत्पन्न करते हैं इस समस्या के मुलमूलों का यथासंभव स्पष्टीकरण हमें करना ही उचित है, धार्मिक विषयों पर प्रेमबन्धन ने अपने विचार उपर्युक्त उपन्यासों में जगह-जगह व्यक्त किये हैं।

'आयाकल्प' में यह समस्या गांधी की कुरबानी को मुकद विषय बनाकर उल्लिखित की गई है। धारा ३०० में पाप की कुरबानी पर किम्वार हो जाता है। इस तरह के विचार कौन लोग करवाते हैं? धारा ३०० हिन्दू-सना के धर्मो एवं सेवा-समिति के सहाय्य यथोद्योग्यत जब बनारस से लौटकर आकर आते हैं तो एक बालेदार उनका भी अन्तर्गत देना शुरू करता है। इस पर यथोद्योग्यत धर्मार्थ से पूछते हैं क्यों साहब, धारा यह क्यों करती है?

बालेदार—धारा लोगों ने जो कर्म बोये हैं, अन्तर्गत का फल है। शहर में विचार हो गया है।

यथोद्योग्यत—धर्मो कौन दिन पढ़ने तो धर्म का पाप या यह भूत नहीं से उठ सड़ा हुआ?

इन्होंने मैं समिति का एक सेक्रेटरी देखा हुआ था पढ़कर? यथोद्योग्यत ने धामे बढ़कर पूछा—क्यों यथोद्योग्यत यह क्या धामना हो गया? धर्मो किस दिन मैं गया है उक्त दिन तक तो बंधे का कोई लक्षण न था।

यथोद्योग्यत—त्रिस दिन धारा यथे उसी दिन पंजाब से मीनरी की मुसलमान साहब का धायकन हुआ। बुने धैरान में मुसलमानों का एक बड़ा अन्तर्गत हुआ उद्योग्यत



मीलाना साहब ने जाने क्या बहुर उभना कि तनी से मुसलमानों को कुरबानी की भुन छकार है । इपर हिन्दुओं को यह बिद है कि जाहे खून की गरी बहू बाप पर कुरबानी न होने पावेगी । बोनो तरफ से तैयारियाँ हो रही हैं । हम लोग तो समझ कर द्वार पये ।<sup>१</sup> इसमें संदेह नहीं कि इन खिलाओं को जाहे किसी भी छदरय से पैदा किया जाता हो पर उनके उभेजना मजहब से ही मिलती है । मजहब जो बहू जिसे दक्खिमास मीलबी या पंडे बघाते हैं । धर्म के नाम पर ही यह छारे कुकरय होते हैं हुए हैं । धर्ये धर्ये लोग धार्मिक भाववेश में धाकर हिंसक बन जाते हैं पधभष्ट हो जाने हैं । मानबताहीन हो जाते हैं । बशाबा महमूद जिन्हें हिन्दू पदरिस्ता समझने से जो हिन्दू-मुसलमानों की मिनी-जुली सेवा-समिति के छदरय से मीलबी शोन मुहम्मद साहब की तकरीर से इतने उत्तेजित हो जाते हैं कि कुरबानी को मेकर हानेबाने कियार का नेतृत्व करने लगत हैं । यशोदानन्दन इन कायापसट पर अपना मत प्रकटकरता है, धरम महमूद में सचमुच यह कायापसट हो गई है तो मैं यही कहूँगा कि धर्मसे ज्यादा देप पैदा करनेबानी बन्धु संमार में नहीं है ।<sup>२</sup> इपर हिन्दू भी उत्तेजित हो जाते हैं । स्वयं यशोदानन्दन जिसने धरमी तक मान सिफ मनुमन नहीं गोपा या बुनोती के स्वर में कहता है 'बशाबा महमूद के द्वार पर कुरबानी होयी । उनके द्वार पर हमके पजने या तो मेरी कुरबानी हो बायनी या बशाबा महमूद की । धीर लीये मैं बैटकर से तुरन्त रंमनूमि पर पटूँच जात है जरी बशाबा महमूद से उनके भेंठ होती है । यशोदानन्दन ने खोरियाँ बदलकर बजा—क्यों बशाबा साहब आपको याद है इन मुहम्मदे में कमी कुरबानी हुई है ?

महमूद—जो नहीं जहाँ तक मेरा ज्ञान है, यहाँ कमी कुरबानी नहीं हुई ।

यशोदा—तो फिर धरम धरम यहाँ कुरबानी करने की गरी ररम क्यों निराम रहे हैं ?

महमूद—इसबिद् कि कुरबानी करना हमारा हक है । धरब तक हम धारक जजबात का लिहाज करते से धरने माने हुए हक को भुन दये से लेविन बहू धाप लोग धरने हकों के सामने हमारे जजबात की परबा नहीं करने तो कोई बख्द नहीं कि हम धरने हकों के नामसे धापके जजबात की परबा करें । मुसलमानों की सुन्नत करने का धापकी पूरा हक हासिल है लेविन कम से कम पाँच छी बरगों में धारके यहाँ जजि धे का<sup>१</sup> विमान नहीं विनती । धाप लोगों ने एक मुर्दा हक को जिन्दा किया है । इनदिने न कि मुसलमानों की ताजत धीर धरमर कम हो बाप । जब धाप हमें जेर करने के निये गये-अये हबियार निराम रहे हैं, तो हमारे निये गये निबा धीर बजा जाता है कि हम धरने हबियार को बुनी ताइय से बचाये ।

१ कायापसट—पृष्ठ १०

२ यही , ३१

यशोदा—इसके यह मानी है कि कम प्राय हमारे द्वारों पर हमारे मन्दिरों के सामने दुरबानी करें और हम पुन प्राय देखा करें। प्राय यहाँ हरद्विज दुरबानी नहीं कर सकन और करेंगे तो इनकी जिम्मेदारी धारके सिर होमी।<sup>१</sup> प्रेमचन्द ने यहाँ बताया है, और प्राय भी कि यदि दानों कोय एक-दूसरे की भावनाओं का क्या रखन लगे ता बहुत से ऐसे मामूली ममई जा प्राये बनकर भीपण बंधे का रूप मम है। ध्यान प्राय समाप्त हो जायें। एक प्राय के पीछे एक प्राय के पीछे इन्सानों का लून बहाना कम भी माननीय नहीं कहा जा सकता। गौ-हत्या यदि प्राय है ता मानव-हत्या ममप्राय। यशोदानन्दन म अरुपर कहा है, अहिंसा का नियम गौधों के लिए ही नहीं मनुष्यों के लिए भी है।<sup>२</sup> निःश्रेय गौ-हत्या भी जिस दृष्टिकोण से की जाती है वह भी निन्दायन्युक्ति है। मून कारण मनुष्य का विचार से काम न मन का प्रवृत्ति है। यशोदानन्दन और अरुपर बात विचार करते हैं—

यशोदा—कौसी बातें करन हा जी। क्या यहाँ लक्ष होकर यशोदा प्राय से गौ की हत्या होते हुए देखें ?

अरुपर—यशोदा प्राय एक बार दिन काम कर बन लेने ता यकीन है कि फिर प्रायको कभी यह दुष्प्र न देखना पड़ेगा।

यशोदा—हम इन उधार नहीं हैं। ...

अरुपर—जी फिर प्राय मकिन उस भी की बचान के लिए प्रायको यशोदा एक भाई का लून करना पड़ेगा।<sup>३</sup> यहाँ प्रेमचन्द बड़े यथार्थ ढंग से सम्मया प्रस्तुत कर रहे थे कि यशोदा में अरुपर की यथार्थी बनाकर समस्या को वैयक्तिक रूप से देत है। अरुपर हिन्दुओं का इन प्रकार, शीघ्र करके फिर मुसलमानों के बीच में जाता है। प्रेमचन्द इसनाम की उदारता की धोखे मकेत करवाते हुए अरुपर से एक दूसरे की भावनाओं की बह कराने वाली बात भी यहाँ पुन दोहराते हैं, 'इसनाम की इज्जत मरे दिन में है, वह मुझे बोलने के लिए मजबूर कर रही है। इसनाम ने कभी दूसरे मजहबवालों की जिम्मेदारी नहीं की। उसन हमेशा यशोदा का एकनाम किया। बगदाय धोखे कम स्पेन और मिथ की ठाठों उस मजहबी धारवादी की साक्षि है जो इसनाम न उन्ह बना की थीं। यशोदा प्राय हिन्दू बहाना का निन्दा करके यशोदा दूसरी दुरबानी करें, ता यकीनन इसनाम के बचान में एक न प्रायमा।<sup>४</sup>

१ कामाक्ष्य—पृ० १२

२ यहाँ १ ३५

३ यहाँ ३५

४ यहाँ ३७

मनुष्यता सर्वबिचारों के सम्मुख सोई नहीं रह सकती। क्याजा महामुद की मौलवी बीन मुहम्मद के भाषणों से मानवता विरोधी कार्य करने को प्रेरित हो गए थे बरकर की विवेक संतत बलोल मुनकर सबेत ही बाते हैं। प्रेमचन्द यहाँ पर भी भ्रमों के जकड़ने वालों का भली भाँति पर्दाघात करते हैं, क्याजा महामुद बड़े पौर से बरकर की बातें मुन रह थे। मौलवीय साहब की उद्वेगता पर विह्वल कर बोले क्या शरीरपत का हुजम है कि कुरबानी यहाँ हो ? किसी दूसरी जगह नहीं को जा सकती। ..

घाय को ठा अपने इनके जाके स नाम है जिम्मेदारी तो हमारे ऊपर प्राणिकी दुकर्मों तो हमारी मुट्टेयी घायक पाम छे बोरिया घोर कूटे बपने के सिवा घोर क्या रहा है ? ...

बरकर—हर एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड़ हिन्दुओं के दिलों को बलामी कर देतो है, घोर इतनी बड़ी तादाद के दिलों को दुकानी बड़ी से बड़ी कीम के लिये भी एक दिन पछताने का बाहस हो सकता है। हिन्दुओं से क्याशा बेधपरमुद कीम बुनिया में नहीं है; लकिन अब घाय उनकी दिलजारी घोर महज दिलजारी के लिये कुरबानी चाहत है, तो उनकी लरमा बकर होठा है। घोर उनके दिलों में जो खोला बलता है, उसका घाय क्याल नहीं कर सकते। प्रपर घायको परलिन न घाये, देख सीखिये कि इस घाय के लाल ही एक हिन्दू फिदनी लुयी से घायनी बाल दे सकता है।<sup>१</sup>

बिह ठरह हिन्दुओं के धार्मिक बास को लाँठ करने के लिये बरपर, गाँधी बाबी इंग घामाता है, उठी ठरह मुनलमामों को लाँठ करने के लिय भी 'यह कहते हुए बरकर ने लैयो से लपक कर घाय की बरदन बरक ली घोर बील घायको इस यी के लप एक इम्मान को भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

क्याजा—कसम घुश को, तुम जीता दिलेर घायनी नहीं देगा। नाम के लिय ली लाय को मावा कहने बाये बहून है पर ऐमे बिलन ही देने का बी के पीछे जान सड़ा है। तुम बलमा क्यों नहीं पड़ मने ?

बरकर—मैं एक लुदा का कायम हूँ। बड़ी सार बहान का गार्मिक घोर गार्मिक है। टिर घोर फिन पर ईबान साउँ।

क्याजा—बस्ताह लब तो तुम घाय मुसलमान हा। हमारे हजल को घामाह लाला का रमुन मानतै हो ?

बरकर—बैठक मानता हूँ घनको इजत बरता हूँ घोर उनकी लीहीद का कायम हूँ।

बनाया—हमारे साथ जाने-नीले से परहेज वो नहीं करते ?

बजर—बजर करता हूँ वही तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ जाने से परहेज करता हूँ अगर वह पाक-घात न हो ।

बनाया—काश तुम जैसे समझार तुम्हारे घोर माई भी होते । मगर मही तो लोग हमे मलिच्छ कहते हैं । महीं तक कि हम कुत्तों से भी मजिब समझते हैं । उनकी पालियों में कुत्ते जाते हैं, पर मुसलमान उनके पिनास में पानी नहीं पी सकता ।... अब कुछ-कुछ समझीव हो रही है कि ठायर लोगों कीमों में इत फरक हो जाय ।<sup>१</sup> प्रेमबन्ध में यहीं उक्त प्रकार के समाप्त करने में जो भी रंग अपनाया हो पर वह बात निश्चिन्त है कि हिन्दू-मुस्लिम फिदाबो के दोषों को धाम की कुरबानी प्राप्त मुम बनरब के रूप में सामने घाठी है उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । उपन्यासकार इससे अधिक विस्तार उक्त प्रकार का कर भी नहीं सकता । यह प्रेमबन्ध जो की ही कता है जो इन अनेक बातों को मिमाकर भी उपन्यास की रोचकता कम नहीं होने देती ।

वास्तव में इस तरह के देने न हिन्दू चाहते हैं घोर न मुसलमान । छोटे या बड़े सभी भगवतों की बुनियाद में भय का भाव निहित है । अब हिन्दू घोर मुसलमान एक दूसरे से मयमीत होना छोड़ देंगे तब यह साम्प्रदायिक बातावरण स्वतः सुखर जायगा । बजर मनीरमा से कहता है— 'मुसलमानों को लोग ग्राहक बनना करते हैं । फिदाब से वे भी उतना ही करते हैं कितना हिन्दू । शांति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है । लोगों का यह क्यास कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं । विस्तृत गलत है । मुसलमानों को बेबन यह संका हो गयी है कि हिन्दू उनके कुराना और बुकाला चाहत हैं घोर उनकी हठ्ठी को मिटा देने की फिर कर रहे हैं । इनी भय से वे बरा-भरा-सी बात पर विनम्र बटते हैं घोर भरने-भारने पर धामाया हो जाते हैं ।<sup>२</sup> दूसरे कुछ भाग अपने निजी नाम स्वार्थ के लिए भी इन भगवतों को बनाए रखना चाहते हैं । यहूदिया से बनाया महमूद कहते हैं 'दोनों कीमों में कुछ ऐसे लोग हैं जिनकी इच्छत घोर उरबत दोनों को सड़ाते रहने पर ही कायम है । अब वह एक न एक सिगूख छोड़ करते हैं । मैरा तो यह बीज है कि हिन्दू रहो चाहें मुसलमान रहो युवा के सन्ने बन्दे रहो । साथी लुबिया कितनी एक ही बीम के हितों में नहीं घातों न सभी हिन्दू पाबत हैं न सब मुसलमान बेबता हैं, इही तरह न सभी हिन्दू कार्किर हैं, न सभी मुसलमान बीमित । जो धारमी दूसरी कीम से कितनी ही नकरत

१ कायाकल्प—पृष्ठ ३६-४०

२ वही ३७

समुप्यता सृष्टि-कार्यों के सम्मुख खड़े नहीं रह सकती। स्वामी महामुख को मौलवी कीम मुहम्मद के भापखों से मानवता विरोधी काम करने को उद्यत हो गए थे। बरकर की विवेक संघट इसील सुनकर सन्न हो बाटे हैं। प्रेमचन्द नहीं पर भी भगवों के उकसाने वालों का मनी मति परीक्षा करते हैं, स्वामी महामुख बड़े गौर से बरकर की बातें सुन रहे थे। मौलवीम साहब की उद्बुद्धता पर विह्वल कर बोले क्या तरीकत का हुकम है कि कुरबानी यही हो ? किसी दूसरी जगह नहीं को या सख्ती।

घाय को तो घपने हलके माइ म काम है विम्वकारी तो हमारे ऊपर घायवों दुकानें तो हमारी मुर्तगी घायक पास फूटे बोरिया और फूटे बकने के सिवा और क्या रहा है ? ...

बरकर—... हर एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड़ हिन्दुओं के दिलों को जलमी कर देती है, और इतनी बड़ी ताशार के दिलों को दुखानी बड़ी से बड़ी कौम के लिये भी एक दिन पघताये का बाइस हो सकता है। हिन्दुओं से ज्यादा बैधमस्तुब कौम बुनिया में नहीं है; लेकिन जब घाय उनकी रिसकारी और महज रिसकारी के लिये कुरबानी चाहते हैं, तो उनको तबना बकर होता है। और उनके दिलों में जो शोला उठता है, उसका घाय क्यात नहीं कर सकते। अगर घायको यकीन न घाये देख सीधिये कि इस गाम के साथ ही एक हिन्दू कितनी लुत्ती से घपनी बात दे सकता है।<sup>१</sup>

जिस तरह हिन्दुओं के मानिक बास को शांत करने के लिये बरपर नांभी बाबी बंय धारनाता है, उधी तरह मुसलमानों को शांत करने के लिये भी वह कइते हुए बरपर ने लोको से लपक कर घाय की गरदन पकड़ ली और बोले घायको इस ली के साथ एक इस्लाम की भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

बशाबा—कमम सया की तुम जैसा विसेर धारमी नहीं देगा। नाम के लिये तो गाय की माता कइने बास बहुत है पर मम बिरसे ही देगे जो ली के पीछे जान सहा दे। तुम कममा क्यों नहीं पड़ संत ?

बरपर—म एक सुदा का कापन हूँ। बही सार बरान का मानिक और मानिक है। फिर और फिम पर ईमान लाई।

बशाबा—बस्ताह तब ता तुम सन्ने मुसलमान हा। हमारे इजल को घपनाह तासा का रमूल जानते हो ?

बरकर—बैठक जानता हूँ। घतनी इजल बरता हूँ और उनकी लीहीड का कापन हूँ।

स्वामी—हमारे साथ जाने-पीन से परहेज तो नहीं करते ?

ब्रह्मचर—ब्रह्मचर करता हूँ उसी तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ जाने से परहेज करता हूँ। धर्मर बह पाक-साफ न हो।

स्वामी—काश तुम जैसे समझदार तुम्हारे घोर भाई भी होते। मगर यहाँ तो भोग हमें मतिव्यक्त कहते हैं। यहाँ एक कि हम कुत्तों से भी नबिध समझते हैं। उनकी बालियों में कुरो जाते हैं, पर मुसलमान उनके विनास में पागी नहीं पो सकता।...अब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि शायद दोनों कीमों में इस फाक हो जाय।<sup>१</sup> प्रेमचन्द ने यहाँ उक्त प्रकरण को समाप्त करने में जो भी बर्ग प्रयत्नवा हो पर यह बात निश्चिन्त है कि हिन्दू-मुस्लिम फिसाबों के पोछे को याव भी कुरबानी प्रायः मूम कारख के कम में सामने घाटी है उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उपन्यासकार इससे अधिक विस्तार उक्त प्रकरण का कर भी नहीं सकता। यह प्रेमचन्द जो की ही कता है जो इन अनेक बातों को मिलाकर भी उपन्यास की रोचकता कम नहीं होने देती।

वास्तव में इस तरह के बने न हिन्दू चाहते हैं और न मुसलमान। छोटे या बड़े सभी मजहबों की बुनियाद में सब का भाव निहित है। जब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से भयभीत होना छोड़ेंगे तब यह साम्प्रदायिक कटावट स्वतः सुधर जायगा। ब्रह्मचर मनोरमा से कहता है—‘मुसलमानों को भोग नाहक बदनाम करते हैं। फिसाद से वे भी उठना ही करते हैं जितना हिन्दू। शांति की इच्छा भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है। लोगों का यह स्वाम कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं दिक्कत गमन है। मुसलमानों को बेचन यह संका हो पयो है कि हिन्दू उनसे पुराना और चुकाना चाहत है, और उनकी हस्ती को मिटा देने की फिर कर रहे हैं। इसी सब से ब बरा-बरा-सी बात पर त्रिगुण उठते हैं और मरन-मारने पर घामादा हो जाते हैं।<sup>२</sup> दूसरे कुछ लोग मरने निभी मात्र स्वाय के लिए भी इन अंगकों को बनाए रखना चाहते हैं। यहूदिया से स्वामी महमूद कहते हैं ‘दोनों कीमों में कुछ ऐश भोग है बिनकी इन्कत और सरबत दोनों को सफाते रहने पर ही अयम है। बम यह एक न एक शिगूख छोड़ा करते हैं। मेरा तो यह कौन है कि हिन्दू रहा चाहे मुसलमान रहो मुसा के सक्क बन्दे रहो। सारी लुबियां किसी एक ही कीम के खिसे में नहीं घाटी न सभी हिन्दू राजस है न सब मुसलमान देवता है, इसी तरह न सभी हिन्दू नाफिर हैं, न सभी मुसलमान मोमिन। जो धारमो दूसरी कीम से बिजनी ही नकरत

१ कायाबल्ल—पृष्ठ ३६-४०

२ बरी ३७

अनुपस्था सन्निवारों के सम्मुख खड़े नहीं रह सकती। क्याया महमूद को मौलवी बीन मुहम्मद के भापछों से भागवत-विरोधी काम कराने को उद्यत हो पाए थे अरुबर की विवेक संवत बनील सुमकर अपने हो जाते हैं। प्रेमकाथ नहीं पर भी अरुबरों के उकसाने वालों का मन्त्री भाँति परास्त्रित करते हैं, क्याया महमूद बड़े पीर से अरुबर की बातें सुन रहे थे। मौलवीय साहब की उद्दण्डता पर विह्वल कर बोले क्या सरीयत का हुकम है कि कुरबानी यही हो? किसी दूसरी जगह नहीं को जा सकती। ...

घाप को तो घापने हलके भाँके स काम है जिम्मेदारी तो हमारे ऊपर घापेनी बुकाने तो हमारे मुँदेनी घापक पास फटे बोरिया और फूटे बमने के सिवा और क्या रहा है? ...

अरुबर— और एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड़ हिन्दुओं के दिलों को बधनी कर देती है, और इतनी बड़ी तावार के बिना को बुकानी बड़ी से बड़ी बीम के सिवे भी एक दिन पक्षतले का बाइस हो सकता है। हिन्दुओं से क्याया बेतमरसुब कीम बुनिया में नहीं है, लेकिन जब घाप उनकी रिजबारी और मज्ज रिजबारी के सिवे कुरबानी बाह्य है, तो उनके तबमा बकर होता है। और उनके दिलों में जो शोला बठता है, उसका घाप क्याल नहीं कर सकती। घाप घापको पक्षेत न घाप देय कीबिने कि इस घाप के साथ ही एक हिन्दु कितनी मुली से अपनी बाग दे सकता है।<sup>१</sup>

जित तरह हिन्दुओं के धार्मिक योद्धा को शांति करने के सिवे अरुबर यापी बारी बँब घापनाठा है, उसी तरह मुसलमानों को शांति करने के सिवे भी "बहु कइते हुए अरुबर ने तैबी से मपक कर घाप की मरदन पकड़ सी और बोले घापको इत बी के साथ एक इन्तान की भी कुरबानी करनी पड़ी।

बशाअ—कमल मुरा की तुम बीना बिसेर घाबनी मही देला। नाम के सिवे ती नाय को मात्रा कइने बाने बहुत है पर ऐन बिस्ने ही देने को नो के पीछे बाग मड़ा है। तुम कममा क्यों नहीं पड़ मठे?

अरुबर—म एक दुश का नायन हूँ। बगी सार जहाज का यासिक छोड़ मार्गिह है। फिर और किन पर ईमान मारूँ।

क्याया—बस्ताह, तब तो तुम सपक मुसलमान हा। हमारे इजरात को पम्बाह वाला का रगूम मानते हो?

अरुबर—बैठाक मानता हूँ। उनके इजरात करता हूँ और उनके तोहीइ का कायल हूँ।

स्वाजा—हमारे घाय खाने-पीने से परहज तो नहीं करते ?

बकबर—बकर करता हूँ उसी तरह जैसे किसी ब्राह्मण के घाय खाने से परहेज करता हूँ अगर वह पाक-साफ न हो ।

स्वाजा—काल तुम जैसे समझदार तुम्हारे घोर माई भी होते । मगर यहाँ तो लोग हमें मलिन्य कहते हैं । यहाँ तक कि हमें कुत्तों से भी बरिस समझते हैं । उनकी बानियों में कुत्ते जाते हैं पर मुसलमान उनके गिनास में पानी नहीं पी सकता ।... अब कुछ-कुछ सम्मिद हो रही है कि शायद दोनों कौमों में इत्त-प्राक हो जाय ।<sup>१</sup> प्रेमचन्द ने यहाँ उक्त प्रकरण को समाप्त करण में जो भी बंग धरनामा हो पर यह बात निबिबान है कि हिन्दू-मुस्लिम विस्वादी के पीछे जो गाय की कुरबानी प्रायः मूल कारण के रूप में सामने आती है उस पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है । उपन्यासकार इससे अधिक विस्तार बहुत प्रकरण का कर भी नहीं सकता । यह प्रेमचन्द जो की ही करता है जो इन घनेक बातों को मिलाकर भी उपन्यास की रोचकता कम नहीं होने देती ।

वास्तव में इस तरह के रंगे न हिन्दू चाहते हैं और न मुसलमान । छोटे या बड़े सभी भ्रमकों की बुनियाद में भय का भाव निहित है । अब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से भयभीत होना छोड़ देंगे जब यह साम्प्रदायिक बातावरण स्वतः सुधर जायगा । बकबर गणोरमा से कहता है— मुसलमानों को लोग नाहक बदनाम करते हैं । फिदा से वे भी सजना ही करते हैं जितना हिन्दू । शक्ति की इच्छा भी हममें हिन्दुओं से कम नहीं है । लोगों का यह क्या कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं, विस्तृत गणत है । मुसलमानों को वेबल यह शंका हो गयी है कि हिन्दू उनके पुराना बैर चुकाना चाहते हैं और उनको हस्ती को मिटा देने की चिन्ता कर रहे हैं । इसी भय से वे जट-जट-सी बात पर तिनक बैठते हैं और मरने-मारने पर सामाज्य हो जाते हैं ।<sup>२</sup> दूसरे कुछ सोच पाने निम्नी नाम स्वार्थ के लिए भी इन भ्रमकों को बनाए रखना चाहते हैं । प्रहस्था से स्वाजा महमूद कहते हैं “दोनों कौमों में कुछ ऐसे मान हैं जिनकी इज्जत और सखत बातों को सड़ाते रहने पर ही कायम है । अब यह एक न एक शिगून्ड छोड़ा करण है । मेरा तो यह क्तेन है कि हिन्दू यहाँ जाई मुसलमान रहो सुरा के सख बन्दे रहो । छापी खूबियाँ फिरी एक ही कौम के हितों में नहीं घाती न सभी हिन्दू राजस हैं न सब मुसलमान बेबल हैं, इसी तरह न इसी हिन्दू मार्गदर् है, न सभी मुसलमान भोमिन । जो घादमी डूमरी कौम से जितनी ही नकल

१ कायाकल्प—पृष्ठ १६-४०

२ वही



मनुष्यता सर्विचारों के सम्मुख खड़ी नहीं रह सकती। रबाबा महमूद को मौलवी बीग मुहम्मद के भाषणों से मानवता विरोधी क्रम करने को उद्यत हो गए थे बरकत की विवेक संगत बसोम सुनकर सभन हो जाते हैं। प्रेमचन्द यहाँ पर भी भयङ्गों के उकसाने वालों का भसी-भाँठि पराश्रित करते हैं। रबाबा महमूद बड़े धीरे से बरकत की बातें सुन रहे थे। मौलवीम साहब की उद्दण्डता पर विह्वल कर बोसे ' क्या शरीरत का हुकम है कि कुरबानी यही हो ? किसी बूझरी जगह नहीं को जा सकती। ... ..

घाय को तो अपने हलके भाँड़े से काम है जिम्मेदारी तो हमारे ऊपर घामेगी बुझने तो हमारी मुट्टेगी घायक पास छे बोरिया धीर पूरे बधने के सिवा धीर क्या रहा है ? ..

बरकत—...इस एक कुरबानी हिन्दुस्तान के २१ करोड़ हिन्दुओं के दिलों को जकमी कर देती है, धीर इतनी बड़ी ताबाद के दिलों को बुझानी बड़ी से बड़ी कौम के लिये भी एक दिन पक्षतमै का बाइस हो सकता है। हिन्दुओं से ज्यादा बेतकसुब कौम बुनिया में नहीं है; लेकिन जब घाय उनकी रिमजारी धीर म्दुब रिमजारी के लिये कुरबानी चाहते हैं, तो उनको तरमा पकर होता है। धीर उनके दिलों में जो शोला उठता है, उसका घाय क्याल नहीं कर सकते। घायर घायको पक्रीन न घामे बेग भीजिये कि इस घाय के साथ ही एक हिन्दू फिज्जो मुसी से घपनी बान है सकता है।<sup>१</sup>

जिस तरह हिन्दुओं के धार्मिक बास को हाँड करने के लिये बरकत माजी बारी डंन घयलता है, वही तरह मुसलमानों को हाँड करने के लिये भी वह कहते हुए बरकत ने देवी से लपक कर गाय की परबन बकड़ की धोर बोस, घायको इस धी के साथ एक इत्सान को भी कुरबानी करनी पड़ेगी।

रबाबा—कसम रसा को तुम पैसा बिलर घायरी नहीं केगा। नाम के लिये तो गाय को माता कडन बाम बहून है पर ऐमे बिलने ही केग जो धी के पीछे जान लड़ा दें। तुम कलमा क्यों नहीं पढ़ मर्ते ?

बरकत—मैं एक सुश का कायम हूँ। बड़ी सार खतान का धार्मिक धीर धार्मिक है। फिर धीर किन पर ईमान लाऊँ।

रबाबा—बन्ताह तब तो तुम सचच मुसलमान हा। इयारे इयारत का धम्पाह ताता का रमून मानते हो ?

बरकत—बैठक मानता हूँ। सगकी इज्जत बरता हूँ धीर सगकी तीरीद का कायम हूँ।

स्वामी—हमारे साथ खाने-पीने से परहेज तो नहीं करते ?

ब्रह्मर—जबर करता हूँ उसी तरह, जैसे किसी ब्राह्मण के साथ खाने से परहेज करता हूँ अगर वह पाक-साक न हो ।

स्वामी—कारण तुम जैसे समझदार तुम्हारे घोर माई भी होते । मगर यहाँ तो लोग हमें मतिच्छत्र कहते हैं । यहाँ तक कि हम कुत्तों से भी मजिब समझते हैं । जगदी बालिर्मों में कुत्ते खाते हैं, पर मुसलमान उनके दिमाग में पानी नहीं पो सकता ।...पब कुछ-कुछ उम्मीद हो रही है कि हावद लोगों कीमों में इस पत्रक हो बाय ।<sup>१</sup> प्रेमचन्द ने यहाँ उक्त प्रकारक को समाप्त करने में जो भी बंध प्रपनाया हो पर यह बात निर्बिबाद है कि हिन्दू-मुस्लिम विवाहा के पीछे जो माय की कुदबानी प्रायः मूम कारक के रूप में सामने आती है उस पर पर्वन्ति प्रकश पड़ता है । अपत्यासकार इससे अधिक विस्तार उक्त प्रकारक का कर भी नहीं सकता । यह प्रेमचन्द जो की ही कता है जो इन घनेक बातों को मिमाकर भी अपत्यास की रोचकता कम नहीं होने देती ।

बास्तव में इस तरह के बर्ते न हिन्दू चाहते हैं और न मुसलमान । छोटे या बड़े सभी भ्रमकों की बुनियाद में भय का मान निहित है । जब हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे से भयभीत होना छोड़ देंगे तब यह साम्यवायिक बाठावरण स्वतः सुपर बायगा । बरुबर मनोरमा से कहता है— मुसलमानों को लोग गार्क बरबाम करते हैं । किनाद से वे भी कतना ही करते हैं जितना हिन्दू । टांवि की इभ्या भी उनमें हिन्दुओं से कम नहीं है । लोगों का यह क्या कि मुसलमान लोग हिन्दुओं पर राज्य करने का स्वप्न देख रहे हैं विस्तुल नमत है । मुसलमानों को बेबल यह संका हो गयी है कि हिन्दू उनसे परतना और चुकाना चाहते हैं और उनको हस्ती को मिटा देने की किंक कर रहे हैं । इनी भय से वे जरा-जरा-सी बात पर किंक सटते हैं और मरने मारन पर घामादा हो जाते हैं ।<sup>२</sup> दूसरे कुछ काव घाने किसी काय प्वाच के लिए भी इन भ्रमकों को बनाए रखना चाहते हैं । गहत्या से स्वामी महमूद कहते हैं 'लोगों कीमों में कुछ ऐस काग है जिनकी इज्जत और सज्जत लोगों को लड़ाते रहने पर ही कायम है । जब यह एक न एक हिन्दूछ छोड़ा करते हैं । मय तो यह बीन है कि हिन्दू छोड़े जाहे मुसलमान रहो लुबा के सभ्ने बन्दे रहो । सारी पूबिर्षा किसी एक ही कीम के हिससे में नहीं आती न सभी हिन्दू राजस हैं न सब मुसलमान बेबता हैं, उसी तरह न सभी हिन्दू कर्षकर हैं न सभी मुसलमान लोकम । जो दादमी दूसरी कीम से जितनी ही नफरत

१ कायाकन्द—पृष्ठ ३६-४०

२ वही

कहता है, साम्प्रदायिक कि वह युवा से उठनी ही दूर है । १ ऐसे लोग साम्प्रदायिक जीवन के प्रत्येक पक्ष को अपने हित में खाने का प्रयत्न करते हैं ।

'सिवासदन' में एक इमामबाड़े का बली उपमासी कहता है 'इस बस्त उड़ हिन्दी का मजदा गो-करी का मसला बुढापाता इन्तप्राय मुर का मुदाबिदा कानून इन सबों से मजदबी तास्तुब के मजदबी में मजदबी का रही है । २

कायाकर्म' का पञ्चीसवाँ परिच्छेद प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिक समस्या के निमित्त हो लिखा है । इस परिच्छेद में साम्प्रदायिक वर्गों के कारणों उनके स्वल्प हीर परिणाम पर बड़ी विस्तृत बर्णना है । प्रेमचन्द लिखते हैं ... .. हिन्दुओं और मुसलमानों में घाए दिन जूतियाँ बसती रहती थीं । ... .. बिनके रपड़े भण्डे साम्प्रदायिक वर्गों के बीच में भीख साये जाते थे । ... .. मुसलमानों ने बजाये लोसे हिन्दू नेचे बापन लये । मुबद्द को क्वाबा साहब हाकिम जिला को उपाय करते जाते राम को बाबू बशोहात्म्य । दोनों अपनी-अपनी राजनकिन का राग घसा प्ये । दोनों बेशताओं के भाग्य जाने महीं कूले निडोपाम्पा किया करते थे बहीं बुझारी भी को मंग मुटने मगी । मजदबी के दिन फिरे, मुस्ताओं ने म्वाबीनों को बैरखम किया । बहीं साइ बुझारी करता था बहीं पीर साहब की हँदिया बड़ी । हिन्दुओं ने म्हाबीर बम्' बनाया, मुसलमानों ने धलीगोल मजाया । ठाकुरदारी में ईश्वर-कीउन की बपह मजिबों की मिना होती थी मजदबी में म्पाय की बपह बैरताओं की दुर्पति । क्वाबा साहब ने कतबा दिया को मुसलमान रिडी हिन्दू पीरत को निजाम ने काय बने एक ह्जार ह्जों का उबाव होबा । पठोबा मन्चन ने करती के बर्तियों की ब्यवस्था मंगवाई कि एक मुसलमान का बप एक काग भीरानों से वेष्ट है । ३ घागे बसकर होनी के बरनर पर मर्वकर बंवा ही बागा है । प्रेमचन्द ने बने का जो विस्तृत बर्णन दिया है उध पढ़कर पाठक का ह्रद विचोम से भर उठता है और उसे साम्प्रदायिकता से पुषा हा जाती है ।

जैसा कि ऊपर निराह का चुका है, साम्प्रदायिक-समस्या को धरैव साधन बाधियों ने राजनीतिक रूप से रखा था । फूट बानकर साधन करने की नीयत धरनाकर धरैव धपना प्रभुत्व बनाय रगसा बाएत्र से । उम्हाने हिन्दू-मुस्लिम धरैव-धाय पलपने दिया । दोनों दोनों का संबंध निष्ठ सीया तक बट्टेव चुके से उनका स्पष्ट बर्णन प्रेमचन्द उपमासी के मंत्र में करवाने है, "धायव पाणिदिवन

१ कायाकर्म—पृष्ठ २४७

२ सिवासदन २४२

३ कायाकर्म २४६

मस्जिद का चोर है, हक धीरे हसाक का गाम न सौजिये । घगर घाप मुर्दिस है तो हिन्दु मङ्गलों को फेंग कीजिये । तहसीसवार है तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइये मन्जिस्ट्रेट है तो हिन्दुओं को सजाएँ दीजिये । सब-इम्मेण्टर पुलिम है तो हिन्दुओं पर मूँटे मुकदमे बायर कीजिये तहकीकात करन बाइये तो हिन्दुओं के बयान गफ्त सिन्निये । घगर घान चोर है तो किमी हिन्दु के घर हाफा डालिये घपर घापको हुम्न घोर हरक का खम्न है तो किमी हिन्दु नासनीन को उराइय तब घाप कौम के खारिम कौम के मुहसिन कौमो किशतों के नासुरा सब दुष है । <sup>१</sup> ऐसी स्थिति में यह समस्या दिन-ब-दिन अन्तितर होती गई । प्रेमचन्द न साम्प्रदायिक समस्या के हल के निमित्त कई सुझाव देने उपायों में दिये हैं । सर्वप्रथम धर्म को सच्ची शिक्षा बना आवश्यक है । धर्मनिष्ठा का विरोध करते हुए अक्षर कठुता है । 'जब तक हम सच्चे धर्म का ध्य न समझे हमारी यहा रखा हामी । मुस्लिम यह है कि जिन महात्मा पुरवों से धर्या धर्मनिष्ठा की प्रासा भी आनी है, वे धर्या परिचित भाइयों से भी अक्षर उखर हो बात है । मैं तो नीति को धर्म समझता हूँ और सभी सम्प्रदायों का नीति एक सा है । धर्या धर्या है ता बहुत थोड़ा । हिन्दु मुसलमान ईसाई बौद्ध सभी सत्कर्म घोर सञ्चिचार की शिक्षा बते है । हमें इच्छा राम ईसा मुहम्मद, बुद्ध सभी महात्माओं का समान धर्या करना चाहिए । ये मानव जाति क निर्माता है । जो इनमें से किसी का धर्या करना है, या उनको तुलना करन बँटता है, वह धर्या मूखता का परिचय देना है । बुर हिन्दु से धर्या मुसलमान उठना ही धर्या है, जिनना बुरे मुसलमान से धर्या हिन्दु । देयता यह चाहिए कि यह कैसा धर्या है न कि यह कि वह किस धर्म का धर्या है । संसार का भाषी धर्म सरय स्याय घोर प्रम क धर्या पर बनेया । हमें धर्या संसार में जीवित रहना है, तो धर्या हुरय में इन्हीं बातों का धर्या करना पड़ेगा । <sup>२</sup> बुरी धर्यायका धर्यायुगीन इतिहास को स्वल्प घोर प्रगतिशील दृष्टि से निबन्ने की है । साम्राज्यधारियों ने भारत के इतिहास को धर्या दृष्टिकोण से लिखा है । उन्होंने बुरी हिन्दु राजाओं घोर मुसलमान राजाओं के बखल में इन धर्याय को गणन करक बगत्या है घोर धर्यामी पीढ़ियों के हुरयों में हुरय की बिदेसी धर्यायें भरने के प्रयत्न किए हैं । 'कमधूमि' में जिमा हाकिम गज्जको गज्ज तघारीय के सम्बन्ध में सलीम ने बहना है, गणन तघारीयें पढ़-पढ़ कर दोनों छिरके एक-दूतरे के धर्याय हो गये हैं घोर मुसलिम गहरी कि हिन्दु धर्या पाकर मुसलमानों से फौजी धर्यायों का धर्या न से लेकिन इन बखल से तघालनी होती है टि इत बोसबों धर्या में हिन्दुओं की धर्या-निष्ठा

१ महासदन—पृष्ठ १०४

२ नायाबल— २२०

करता है समझ लीजिए कि वह खुदा से उतनी ही दूर है।<sup>१</sup> ऐसे लोग साम्प्रदायिक जीवन के प्रत्येक पहलु को अपने हित में बालग का प्रयत्न करते हैं।

सेवाश्रम में एक इमामबाई का बनी सेगमपी कहता है, 'इस वक्त उन्हें हिन्दी का भगदा गो-कटो का मसला खुदायाना इच्छावाक सूत्र का मुयाबिजा कानून इन सबों से महजबी तास्तुब के मड़काने में मबर ली जा रही है।'<sup>२</sup>

कावाकल्प का पक्कीसर्वा परिश्रम प्रेमचन्द ने साम्प्रदायिक समस्या के निमित्त ही लिखा है। इस परिश्रम में साम्प्रदायिक संबंधों के कारखों उगड़े स्वल्प धीरे परिछाम पर बड़ी बिस्तत बर्षा है। प्रेमचन्द लिखते हैं ..... हिन्दुओं और मुसलमानों में घाय दिन बुरियाँ बसती रहती थी। ... बिनके रगड़े भगड़े साम्प्रदायिक संघाम के खेज में लीज भाये जाते थे। ... मुसलमानों ने बजाये सोल हिन्दू नैवी बर्षन बने। सुबह को क्वाजा साहब हाकिम बिला को सपाम करने जाते शाम को बाबू यशोदात्मन्वत। बोनो घपनो-घपनी राजमबि। का राग मला पते। दोबो बैचताघों क भाग्य जाये यहाँ कुल निजोगातना किया करते थे यहाँ पुजारी की को भंग पुटने लयी। मजबिरी के दिन फिरे, मुल्लाघों ने घबाबीलों को बैरबल दिया। अहाँ साँइ खुनापी करता जा बहाँ पीर साहब की हँडिया बनी। हिन्दुओं ने महाबीर बम बनाया मुसलमानों ने 'घमीगोल' सबाया। आकुआरे में ईशबर-कीर्तन की अगहू नबियाँ की निगदा होठी थी मजबिरी म ममाज की अगहू बैचताघों की बुरगि। क्वाजा साहब ने फतवा दिया ओ मुसलमान हिदी हिन्दू औरत को निजाल से जाय उसे एक हजार हबों का सबाब हागा। यशोदात्मन्वत ने कारी के पँडितों की ब्यवस्था मंगवाई कि एक मुसलमान का बच एक लाग बौधायों से खेठ है।<sup>३</sup> घापे बमकर होमी क घबसर पर बबंकर बंपा हो जागा है। प्रेमचन्द ने बने अर को बिलुप्त बर्षन दिया है उसे पड़कर पाठक का हृदय बिछोय से भर सटना है और उसे साम्प्रदायिकता से पुन्दा हो जाती है।

बेगा कि ऊपर निगदा जा बुझा है साम्प्रदायिक-समस्या को संघज साम्राज्य काशियों ने राजनीतिक रूप से रखा था। फूट शासकर शासन करने की नीयन बनवाकर संघेज घपना प्रमुख बनाय रगना चाहने थे। उन्होंने हिन्दू मुस्लिम भेद जाय पनपने दिया। बोनो बोंघों में संबंध बिग सीया तक पहुँच चुके थे उनका सगह बर्षन प्रेमचन्द सेवाश्रम के बँह ने करवाते हैं, जायबल पौनितिकन

१ कावाकल्प—पृष्ठ २४७

२ सेवाश्रम २४१

३ कावाकल्प २४६

मन्त्र का जोर है, हृदय और इंद्रियाण का काम न सीजिये । अगर प्राण मुखरिषि हैं तो हिन्दू लड़कों को फेंक कीजिये । तहसीलदार हैं तो हिन्दुओं पर टैक्स लगाइये मजिस्ट्रेट हैं तो हिन्दुओं को सजाएँ दीजिये । सब-इन्स्पेक्टर पुलिस हैं तो हिन्दुओं पर झूठे मुकदमों कायर कीजिये तहकीकात करने काइये तो हिन्दुओं के बयान गमल लिखिये । अगर प्राण जोर है तो किसी हिन्दू के घर डाका डालिये, अगर प्राणको हुलस और इस्फ का खज है तो किसी हिन्दू नाबलीन को सजाइये तब प्राण कौम के शक्ति कौम के मुहसिन कौमी फिती के नाखुदा सब कुछ है । <sup>१</sup> ऐसी स्थिति में यह समस्या विन-वर-विन बटिस्तार होतो गई । प्रेमबन्ध ने साम्प्रदायिक समस्या के हल के निमित्त कई सुझाव अपने उपन्यासों में दिये हैं । सर्वप्रथम बर्न की सच्ची शिक्षा देना आवश्यक है । बर्नशिक्षा का विरोध करते हुए बर्नकार कहता है । 'बच तक हम सच्चे बच का प्रब न समझे हमारी यहो रखा होयो । धुरिकल यह है कि जिन महान् पुरुषों से बर्नशिक्षा की धारा की बाढी है, वे अपने प्रतिबिम्ब भाइयों से भी बड़कर उड़कड़ हो जाते हैं । मैं तो मोठि को बर्न समझता हूँ और सभी सम्प्रदायों की नीति एक सी है । अगर बन्तर है तो बहुत बोझ । हिन्दू मुसलमान ईसाई बौद्ध सभी सत्सर्ग और तद्विचार की शिक्षा देते हैं । हम कुछ राम ईसा मुहम्मद, बुद्ध सभी महारमाओं का समान भावर करना चाहिए । ये मानव जाति के निर्माता हैं । जो इनमें से किसी का धमरार करता है, या उनको तुलना करने बैठता है, वह अपने मूर्खता का परिचय देता है । बुरे हिन्दू से बर्नशा मुसलमान उजना ही बर्नशा है, जितना बुरे मुसलमान से बर्नशा हिन्दू । देखना यह चाहिए कि यह कैसा धारमी है न कि यह कि वह किस बच का धारमी है । संसार का मानो बर्न सत्य स्वाम और प्रेम का आधार पर बनेमा । हमें धरर संसार में जीवित रहना है तो धरन हृदय में इन्हीं बातों का संचार करता पड़ेगा । <sup>२</sup> बूझरी धारबयकता मध्ययुगीन इतिहास को स्वस्व और प्रयतिशील बुद्धि से सिखने की है । साम्राज्यवादिनों ने भारत के इतिहास को धरन बुद्धिकोष से सिखा है । उन्होंने वहाँ हिन्दू राजाओं और भुगत बाबराहों के बर्नन में इस धेनतस्य को गाढ़ करके बजाबा है और धायामी पीढ़ियों के हृदयों में द्वेष की विदसी भावनाएँ भरने के प्रयत्न किए हैं । 'कममूनि' में जिना ह्यकिम गबनको पलत तबारीक के सम्बन्ध में सलोम से कहता है, पलत तबारीकों पड़-पड़ कर लोगों फिरके एक-दुसरे के धुरमन हो गये हैं और मुसकिम गनी कि हिन्दू मौका पाकर मुसलमानों से फौमी धरावतों का बरना न लें सेकिम इन कपाल से तहस्तो होती है कि इस बोसबों सरी में हिन्दुओं केतो पदो-लिखी

मायत मजहबी गरोइबन्दी की पनाह नहीं से सकती। मजहब का दीप लौ  
 बरम हो रहा है, बल्कि यों क्यो कि घारम हो गया। चिर्क हिन्दुस्तान में उसमें  
 कुछ-कुछ जान बाकी है। यह तो दोस्त का जमाना है। जब कीम में घबीर घोर  
 यदोब जायबाइर जाने घोर मर मुझे घपनी जमाघरें बनायेंगे। उनम कहीं  
 ज्यादा बुरीजी होयी कहीं ज्यादा लंगदिली होयी। घाघिर एक बो गरी के बाब  
 बुनिया में एक सजजन हा बायगा। सबका एक बजमून एक निजाम होया कीम  
 के बाघिम कीम पर हुकूमत करने मजहब ठकसी खोज होयी। १ तीसरे, प्रेमचन्द  
 ने घापसी भूमकों को निपटाने के लिए पंचायत का सुझाव भी रखा है। बाया  
 बज्य' में बजाया म्हुमूब घोर बरुबर तय करते हैं एक पंचायत बनायी जाय  
 घोर घापत के भूमके बसी के हाथ तय हुआ करें। २

हिन्दू-मुसलमान एकठा के बड़े मामिक बिब प्रेमचन्द-आहित्य में बिचबात  
 है। 'कर्मभूमि में नाता समरकांत घोर सनीम के भोजन करने का बुरय हमारे  
 मायत हृदय पर मजहब का काम करता है। प्रेमचन्द घुघाघत की घसाघटा कितने  
 मुन्दर ईम से बज्य करते हैं, भोजन का समय घा गया बा। सनीम में घुघा  
 घापके किये गया बाया बनबाडे? मैं तो घात्र घापको घपने माय बैठाकर  
 बिताईया।

तुम घ्यात्र मास घपडे खाने हो। मुझमें उन बर्तनों में घाया ही न जायता।  
 घाप यह दूब कुछ न घाहयेया मगर मेरे घाय बैठना पड़ेया। मैं रोज घाबुन  
 नयाकर नहावा हूँ। ...घापतन घाया हिन्दू बनायेया।

...घेठ बी सज्या करके लीटे तो देला बो कम्बल बिघी हुए हैं घोर बा  
 बालिया रखी हुई है।

घेठ बी ने मुठ होकर कहा—यह तुमने बहुत घघघा दण्डजाम किया।  
 लनीम ने हँसकर कहा—मैंने लोभा घापता बम क्यों लूँ, नहीं एक ही

कम्बल रसना।  
 मगर यह स्वात है तो तुम मेरे कम्बल पर घा जायो। नहीं मैं ही घाता  
 हूँ।

बह घाली उठकर लनीम के कम्बल पर घा बैठे। घपने बिचार में घात्र  
 उन्होंने घपने जोबन बा सबसे महान् रयाप किया। सारी सम्पति घाम देकर भी  
 उनका हृदय दाना गौरबाग्निन न होया।  
 लनीम ने बुन्की ली—घब तो घात्र मुसलमान हो नये।

१ कर्मभूमि—पृष्ठ २२ २२३

२ बायाबज्य— ४४

सेठजी बोले—मैं मुसलमान नहीं हुआ। तुम हिन्दू हो गये।<sup>१</sup>

स्पष्ट है प्रेमचन्द समस्यामूलक उपन्यासकार है। अरिष्ट प्रमान-उपन्यास लिखने वाला लेखक उपर्युक्त बातों को अपने उपन्यास में कोई स्थान नहीं देगा जब कि प्रेमचन्द उनको बड़ा महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। यदि उनके उपन्यासों में ये स्वतः या ऐसे अग्य रूप में विकास दिये जायें तो वे निरवयव ही अपने प्रमान को बनें। त्रिषु हिन्दू-मुस्लिम एकता की भावना को प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों का विषय बनाया था और मानवता को उच्च विचारों की या प्रमूल्य सम्पत्ति सीपी की वह काम में नहीं साईं गई। हिन्दू-मुस्लिम बैमनस्य किम सीमा ठर गया। किसी-किसी अमानुषिक कृतस हृत्पार्थ की गई। यदि प्रेमचन्द मात्र जीवित होते तो यह कल्पना सहज ही की जा सकती है कि उनके उप-न्यासों में कितनी घाग होती। मनुष्य को सम्य बनाने के लिये साहित्य सबसे प्रभावशाली माध्यम है। साहित्य कार की कृतियों का बनता में समुचित प्रचार होना चाहिये। राजनीतियों के मात्र भाषणों से बनता के हृदय पर कोई स्थानी प्रभाव नहीं पड़ सकता। प्रेमचन्द ने त्रिषु हिन्दू-मुस्लिम एकता का स्वप्न देखा था वह उनके जीवित काल में तो साकार न हो सका और न धायै भी बरन् उस एकता की नीव ही डलती जात हुई पर जब तक प्रेमचन्द-साहित्य जीवित है, साम्प्रदायिकता की बुद्धिगत दानवी कमी भी अपने धूमि पंजे मानवता के हृदय पर नहीं पडा सकती। प्रेमचन्द साहित्य उसको एक चुनौती है।

१ कमभूमि—पृष्ठ ११४ ११५



## शैक्षणिक समस्या

प्रेमचन्द केवल उपन्यासकार कहानोकार नाटककार न पत्रकार ही नहीं थे, बरन् समाज के विभिन्न वर्गों पर दृष्टिपाठ करनेवासे एक आगरक साहित्यकार थे। वे विचारक थे। उनके विचार ही उनके समस्त साहित्य के शासक हैं। उपन्यासों में भी वे अपने विचारों को ही प्रभावता देते हैं। ये विचार भारतीय जीवन की विभिन्न समस्याओं से सम्बन्ध रखते हैं जो उनकी कृतियों में ब्यह्र आगह दिखते हुए हैं। स्पष्ट है, उपन्यासों में ये विचार पाठों के मुख से ही प्रकट किये जा सकते हैं, मेलक अपनी धोर से तो संक्षेप में टिप्पणी मात्र दे सकता है। मानव जीवन को सुसंस्कृत करने और उसे पूर्ण विज्ञान की धोर से जाने में शिक्षा का स्थान सर्वोपरि है। प्रेमचन्द जैसे मधेन मधेक शिक्षा जैसे विषय को कैसे छोड़ सकते थे? मत्र उनके उपन्यासों में तत्कालीन शिक्षा-यन्त्रि धोर उसमें सुधार करने की समस्या का प्रवेष्ट किया गया है।

प्रेमचन्द ने शिक्षा का उद्देश्य पारश्चात्य-शिक्षा-श्रणालो सम्पापणों और युवकों को मनोवृत्ति शैक्षिक संस्थाओं पाठपठनों प्राप्ति पर अपने कुछ उपन्यासों में बर्षों की है। ये आगगत 'बरदान कापाकल्प' प्रेमचन्द कर्मभूमि और 'रंजभूमि किलेय कय से उल्लेखनीय हैं। आसोबकों ने प्रेमचन्द के शिक्षा संबंधी विचारों को और ध्यान नहीं दिया है। डा० रबीन्द्रनाथ टागुर को आदि-भुवि आए प्राप्त भी मत्र ने अपने शिक्षा-सम्बन्धी विचारों को मूर्तक्य दे सके। प्रेमचन्द के पास एमा कोई साधन नहीं था। फिर भी वे अपने विचारों की शैक्षिक संस्था कर्मभूमि में छोड़ पर हैं, जो उनके मत्रम् शिक्षा-शास्त्री होने का प्रमाण है।

प्रेमचन्द ने एक निर्धन विद्यार्थी का जीवन ध्यतीठ किया था। वे उन सभी कष्टों और धानधमों से परिचित थे जो एक निर्धन धाय की उठनी पड़ती है। प्रेमचन्द के हयों में "एक कुणी के धामने राग को बैठकर हाट विद्याकर कथा।" पाँच रन्ने का टपूठन करके धाय रावे में धानता मुत्र करता था। मुबह उगकर

झाम मुँह जोकर रोटी पकता रोटियाँ संक कर स्तूस जाता।" १ एक बार रोटी के मिये उम्हें घपनी पुस्तकें बेचनी पड़ी थीं 'जाड़ों के दिन से पास एक कौड़ी न थी। दो दिन एक-एक पस का खाकर काटे। मेरे महाजन ने देने से इन्कार कर दिया था। सकोबबरा मैं उनसे माँग न सकता था। बिनाय जस बुके बे। मैं एक बुकसेसर की बुकन पर लिखाव बेचने गया। एक बहकवर्ती मणिग कुंजी हो साल हुए खरीदी थी अब तक उसे बड़े जतन से रखे हुए था पर घाम चारों धार से निरास होकर मैंने उसे बेचने का निश्चय किया। लिखाव हो रुपये की थी लेकिन एक रुपये पर सीदा तय हुआ। २ इस प्रकार लिखावों की बिक्री में ही प्रमचंद अपने समय के लिखा-सम्बन्धी धनक शोषों से अत्यधिक निरुत्सह परिचित हो गए थे। उन्होंने उत्कामीन लिखा-पत्रिका की धामोचना पुष्पकामयों से लिखा-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़कर नहीं की उसमें उनके जीवन के अनुभव निहित हैं। इनलिए उनके बिचार विशेष महत्व रखते हैं।

घामे जसकर प्रेमचंद एक विद्यालय के प्रधानाध्यापक की हुपा स घटाख्खे रुपये मासिक पर अध्यापक हो गए। कामपुर बस्ती मारपपुर धारि स्वार्थों में उन्होंने अध्यापक का कर्म किया। इन्डिक्-बोर्ड के सब-इन्स्टी-इन्स्पेक्टर की हुंति पत्र से यह साल उन्होंने महोत्सव में लिगाए। इस बीच अध्यापक-वर्ग की मनोवृत्ति से ही उनका परिचय नहीं हुआ बरन् अधिकांश-वर्ष की बीकरखाईवृत्ति का भी उन्हें सामना करना पडा। धोरणपुर में इन्स्पेक्टर के निरीक्षण की बटना यहाँ उवुवृत्त करना संभव होया 'बाड़े के दिन से। स्तूस का इन्स्पेक्टर मुयापना करने पाया था। एक रोज तो इन्स्पेक्टर के साथ खूकर घापने स्तूस दिखा दिया। दूसरे रोज लड़कों को गेर ललाना था। उन दिन घाप नहीं मये। छुट्टी होन पर घाप पर बने घापे। घापमकुर्षी पर भेडे बरवाने पर घाप घबबवार पड़ रहे थे कि सामने ही इन्स्पेक्टर अपनी मोटर पर जा रहा था। बहु घाया करणा था कि उठकर सामन करने। लेकिन घाप उठे भी नहीं। इस पर कुष दूर जाने के बार इन्स्पेक्टर ने गाड़ी रोककर घापने घरसी को घेरा। घरसी जब घाया तो घाप गये।

'कहिये क्या है ?'

इन्स्पेक्टर— 'तुम बड़े ममकर हा। तुम्हारा मन्मर बरवाने से निकन जाता है। उठकर सामन भी नहीं करते।

मैं जब स्तूस में उठता हूँ तब लौकर हूँ। बाइ में मैं भी घापने बर का बाइसाइ हूँ। बहु घापने घप्या नहीं किया। इस पर मुझे धबिकार है कि घाप पर कैस बलाऊँ।

- १ प्रेमचंद घर में—पृष्ठ १२
- २ बीबनघार

इन्स्पेक्टर बना गया। घायले अपने मित्रों से राय ली कि इस पर कैसे बताना चाहिये। मित्रों ने सलाह दी जाने दीजिये। घाय भी उठे मगकर कह सकते थे। हटाइये इस बात की। मगर इस बात की कुरेदम उन्हें बहुत दिनों तक रही।<sup>१</sup> प्रेमचंद जैसे स्वाभिमानी मनुष्य के जीवन में ऐसी बटना का होना स्वाभाविक बात है। घाये बलकर रैरा पर होनेवाले संघेजो शासन के अत्याचारों से लिप्त होकर उन्होंने अपनी पन्थीस साल की गैकटी पर मात मार दी। अग्निप्राय यह कि प्रेमचंद ने निम्न प्रकार एक निर्पन छात्र का जीवन व्यतीत किया था उसी प्रकार एक समाज प्रसूत अध्यापक का जीवन भी बिताया था। पर शिक्षा के क्षेत्र में उनकी धारणाएँ अिनी महत्त्वपूर्ण होंगी अतः अनुमान बसीभांति लगाना था संख्या है।

'कर्मभूमि में प्रेमचंद शिक्षा का अदरेय बगते हुए मात्र के अध्यापकों के रूढ़-सहज तथा विचारों की आलोचना करते हुए लिखते हैं 'जीवन को सफल बनाने के लिये शिक्षा की जरूरत है, डिप्टी की नहीं। हमारी डिप्टी है हमारा सेवा भाव हमारी मज्जता हमारे जीवन की सरसता। मगर यह डिप्टी नहीं मित्रो मगर हमारी आत्मा बागरिज नहीं हुई, तो काम की डिप्टी व्यर्थ है। उसे (धमरकाँठ) इस शिक्षा ही से मुखा हो गई है। जब वह अपने अध्यापकों को केवल की पुनामी करते स्वार्थ के लिये नाक रकड़ते कम-स-कम काम करके अधिक से अधिक लाभ के लिये हाथ पसाते देखता तो उसे घोर मानसिक बेरवा होती थी। घोर इन्ही महानुभावों के हाथ में राष्ट्र की बागडोर है। यही नीम के बिचाटा है।<sup>२</sup> प्रेमचंद भारत के प्राचीन धारणों के अमल ने अतः अतीत के अध्यापकों की प्रशंसा करते हुए वे लिखते हैं 'जब अमर को उस अतीत की याद आती, जब पुरुष अंपड़ी में रते थे स्वार्थ से अमल सोम से दूर, सात्विक जीवन के धारण, निष्काम सेवा के अयासक। वह राष्ट्र से कम से कम लैकर अतिक देने थे। वह वास्तव में देवता थे और एक यह अध्यापक है जो किसी धर्म में भी एक मामूली व्यापारी या राज्य कर्मचारी से पीछे नहीं। इनमें भी बड़ी इम्न है बड़ी बनमद है, बड़ी अविचार मर है। हमारे विद्यालय क्या है राज्य के विमान है, और हमारे अध्यापक उसी राज्य के धर्म हैं। वे एर अन्धकार में पड़ हुए हैं, प्रकाश क्या कैपायेंगे ? वे घाय अपने मनाधिकारों के कैरी हैं, घाय अपनी इच्छाओं के मुकाम है, और अपने शिष्यों को भी उसी कैर और मुसामो में शामते हैं।<sup>३</sup> इतना अग्निप्राय यह नहीं कि प्रेमचंद गुरुज-अति को पुनर्जीवित करना चाहते थे। बिना युव को अध्यापकों का मात्र भी अनाया आना चाहिए, केवल यह अग्नि अवन अदरानु से निकलती है।

१ प्रेमचंद पर में—पृष्ठ १४ २५

२ कर्मभूमि—पृष्ठ १०५

३ १०५

जिस प्रकार प्रख्यापक बर्ष पर स्पष्ट आलोचना है उसी प्रकार देश के नव युवकों की मनोवृत्ति पर भी प्रेमचन्द न लुप्तकर लिखा है, जिससे उसमें कुछ सुधार हो सके वे लिखा के वास्तविक महत्व को समझ सकें। अधिकतर नव युवक कोई ऊँचा सरकारी पद या नाम की नीयत से ही लिखा प्रहृष्ट करते हैं। 'कमभूमि' में सलीम का यही धारण है, 'बहु एम ए की तैयारी कर रहा था। उसकी अभिलाषा थी कि कोई प्रख्या सरकारी पद या नाम धीरे धीरे ही रहे। बुबार धीरे ही पठन और राष्ट्रीय आन्दोलन से उसे बिरह्य प्रेम न था।<sup>१</sup> एक और स्वयं पर डा० शान्ति कुमार से कहता है, यह तो धान जानते ही है, मैं एक सीधा बुजुर्ग ही नहीं लिख सकता अगर सिवायक कौन देखता है? यहाँ तो लगन देखी जाती है।<sup>२</sup> प्रेमचन्द ने लिखा का उद्देश्य रोटी प्राप्ति कमी नहीं समझा। 'रोटी-रोटी' (Bread and Butter) को लिखा का सिद्धांत मानने वालों के वे बड़े बिरह्यी थे। 'कामाक्ष्य' में प्रेमचन्द का धारण-वाक्य बकबर लिखा और नौकरी पर अपना स्वयं मत अपने पिता बकबर के सामने रखता है—

बकबर— 'मेरी नौकरी करने की इच्छा नहीं है।

बकबर— 'बहु लक्ष्य तुम्हें क्या से सवार हुआ? नौकरी के सिवा और करोगे ही क्या?

बकबर— मैं धाबार रहना चाहता हूँ।

बकबर— 'धाबार रहना था तो एम ए क्यों पास किया?'

बकबर— इसमिर् की धाबारी का महत्व समझूँ।<sup>३</sup>

प्रेमचन्द को बहु बात हास्यास्पद मान्य होती थी 'धारणों केवल पेट पालने के लिये धारी उन्नत पत्र में लवा थे। धारण पेट पालना ही जीवन का धारण ही तो पत्र की बकबर ही क्या? मजदूर एक धारण भी नहीं जानता फिर भी वह अपने धीरे धीरे बाल-बच्चों का पेट बड़े मंत्र से पाल सता है। विद्या के साथ जीवन का धारण कुछ ऊँचा न हुआ तो पत्रण स्पष्ट है।<sup>४</sup> पत्र प्रेमचन्द की बुद्धि में लिखा का प्रबोधन जीवन के धारण को ऊँचा उठता है। तत्कालीन लिखा का उद्देश्य इन विद्यार्थ से कौनों दूर था। पत्र प्रेमचन्द अपने समय की लिखा-पत्रि से बड़े धर्मगुरु थे। बड़े-बड़े विद्वानों की आलोचना करते हुए 'कमभूमि' में वे लिखते हैं जिसके पास जिन्गी नहीं जिन्गी है, उतका स्वार्थ भी उठता ही बड़ा हुआ है। पत्रो कोम और स्वार्थ ही लिखा का महत्व है।

१ कमभूमि—पृ १११

२ २११

३ कामाक्ष्य ७

४ कामाक्ष्य— ७०

परीशों को रोस्टियां व्यवस्तर न हों कपड़ों को तरसते हों पर हमारे स्थिति माइनों को मोटर चाहिए, बैंगल चाहिए, मीकरो को एक पलटन चाहिए ।<sup>१</sup>

घास के विरहविद्यालयों और महाविद्यालयों पर बख्शर से टिप्पणी करवाते हुए प्रेमचंद लिखते हैं 'वीछे घोर भी बोर्जे बनाने के कारखाने पुस पए हैं, चडी लख बिडानों के कारखाने हैं घोर उनकी संख्या हर छाम बढ़ती जाती है।'<sup>२</sup> परिषदी सम्प्रदा की बुराइयों में शिक्षापद्धति का स्वाम प्रमुच है। परिषदी धार्यों से प्रभावित शिक्षा-पद्धति पर घास अमरकान्त के मुख से प्रेमचन्द बड़ा तीखा व्यंग्य करवाते हैं, 'बताना क्या है, परिषदी-सम्प्रदा की बुराइयाँ हम सब जानते ही हैं। बड़ी बयान कर देना।

'मुम जानते होंगे मुझे तो एक भी नहीं जानुम।'

'एकतो यह तालीम ही है वहाँ देखो वही दुकानाये। अरतलत की दुकान इसम की दुकान सेहत की दुकान। इस एक पाइस्ट पर बहुत पुस कहा जा सकता है।'<sup>३</sup>

इसी प्रकार डा० शान्ति कुमार के माध्यम से ही प्रेमचन्द पारिभाष्य शिक्षा की मातोचना करते हुए अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। डा० शान्ति कुमार की 'तालीमी इसमाह' पर स्वीच हीने वाली है। डा० शान्ति कुमार के शब्दों में 'यह किराये की तालीम हमारे कॅरेक्टरों को लबाह किये डालती है। हमने तालीम को भी एक व्यापार बना लिया है। व्यापार में ज्यादा नफ़ा होना। तालीम में ज्यादा खर्च करी ज्यादा ऊँचा माइश पाघोये। मैं चाहता हूँ ऊँची से ऊँची तालीम सबके लिए मुपाऊ हो ताकि बरीब से बरीब धारयो भी ऊँची से ऊँची लिपाकत हाविल कर सके और ऊँच से ऊँचे पोइदे को पा सके। युनिवर्सिटी के दरवाजे में सबके लिए खुले रहना चाहता हूँ। सारा खर्च पब्लिसिटी पर पड़ना चाहिए। मुस्क की तालीम की सबसे बड़ी ज्यादा खरत है खिजनी खीब की।<sup>४</sup> खीब घोर शिक्षा के इस अनुपात को प्रेमचन्द ने समझ या टिप्पणी भी देत की रखा मात्र सांक्रिक-सजिन बड़ा देने से नहीं हो छरनी जब तक कि उस देश के नकमुबक उच्च धार्यों को बाहक शिक्षा प्रदूय नहीं करते। गैर है, प्रेमचन्द के इन विचारों पर नबोरिन राष्ट्र के बर्खबार ध्यान नहीं देते और बहो किराये की शिक्षा क्यों की क्यों बायब है जो माबी पीड़ी के खरिन को मज कर रही है।

'इर्ममूदि' प्रणाली का प्रारम्भ हो सांक्रिक-शिक्षा पर व्यय के साथ होना है। सांक्रिक संस्थाओं का मयार्थ चित्रण करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं, हमारे

१ बमबूमि—पृष्ठ १६

२ बायाबल—, ७

३ बर्ममूदि— ६

४ " ७७

स्कूली और कलेजों में जिस तत्परता से चीस बसून की जाती है, शाबर मास पुकारी भी उसी सखी से नहीं बसून की जाती। महीने में एक दिन नियत कर दिया जाता है। उस दिन चीस बाकिल न हो। येर कुछ जुमाना बीबिए। कहीं कहीं ऐसा भी नियम है कि वही दिन चीस बुझनी कर दी जाती है, और कियो दूसरी तारीख को चीस बुझनी न दो। वो नाम कट जाता है। कहीं के क्वीस क्वीस में मही नियम बा। ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके बिना और क्या हो सकता बा कि मरीजों के लड़के स्कूल छोड़ कर भाग जाएँ। यही हृदयहीन बफरते हासन जो धर्म विचारों में है। हमारे विचारकों में भी है। नह किती के साथ रियायत नहीं करणा, बाड़े जहाँ से नामो कर्म को पहने गिरो रको सोटा पानी बैको, कोटी करो मयर चीस बकर को नहीं बुनी कीत बेनी बनेनी या नाम कट बायया। क्वीस और बापदाय के कर बसून करने में भी कुछ रियायत की जाती है। हमारे विचारकों में कर्मों को बुझने ही नहीं दिया जाता। यही स्वाधी रूप से मार्क्स ना का व्यवहार होता है। हेर में धाएय तो जुमाना न धाएय तो जुमाना सबक बाह न हो तो जुमाना कितानें न खरीब मकिय तो जुमाना कोई अपराध हो बाय तो जुमाना विचारक क्या है जुमानालय है। यही हमारी बरिबनी विद्या का धारक है, जिसकी तारीखों के पुस बोये जाती है। यदि ऐसे विचारकों के पीछे पर जान देनेबाने पीछे के निवे मरीजों का गला कटनेबाने पीछे के निवे अपने धारमा तक बेच देनेबाने बाह निकलत है, तो धारकय क्या ? १ प्रेमबंद धारों पर होनेबासे जुमाने के पक्ष में नहीं बे। जुमाना करने की पद्धति भी परिबक से ही धाई जिसने इस निर्जन देश को पहने से ही मँहली विद्या को और मँहली बना दिया। इन बलों का विचारों के मन पर क्या असर पड़ता है, इस बात को प्रेमबन्द धारों को धारक बायते बे, क्योंकि उन्होंने स्वयं एक निर्जन विचारों का बीबन बिताया बा। और जब 'कामाकल्प' में मनोरमा से बहवर कहुता है, "हमारे विद्या ने हमें पतु बना दिया है।" तो पारबाय विद्या धीर कस पटति की निस्धारता ब्यका करने की हद हो जाती है।

'प्रेमाधम' के प्रारम्भ में धारोंको के मुत्र से प्रेमबंद धारुनिक विद्या पर ब्यय करवाते हुए लिखते हैं, दुखरन कहुता है, "कहुते हैं कि विद्या से धारको की बुद्धि ठीक हो जाती है, पर यही उस्त्य ही देखने में माया है। हर हाकिम और धमनी पने-निबे विद्वान् होते हैं, लेकिन किती को क्या धर्म का बिचार नहीं होता।" २ मनोहर

१ कर्मभूमि—पृष्ठ २

२ कामाकल्प— १२१

३ प्रेमाधम— २

प्रेमचंद ने रिखा का महत्व प्रारम्भ से ही मनीमति समझ लिया था। रिखा किसी भी समाज की मनोवृत्तियों का आधार होती है उसको जेबेचा मनी बनकर बड़ा कड़वा फल देती है। जेबेचा के प्रतिरिक्त गन्त बंग की नई पीढ़ी को पच भ्रष्ट करके समाज को प्रयोगित की ओर ले जाती है। प्रेमचंद के रिखा-शास्त्रो होने में तनिक भी संदेह नहीं किया जा सकता। बरदान' जैसे प्रारम्भिक उपन्यास में ही हम उसको बाल-मनोविज्ञान के पाठा के रूप में पाते हैं। बच्चों को रिखा क्रिम बंग से ही बाय उसका उन्नेख बरदान में मिलता है। पुराने बंग की रिखा प्रखामी का पच्छा-बासा मजाक प्रताप बिरजन और मुंठी जी के संवाहों में मिश्रित है, प्रताप धीरे-धीरे कुछ हिचकिचाता एकुचाता समीप आया। मुंठीजी ने प्लुक् प्रेम से उसे मोर में बैठा लिया और पूछा 'तुम मनी कौन तो किताब पढ़ रहे थे ?

प्रताप बोलने को हो या कि बिरजन बोले उठो बाबा पच्छी-पच्छी कहा-  
गियाँ बी। क्यों बाबा ? क्या पहले चिट्ठियाँ भी हमारी मति बालें करती थीं ?

मुंठी जो मुक्कटाकर बोले हाँ वे लुब बोलती थीं। मनी उनके मुँह से पूरी बात भी न निकलने पाई थी कि प्रताप बिरजा संकोच सब पावब हो बसा या बोला नहीं बिरजन तुम्हें मुनाते है। वे कहानियाँ बनाई हुई है' मुंठी जी इन निर्भीकतापूर्वक त्वरण पर लुब हँस।

यब तो प्रताप तोते की मति बहकने मया, संवा जी का पानी नीला है। ऐसे जोर से बहता है कि जोब में पहाड़ भी हो तो बह जाय। वही साबु बाबा है। रैम वीङ्गी है सल-सल। उसका इतिज बोलना है 'मक-मक । इतिज में भाव होनी है उसी के जोर ने गाड़ी चलती है। गाड़ी के साथ पेड़ भी दौड़ने दिखार्द रहे है।'

— बिरजन बिज की मति बुतबाय बीड़ी हुई मुन रही थी। रैम पर बह भी हो तीन बार मबार हुई थी। परन्तु उसे धात्र तक यह न बात या कि उसे किमने बनाया और बहू बवोंकर बसती है। बा बार बसने गुरमी से यह प्ररन क्रिया या परन्तु उन्नीने यही कह बर टाम दिया कि बन्ना ईरबर की महिना धारदार है। बिरजन ने भी समझ रगा कि ईरबर की महिना का बड़ा मारी बनवान पादा है बा दगनी गाड़ियों का मन्-मन् गीचे तिये जाता है। जब प्रताप चुप हुआ तो बिरजन ने पिना के पने में हाथ डालकर कहा 'बाबा हम भी प्रताप की विज्ञाब पढ़ेंगे।

मुंठी—बैग तुम ती संकृत पाती हो यह जाणा है।

बिरजन—ता मैं जाया ही पढ़ूँगी। इमने मैंनी पच्छी-पच्छी बगानियाँ

है। मेरी विद्या म तो एक भी कहानी नहीं। क्यों कामा पढ़ना कैसे कहते हैं ?

मुंशीजी बगमें झूठकने लगे। इन्होंने ध्यान तक ध्याप ही कभी ध्यान नहीं दिया था कि पढ़ना क्या बस्तु है ? धर्मो मे माया ही जुबमा रहे मे कि प्रताप बाल उठा मुझ तुमम पढ़ते देखा उसी को पढ़ना कहते हैं।

बिरबन— क्या मैं नहीं पढ़ती ? मेरे पढ़ने को पढ़ना नहीं कहते ?

बिरबन—'सिद्धान्त-कीमुबी' पढ़ रही थी। प्रताप ने कहा "तुम तोते को भीति रटती हो।"<sup>१</sup>

ये सभी बातें प्रेमचन्द के व्यावहारिक ज्ञान की परिचायक हैं। इस प्रकार बाबूकों के मनोबिज्ञान पर भी प्रेमचन्द लिखते हैं। छात्रियों के ब्याल धीर बकीला की सुखम घामोचताओं के तत्व को समझना इतना कठिन नहीं है, जितना किसी निरक्षराही लड़के के मन में सिद्धा की रचि उत्पन्न करना।<sup>२</sup>

प्रेमचन्द विद्यार्थियों को मात्र पाठप-पुस्तकों का कीड़ा बना देना नहीं चाहते। वे उनका समाज के विस्तृत क्षेत्र में भी ले जाते हैं। बरदान म वे लिखते हैं प्रताप चन्द उन विद्यार्थियों में से म था जिनका धारा बहोत बस्तुता धीर पुस्तका एक ही सीमित रहता है। उसके समय धीर योग्यता का एक छोटा भाग बनता के भाग्यार्थ भी व्यक्त होता था। बहुधा संख्या समय वह कीर्त्यार्थ धीर कटप की दुर्गन्धि-पूर्ण नलियों में घूमता बिबाई देता, जहाँ बिरोपकर नीच भाति के लोग बतते हैं। जिन लोगों की परछाईं से उष्ण बर्ष का हिन्दू भागता है, उसके साथ प्रताप टूटी छाठ पर बैठकर घंटों बातें करता।<sup>३</sup> रंगभूमि म भी जिनकी की मृत्यु पर बाइबी बहु बीपछा करती है, "बास बन्धों बानों से मेरा निवेदन है, अपने प्यारे बन्धों को बकरी का बिन न बनाओ गृहस्थी का मुसाम न बनाता। ऐसी सिद्धा की कि जिसे, किन्तु जीवन के बास बनकर नहीं स्वामी बनकर।"<sup>४</sup> प्रेमचन्द के शब्दों में "सिद्धा का फल यह होना चाहिए कि तुम बिरोपरी के सुखभार बना उसको सुभारने का प्रयास करो न कि यह कि उसके बबाब से अपने सिद्धान्तों का भी बसिदान कर दो।"<sup>५</sup>

'बास' की चर्चा धाजकल बहुत है। धाजाय बिमोबा माने न उन्मुर्छा देत म जिस मनोवृत्ति का प्रसार किया है उसका सही प्रेमचन्द के उत्प्रास कर्मभूमि

१ बरदान—पृ १२११

२ " २७

३ बरदान— १०६

४ रंगभूमि (भाग २)—पृष्ठ १८५

५ प्रेमचन्द , १९६



में भी विद्यमान है। देखोका अपनी पुत्री सुखदा से कहती है, 'मंदिर तो यों ही हो रहे हैं, कि पूजा करनेवासे नहीं मिलते। टिछादान महादान है।' 'टिछादान महादान' का तात्त्विक अर्थ प्रेमभाव यदि प्रायः पीडित होते तो 'भूदान' की तरह टिछादान भी देण्ड की नीब मुद्रक करने में कितनी बड़ी भूमिका धरता इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

## औद्योगिक समस्या

औद्योगिक समस्या को प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' और 'मोक्षान' में उठया है। 'रंगभूमि' के प्रमुख उद्योगपति जॉन सेबक है तथा 'मोक्षान' के मिस्टर चन्द्रप्रकाश तथा। एक तम्बाकू का कारखाना खोलते हैं तो दूसरे की शक्कर की मिल है। प्रेमचंद न अपने इन दो उपन्यासों में उद्योगपतियों की योजनाओं उनके पीछे औद्योगिक नीतिकृता तथा औद्योगीकरण के बुद्धिबिद्याओं पर प्रकाश डाला है।

इस स्थल पर यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या प्रेमचंद औद्योगीकरण के विरोधी थे? जमीन पर से एकाधिकार उठता देखकर अधिकांश पूंजीपतियों ने बगहू-बगहू बड़े-बड़े कारखाने खोलने प्रारम्भ किए। जिससे उनकी पूंजी सुरक्षित रहे उनके और समस्त धानुनिक साधनों के माध्यम से वे मजदूरों का शोषण करके अधिक से अधिक मुनाफ़ा बना सके। औद्योगीकरण के पीछे मुनाफ़े का बुद्धिकोण प्रमुख है। प्रेमचंद इसी पूंजीवादी औद्योगीकरण के विरोधी थे जिसमें मानवीय मूल्यों का कोई स्थान नहीं दिया जाता। 'रंगभूमि' और 'मोक्षान' में तम्बाकू और शक्कर के कारखानों को प्रतीक मानकर पूंजीशाही मना कति को प्रेमचंद ने हमारे रखा है और यह बताया है कि ऐसे औद्योगीकरण से बनता का कोई लाभ नहीं हो सकता। उसे प्रेमचंद ने शोषण का एक नया हथियार ही बताया है, तथा जिसके परिणाम कोई कम भयावह नहीं है। किसानों और मजदूरों का शोषण प्यों का त्यों बना रहता है। यद्यत् प्रेमचंद उद्योगों और औद्योगीकरण के विरोधी नहीं थे पूंजीशाही औद्योगिक प्रकृति के कट्टर विरोधी थे। तम्बाकू और शक्कर के उपर्युक्त कारखानों के माध्यम से उन्होंने पूंजीशाही-वर्ष का मज्ज-विषण करके उनकी मज्जबुतियों के प्रति घृणा को जन्म दिया है। जॉन सेबक के कारखानों के प्रति पाठक ज्येष्ठ से भर उठता है। मिस्टर चन्द्रा भी पाठक की सहानुभूति उस समय तक प्राप्त नहीं करते जब तक उनकी शक्कर मिल तथाह नहीं हो जाती। अभिप्राय यह है कि प्रेमचंद ने औद्योगीकरण के प्रपचा पूंजीशाही व्यक्तियों से विरुद्ध न सिद्ध कर वर्तमान औद्योगिक-व्यवस्था के विरोध में निज है।

धातुनिक सम्पत्ता का आधार बन है। पनिक धपनी इच्छापूर्ति मात्र सहज ही कर सकता है। समस्त शासकीय मशीनरी को उसने पेटों के बन धपने बल में कर रखा है। 'रैबूमि' में बाँस सेबक कहला है, वह स्यापार राज्य का युग है। बोरोप के बड़े-बड़े कनिष्ठालो साम्राज्य पुँबीपठियों के इतारों पर बसते बिय डते हैं, किसी नवनमेट का साहस नहीं कि उनकी इच्छा का विरोध करे। तुमन मुझे समझ क्या है, मैं वह नरम खात नहीं हूँ जिसे बचाक घोर महेश ता बाँसे। १ पठ पुँबीपठि-बर्न घानवीय मुस्नों को बला घटाकर बलघनी योज गावें टीमार करता है घोर कस्ता को धपार कष्ट पहुँचाकर उन योजनाओं को फसीमूज होते बैसने के प्रयत्न करता है, जिसमें उक्त सफलता भी निपटी है। रैबूमि में बाँस सेबक तम्बाकू का कारखाना खोलने की नूमिका टीमार करता हुआ कहला है, 'मेरा इरादा है म्युनिसिपैलिटी के बेपरवैत साहब से बियकर यहाँ एक शराब घोर ताड़ो की दुकान खुलवा दूँ। तब घास-गाम के बमार यहाँ रोज घापेंगे, घोर घापको उमठे मेस-बोल पैदा करने का व्यवहार मिलेगा। २ नगर के कित्तों की रक्षा करने वाली संस्थाओं को ये पुँबीपठि मनों धपनी जेबी संस्था समझते हैं। बल के बल पर पेटों में नेहूँ-बो के खान पर तम्बाकू की छती करवा लेना भी उनके लिए साधारण बात है। तम्बाकू की पेंनी के प्रत्य पर बाँस सेबक पूर्ण विरहास के साथ कहला है कच्छा घास पैदा करना इच्छा का ब होबा। कितान का ऊँच या बो-बैहूँ न कोई प्रन नहीं होता। वह जिसक पैदा करने में धपना लाभ बैठेगा वही पैदा करेगा। ३ इन स्थल पर प्रेषकाय ने उद्योगपठियों की कैतिकता पर तीव्र प्रहार किए हैं। हुँघर साहब घोर बाँस सेबक का निम्नसिलिल बाठावाप प्रेमबंर के इतिहास को स्पष्ट कर बैठा है। घान सेबक निजी स्वार्थ घोर मुन.के को बामला को घाड़ में घला बनकर कहला है 'हमारी जाति का बढार बसा-कौस्तुभ घोर उद्योग की सप्रति में है। हम निगरेट के बारकाले से कम से कम एक हजार घारमियाँ के जीवन की सप्त्या हल हो जायसी घोर पेंनी के सिर से टनवा बौध टन जायगा। जिसनी बनीन एक घावमो घच्छी ठाड़ मोठ को उबता है, सममें घर मर का मगा रहना ध्यक है। मेरा कारखाना ऐम बेरातों को घानी रोटी बनाने का व्यवहार देगा।

हुँघर साहब—“सैबिब तम्बाकू को घच्छी योज तो नहीं। इसकी मरुता मादक बस्तुओं में है घोर स्वास्थ पर इसका बुरा घसर पड़ता है।

बाँस सेबक— (इस कर) में सब डाक्टों को कोटी बलमाना है। जिन

१ रैबूमि (भाग १) पृष्ठ १२२

२ वही " १४

३ " " १६

पर गम्भीर विचार करना हास्यास्पद है। डाक्टरों के आदेशानुसार हम जीवन व्यतीत करना चाहें तो जीवन का अस्त ही हो जाय। व्यवसायी लोग इन गोरखबंधों में नहीं पड़ते। उनका मध्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है। हम देखते हैं कि इस देश विदेश से कटीफों रुपये के सिगरेट और सिगार आते हैं। हमारा कर्तव्य है कि इस भल प्रवाह को विदेश जान से रोके। हमने बगैर हमारा धार्मिक जीवन कभी पतन नहीं सकता। <sup>१</sup> व्यवसायी लोग इन गोरखबंधों में नहीं पड़ते यह मिच्छकर प्रेमचंद ने धार्मिक औद्योगिक समाज की मनोवृत्ति का परिचय दे दिया है। सम्मान का नाराखाना खोलने के पक्ष में जान सेबक ने जो दलीलें दी थीं उनका कुंघर साहब पर अंतर पड़ता है और वे ५ • डिस्टे लेने का बचन देने हैं। वहाँ प्रेमचंद ने ऐसे बनावटी बेशकतों पर भी व्यंग्यात्मक छींटे मारे हैं। “तुमने देश की व्यावसायिक उन्नति के लिए नहीं अपने स्वार्थ के लिए यह प्रयत्न किया है। देश के सेबक बनकर तुम अपनी पाँचों रँगसियाँ भी मे रचना चाहते हो। तुम्हारा मनोव्यक्ति अत्यंत यही है कि लफे का बड़ा भाग किमी न किसी हीने से प्राप्त करना करो। तुमने इस लोकोक्ति को प्रमाखित कर दिया कि बनिया मारे जान और मारे अनाज। <sup>२</sup> हॉवी ईरवर-भक्त ईरवर-सेबक जान सेबक का समर्पन करता हुआ कहता है ‘लुबा मुक्त पर क्या बुद्धि करे। बेटा रंग मिलावे बगैर भी बनिया का कोई काम चलता है? सफलता का यही मूल मंत्र है और व्यवसाय की सफलता के लिए ता यह सबका अनिवार्य है। <sup>३</sup> प्रभु सेबक के मुख से प्रेमचंद धार्मिक व्यावसायिक मनोवृत्ति की तीव्र भ्रष्टता करते हुए लिखते हैं, “व्यवसाय कुछ नहीं है, अगर नर हत्या नहीं है। धारि से अन्त तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धान्त है। जो यह नहीं कर सकता वह सफल व्यवसायी नहीं हो सकता। <sup>४</sup>

इस प्रकार प्रेमचंद ने औद्योगिक नैतिकता का विस्तृत वर्णन करके उद्योग पतियों की मनोवृत्तियों के विरुद्ध अनामत टीपार किया है। देश के औद्योगिककरण में जब इस प्रकार के लोग काय कर रहे हैं तब उनसे साधारण जनता और देश को कोई लाभ नहीं पहुँच सकता।

उपर ‘शोभान’ में मिस्टर अक्षयकांत खन्ना जो एक बक के मनेजर और शक्कर मिल के मैनेजिंग डायरेक्टर है इसी मनोवृत्ति का परिचय देते हैं। शक्कर मिल के जन जाने पर मि० खन्ना स्वयं अपनी नैतिकता को उबार कर हमारे सामने रखते हैं, ‘जान नहीं आते मिस्टर मेहता मन अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है।

१	रंगभूमि (भाग १)	पृ० ७१-८०
२	रंगभूमि (भाग १)	८४
२	वही ( १ )	१८१
४	” ( , २ )	१८०

'एजेन्ट—जब धाप जैसे विचारशील उद्यमन व्यापारिक उद्योग से पुनर् रूढ़ि तो इस धागे के ही उन्नति सर्वै एक मनोहर स्वप्न ही रहेगी ।

उपसाहब—म ऐसी व्यापारिक संस्थाओं को देखोकार की कुंजी नहीं समझता ।..... धापको यह कंपनी धनवानों को धीरे धनवान बनायेगी धनता की इससे बहुत लाभ पहुँचने की सम्भावना नहीं । निस्तयैह धाप कई हजार कुतियों को काम में लया देने पर यह मजूर धनिकों का किसान ही होंगे धीरे में किसानों को कुली बनाने का बहुत विरोधी है । मैं नहीं चाहता कि यह मोम के बरत अपने बाल-बच्चों को छोड़ कर कम्पनी की धानियों में जाकर रूँ धीरे धनता धावरण भ्रष्ट करें । अपने नाँव में उनकी एक विशेष स्थिति होती है । उनमें धाम्प्रतिष्ठा का भाव जाग्रत रहता है । बिदायी का मय उन्हें गुनार्ण से बचाता है । कंपनी की शरण में जाकर यह अपने घर के स्वामी नहीं दूसरे के गुनार्ण हो जाते हैं धीरे बिदायी के बच्चों से मुक्त होकर नाना प्रकार की मुशकिलों करने सकते हैं । कम से कम मैं अपने किसानों को इस परीक्षा में बाधना नहीं चाहता ।

एजेन्ट—धमा कीजियेगा आपने एक ही पक्ष का धिन खींचा है । धपा करके दूसरे पक्ष का भी धनमोरन कीजिये । हम कुतियों को जैसे बरत वीसा मोरन जैसे घर बैठे हैं, जैसे धिन में रहकर उन्हें कभी नहीं हो सकते । हम उनकी दबा बाक का उनकी सन्तानों की शिक्षा का उन्हें मुनाफे में सहाय देने का उचित प्रबन्ध करते हैं । यहाँ तक कि हम उनके धनमोरन धीरे ध्यायान की भी धनस्था कर बैठे हैं । यह चाहें तो टैगिस-कुनबास खेल सकते हैं । चाहें तो पाकों में धीरे कर सकते हैं । सप्ताह में एक दिन माने बनाने के लिये समय से मुन्य पहले ही धुँटी दे ही जाती है । यहाँ तक में समझता हूँ कि पाकों में रहने के बाद कोई कुली फिर लेती करने की परवा न करेगा ।

उपसाहब—नहीं मैं इसे बर्नाई स्वीकार नहीं कर सकता । किसान कुली बनकर कभी अपने माय-बिघाता को धनवान नहीं दे सकता उसी प्रकार जैसे कोई धारमी ध्यायार का स्वतन्त्र एक मोरने के बाद मोरणी की पक्षपीनता को पसंद नहीं कर सकता । संभव है कि धनवी दीनता जैसे कुली बने रहने पर मजूर करे पर मुझे धिरबाम है कि यह इस धानता से मुक्त होने का धनमर पाने ही तुल्य अपने घर की राह मीसा धीरे फिर उगी दूटे-दूटे खोंपड़े में अपने बालबच्चों से साथ रहकर सन्तोप के छाव धानधेन करेगा । धापको इनमें संदेह ही तो धान धनक कुतियों से एकाध में पुनकर धाना सन्तोपान कर सकते हैं । मैं धाने धनु मज के धाधार पर यह धान बहता है कि धान तोप इन धिन में बोटीरधामों का धनुकरण करके हमारे राष्ट्रीय जीवन के मुनों का सर्वनाश कर रहे हैं । योरोप में Industralism की जो उन्नति हुई उगने विरोध नारण है । यहाँ

के किसानों की रक्षा उस समय मुसामों से भी गरीब पुबरी की वह जमींदार के बन्धी होते थे। इस कठिन कारावास के देखते हुए जनपतियों की कैद गनीमत थी। हमारे किसानों की प्रायिक रक्षा चाहे कितनी ही बुरी क्यों न हो पर वह किसी के मुसाम नहीं है। अगर कोई उन पर बर्तावार करे तो वह मर्यादों में उससे मुक्त हो सकते हैं। नीति की दृष्टि में किसान और जमींदार दोनों बराबर हैं।<sup>१</sup>

प्रेमर्षद बरेल्लुघर्षों के पक्षपाती थे। गरीब प्रीयोगीकरण से बरेल्लु उद्योग बन्ने पनप नहीं सकते अतः उन्हें सुरक्षा की ज़रूरी चाहिए। ऐसा करने से देश और जनता को लाभ हो सकता है जो प्राथमिक प्रीयोगीकरण से सम्भव है—

‘उन्हें घर से निर्वासित करके दुर्गम के भाग में फँसाएँ, उनके धारणा भिमान का सबनाश न करें और यह उद्योग देश में हो सकता है जब बरेल्लु सिम्प का प्रचार किया जाय और वह अपने माँस न कुछ और बिरादरी की तीव्र दृष्टि के सम्मुख अपना-अपना काम करते रहें।

एजेन्ट—घासका घमिप्राय Cottage industry से है। समाचार-पत्रों में कहीं-कहीं इसकी खर्चा भी हो रही है। किन्तु इसका सबसे बड़ा पक्षपाती भी यह दावा नहीं कर सकता कि इसके द्वारा धान बिदेसों का सफलता के साथ प्रदोष कर सकते हैं।

रायसाहब—इसके लिये हमें बिदेसी वस्तुओं पर कर लगाना पड़ेगा। योरोप बाल दूसरे देशों से कच्चा माल ले जाते हैं जहाँ किराया रैत है, उन्हें मजूरों को कड़ी मजदूरी देनी पड़ती है उस पर हिस्सेशायों को लफ्फ भी लूब चाहिये। हमारा बरेल्लु सिम्प इन उपलब्ध बाजारों से मुक्त रहेगा और कोई कारण नहीं कि उचित संवटन के साथ यह बिदेसी व्यापार पर विजय न पा सके। वास्तव में हमने कभी इस प्रश्न पर ध्यान नहीं दिया। पूंजी वाले लोग इस समस्या पर विचार करते हुए बरते हैं। वे जानते हैं कि बरेल्लु शिफ्ट हमारे प्रभुत्व का घण्ट कर देगा। इसीलिए वह इसका विरोध करते हैं।<sup>२</sup>

इस प्रकार प्रेमर्षद अपने जपम्याओं की विशाल पृष्ठभूमि तैयार करते हैं, जिससे देश को अनेक समस्याओं का उसमें समावेश हो सके। जपम्याओं के माध्यम से बड़े सरल बङ्ग से उन्हीं जपम्यीर प्रश्नों की विवेचना की है तथा उनका व्यावहारिक रूप दिखाकर समाज को उचित मार्ग खोजने के लिए मन्थन किया है।

१ प्रेमाधय—पृ० १२४-१६

२ वही " १२३-१२४

घोर दरबार को घपेबा भूत-पिशाचों से व्याप्त करी रहती थी। पाठ-परीख में पिशाच-सीमा देखने के अनन्तर घपे-दिन मिलते ही रहते थे। भुत्ताओं के पंज मंत्र नहीं व्याप्त लागू होते हैं, यह भी समझती थी। जीवन बेधम में तलपरी पिशाच नीरता को लक्षित करके अपनी विषम शक्तुरी का परिचय दिया। अनुनी धरमौठ होकर बोली, "नहीं बेधम छाह्व घापको भी मगवान् मे बास-बन्ने बिने है ऐसा पुनम न कीबिएबा, नहीं तो मर जाऊँगी।" १

पूर्व जन्मका पर विरवास भी एक धरम-विरवास ही समझा जाता है। धानु निर-सिद्ध-प्राप्त सोचों में पूर्व जन्म पर विरवास बहुत कम पाया जाता है, पर, ज़ारीय घपड़ जगता तो तब प्रतिगत पूर्वजन्मका भी विरवासी होती है। मधुरों का धानुनिक सोपक-धर्म पूर्वजन्म के सिद्धान्त की छाड़ में ज़ारीयों का सोपक कीर घपना स्वार्थ सिद्ध करते हुए देखा जाता है। 'रंगभूमि' का मुरदात पूर्व-जन्म पर घटम भास्वा रतता है। सुभायी उसके कोरी नए भयों का नेर जठे बला देती है, जिस पर मुरदात कहता है, मेरे दामे मे ही नहीं छापर जठ जन्म में मेने तैरों के रूपे चुटाए होये। २ इसी प्रकार मोदान का होरी पुनर्जन्म में विरवास रतता है। घपने पुन मोबर से यह कहता है, 'यह बात नहीं है केटा छोटे-बड़े मगवान् के बर से बनकर पाते हैं। सम्पति बड़ी तपस्का से मिलती है। जहाँनि पुन-जन्म में बीसे कर्म बिने से बसका घालन मोग रहे है। इजने कुछ नहीं लंबा ली मोये क्या? ३

जीवन के अनेक घपेड़ों में बास्तव में घामोख-जगता को धाम्यवासी घोर पूर्व-जन्म का विरवासी बना दिया है। शत्रुगिरीयों से उनका सोपक हुआ है। जब जब क्रिस्तन ने सिर उठाया तब-तब जठे नुपी तख कुचल दिया गया। क्रिमानधर्म का घलमघलित होना इसके पीछे प्रमुख कारण कहा जा सकता है। बुनों के बदन बळ में पीछे क्रिस्तन डरपोक हो गए हैं। जमीनार के पाँच तने नर्धम दबो होने के कारण वे घपने मगबोचित धरिभरों तक को मीय करने में डरते हैं। घेनर्धम ने क्रिस्तनों की इस डरपोक मनोभूति का घलसेत दिया है। बारकों की तख से घपने 'उपास्य बौ भूटी घलंबा नहीं करते। क्रिस्तनों के प्रति घनके हृदय में जो घनार प्रेम और सहानुभूति है वह बास्तविकता को नहीं बहाडी। 'मोदान का होरी घनेक स्वकों बर घपनी डरपोक प्रकृति का परिचय देना है। यथा, 'यह इती जिनने-जुमते रहने का बरताव है कि अब तक जान बची हुई है। नहीं तो नहीं पना न मघता कि बिपर घने। मीय में रहने घारपी लो है, क्रिप बर बेरजनी नहीं

१ रंगभूमि (घाम) पृ० १०२

२ वही " २५

३ मोदान " २९

पाई ? किस पर कुड़की नहीं घानी ? जब दूसरों के पाँवों वाले अपनी गर्दन बची हुई है, तो सब पाँवों को सहजाने में ही कुशल है । १

‘पानी में रङ्गकर मगर से बैर नहीं किया जाता ।’

अनेक घमावों और कष्टों का होते हुए भी भारतीय किसान का चरित्र अत्यन्त हीरोय है वह बयाबाज नहीं होता । प्रेमचंद उसकी सुबियों और स्वार्थी-मनोवृत्ति का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए लिखते हैं— किसान अपना स्वार्थी होता है इसमें सन्देह नहीं । उसकी गठ से विरक्त के जैसे बड़ी मुश्किल से निकलते हैं मास-सास में भी वह चौकस होता है, ध्यान की एक-एक पाई छुड़ाने के लिए वह महानिष्ठ की बंटों बिटौरी करता है । जब तक अपना विरवाह न हो जाय वह किसी के फुसलाने में नहीं आता । २

किसान की स्वार्थी-मनोवृत्ति के पीछे उसका होपण और उस पर होने वाले प्रत्याचार हैं । बर्षों-बारों के अमानवीय व्यवहार से वह बस्त है । जब कभी उसका सह-अनुभूतों से सम्बन्ध आता है वह अपने स्वार्थ को भूल जाता है । कर्मभूमि में समरकाण्ड समीप के अफसरी अमानमान पर हंसकर कहते हैं, वह बेचारे किसान ऐसे गरीब है कि थोड़ी-थोड़ी हमदर्दी करके उन्हें अपना मुनाम बना सकते हो । हुकूमत वह बहुत भेन चुके हैं । जब अमानमानी का दर्शन चाहते हैं । ३ प्रेमचंद को सामोय-जीवन नागरिक-जीवन से अविश्रम मिय है । स्वार्थ-आश्रय के होते हुए भी विश्व धारणीमता के दर्शन सामोय अन्त में है वह नागरिक-अन्त में दुर्लभ है । विवाहपन में प्रेमचंद लिखते हैं— ‘सामोय-जीवन में एक प्रकार की अमता होती है जो सामोयिक जीवन में नहीं पाई जाती है । एक प्रकार का स्नेह-अन्त होता है जो सब प्राणियों को, चाहे छोटे हों या बड़े बाँधे रहता है ।’

नाश के लोप साठिप्रिय होते हैं । जहाँ तक होता है वे अज्ञानों से दूर रहते हैं । ‘पोशन’ का ‘होरी’ अज्ञानों से बचने के लिए पम का लोप वेगकर समझता है । प्रेमचंद लिखते हैं ‘होरी’ की कृपक प्रवृत्ति अज्ञानों से भावली थी । बार-बार मुन कर बम या आना इनसे कहीं अज्ञान है कि अत्यन्त में अज्ञान ही । वहीं भारतीय हो आन, ही आना-मुनिष्ठ हो बँधे-बँधे फिरो सबकी बिटौरी करते । अज्ञान की बूल प्योको खनी बारी अज्ञान में मिल जाय । ४ इसी प्रकार ‘कर्मभूमि’ में

१	पोशन—पृष्ठ १	
२	“	१०२
३	“	११
४	कर्मभूमि	२५२
५	सामोयिक	१८
६	पोशन	१५



पुमान्, (एतने शत्रुओं के सम्मुख धाने का नीर में साहस न था। धात्र तमान् भी न मिला कि उसी से मम बहसता। अपना मुसका लाता था; पर शीत में वह भी मुसक नया। बैचाप फटे वीरों को पेट में डाल कर हार्यों को बाँधों के बीच में दबाकर धीर कम्बल में मुँह छिपाकर अपनी ही धम शीशों से अपने को बर्ष करके की खेप कर रहा था। कम्बल तो बसके जन्म से भी पहने वा है। बचपन में अपने बाप के साथ वह इसी में छोटा था बचानी में दोबर को लेकर दही बन्धन में उठके जाड़े फटे से धीर बुझाने में धात्र नहीं बूढ़ा कम्बल बसका साथी है पर अब वह भोजन को खाने वाला दंत नहीं दुकाने वाला दंत है। जीवन में ऐसा तो कोई दिन ही नहीं आया कि जगान धीर बहाम्न को लेकर कभी कुछ बचा ही।<sup>१</sup>

भारतीय किताबों की सबसे ज्वलंत समस्या ज्ञात्र के बोध से मुक्त होने की है। प्रेरक-दशमीन ही नहीं बरिफ धात्र भी धर्मिकीरा किताब महामनी-धर्मता के पाठ के नीचे बुरी छछ से पिठ रहे हैं। प्रबंध में बताया कि इन किताबों के लिए "कर्म वह वैहमान है, जो एक बार धाकर जाने का नाम नहीं लेता।" १ 'गोशान' का 'होटी बहुत कुछ ज्ञात्र-धार के कारण ही धारमम कष्ट बढाता है धीर अपने जीवन को गष्ट कर लेता है। होटी धीर धर्म किताब के ज्ञात्र की बर्षा करते हुए प्रेरक-दश किताबे धर्मिक धर्म के साथ लिखते हैं, "कर्म में सब कुछ समिहान पर तीन देने पर भी धमी उन पर कोई तीन मी का कम वा जिय पर कोई यो अपने मुह के बाते करते थे। मैंक साह है धात्र धर्म धाम हुए बैम के लिए साठ धरने लिये थे। उनमें साठ दे बुका था पर यह साठ धरने ज्यों के रवों बने हुए थे। बाताहीन पंडित से तीस धरने लेकर धाम् बोये। धाम् तो धीर गोर से धमे धीर उन तीस के इन तीन बरमा में ही हो धरने थे। दुभायी विपवा सहसाइन धी जो धर्म में नील तीन तन्वाकू की दुकान रती हुए थी। बँटवारे के समय बघते जानीस धरने लेकर भाइयों को देवा बड़ा था। उनके भी लकनन ली धरने हो धरने थे क्योंकि धाने धरपा वा ध्यात्र वा। लकान के भी धमी पचीस धरने बाकी बड़े हुए थे धीर दलहरे के दिन शत्रुध के धरणों का भी कोई प्रबंध करना था।... शिग्रवी के दो बड़े-बड़े काम निर पर लवार से लेकर धीर सोना वा विवाह। यह विरति धरने धमी के निर पर न थी। धात्र-धमी किताबों का धरि हाम था। धर्मिकीरा की दशा तो इनसे भी बरतर थी।"<sup>२</sup>

एक धीर ज्ञात्र का बाध धीर धूमटी धीर बचीदारा के धात्राधार। किताबों के शोरान वा धर्मिकर क्त प्रेरक-दश ने धरने उपन्यासों में बताया है। जब तक किताब

१	गोशान—	१५५
२	बड़ी	११८
३	बड़ी	४४-४६

बग बनों-दारों के बंदुग से मुक्त नहीं हो जाता तब तक इसकी समस्याएँ सुपन्न नहीं सकतीं। जमीदारों और सरकारी कर्मचारों व कर्मचारियों के द्वारा शोषित किसान के अनेक बिच प्रेमबंध न बिभित किए हैं —

इसमें सन्देह नहीं कि अधिकारियों व यह बीरे सदिव्यक्तियों से प्रेरित होकर शोष है। किन्तु जिन भाँति प्रकारों की ररिमयों पानी में बहमायी हो जाती है उधो भाँति सदिव्यक्तियों भी बहुधा भातको दुबलताओं के सम्पर्क से विषम हो जाता करती है।... अधिकारों वग धीरे उनके कर्मचारी विरक्ति की भाँति इन मुक्तकाल के दिन गिना करते हैं। शहरों में तो उनकी शान नहीं पमनी का गन्ती है वा बहुत कम। वहाँ प्रत्येक बस्तु के लिये उन्हें जेब में हाप शानना पड़ना है किन्तु देशों में जेब की बगल उनका हाप धयन छाटे पर होता है वा किता बीन किसान की पर्यन पर। ...जितना खा सकते हैं, खाते हैं, बार-बार खाने हैं धीरे का नहीं खा सकते वहु घर मरते हैं। जो से घर हुए कनस्टर रूप से मरे हुए मटक उपल धीरे लकड़ों पास धीरे चारे से मरी हुई पारियाँ शहरों में घाने लपती है। घरवाले हर्ष से पूने नहीं समाते अपने भाष्य को कराहते हैं।... देहात वालों के लिए यह बड़े संकट के दिन होते हैं, उनकी शान्त या जाती है, मार खाते हैं, बेमार में पड़े जाते हैं, बासल के बासल निरस प्रापानों व धारणा का भी हास हो जाता है।”<sup>१</sup>

जमींदारों व बाबन हाप हो जाते हैं।”<sup>२</sup> उनका वन किसानों की किती न किमी बहान फँसान का माधम्य गन्ना है। पुनिस न्यायालय सरकारी अधिकारी कर्मचारी सभी की जल पर बड़ी हुआ हाडी है क्योंकि किसानों की कुट में इन सभी का हाप उठता है। ‘प्रेमाधम’ में शरोपा मूर धासम मुक्तू चौधरी को किस जात साबी से फँसाना है—

‘मुक्तू चौधरी न कमी कोकीन का सेवन नहीं किया वा उगकी सुरत नहीं देखो थी उचक्य नाम नहीं मुना वा वलका जलके घर में एक टोना कोकीन बरा मर हुई। फिर क्या वा मुकहमा ठैयार हा गया। मासनिष्ठ मने की देर की हिरा घण में धा मये।<sup>३</sup> लकली ध्याम का पराद्विष्ट करता हुआ कादिर कहता है—

मुदा ठामाने धार्ते बन्ध कर सी। जो कोद मना मानुप बरह बुझकर हमारे पीछे लड़ा भी हा जाता है, तो जल बेचार की जल भी धायल में फँस जाती है। उधे तन करने के लिये फँसान के लिये तरह-तरह के कानून यह लिये जात हैं।”<sup>४</sup>

१ प्रेमाधम—पृष्ठ ७१-७२

२ वही " २३१

३ " " २७२

४ " " २७६

घड़नकार मोच बटौनों को किछ तख्क सतासे हूँ इसका मज्ज बिज काबा कल्प में बिद्यमान हूँ । राधा बिशालसिंह के गद्दी-उत्सव के लिए घसामियों पर इस पीछे (१०) बंधा सजा दिया जाता है । निघम घसामी जब देने में धामा कानी करते हैं तब कमचारियों को बाबेश मिलता है कि बड़ल्ले से अपने की बयूतो कीबिसे । प्रेमचन्द लिखते हैं—

हुम मिसने की डेर बी । कमचारियों के हाथ तो लुजसा रहे ब । बगुलो का हुम पाले ही बाप-भाप हू गये । फिर तो बड़ घन्धेर मजा कि सारे इलाके में कुइराम बड़ गया । बाटों तरफ मूट बसोटे हो रहो बी । पानिवाँ घोर डोक-पीट ता बापरख बात की किसी के बैस खान दिवे जाते थे किसी की गम्ब खीम भी जाती थी, बितनों ही के लख कटवा लिये गये । बैरबन्नी घोर इलाके की बर्बाकियाँ भी जाती थी । जिहने कुसी से दिवे बमका तो (१०) ही म यला छुट गया । जिहने दिहने इलाने किने कानून ही बचारा, बते (१०) के बरसे (२०) (३०) (४०) देने पड़े ।<sup>१</sup>

इस प्रकार घड़नकार, बाबेशार पटवाटी कानूनया कारिन्हे माल के हुपकाम सभी को किसानों की जान का ताहक प्रेमचन्द ने बटाया है । ब्यापार के कार कुन मुर्दिर, कपरासी सभी किसान के चुपने में सवे हुये हैं । बमभीष्ठा के कारख भी किसानों का बर्बात होयख होला है । 'कर्मभूमि में प्रेमचन्द ने महल बी घोर किसानों का तुननायक बिषय करके घम की बाड़ में होने वाले किसान के होयख बर बकास हाता है । बेचारे एक तो गरीब खूब के बोध से सवे हुप बूठरे मुख न कमया जानें न कमून । महल बी जिहना बाहूँ इलाका करें जब बाहूँ बैरखल करें किसी में बोलन का नाहन न बा । घकनर तौतों का मयान इलना बड़ गया बा कि सारी उपज नयान के बराबर भी न बर्हुबनी बी जिहनु गीम भाव्य का होकर जूने-जैके रखकर, कुसों की मीठ भरबर रोण जानने थे ।

किसानों ने एक-एक घाना बेच हाता भूगे वा एक निजका भो न रखा लेकिन यह नब कुछ करने पर भी चौबार्द सजान में क्याता न घरा कर लके घोर टाकुर हारे में बही उत्सव थे, बही जन बिहार थे ।<sup>२</sup>

बर्बादी होी बाठाबीन के घल-काट घोर बैरुनाबी का बिघाष नही करना प्रस्तुत होी के घेट न बर्से की बान्ति नबी हुई थी । घबर टाकुर वा बनिदे क लये होले तो बने ज्यादा बिन्ता न होती लेकिन बाह्य के कपये । कतनी एक पाई भी बब गई तो हही छोडकर निकलेयी । बमकानु न बरें कि बाह्य वा कोर

१ नावाकल्प पृ १२१ २०

२ कर्मभूमि— २१७ १४

किसी पर विरे । बंस में कोई बिस्फु भर पानो इन वाला घर में दिया बतान-  
बाला भी नहीं रहता । उसका बर्मबोध मन जन्म हो सख । उसने बौद्धक  
पछित को के बरख पकड़ लिये धीर धार्म स्वर में बोला—महाराम जब तक मैं  
बोता हूँ मैं तुम्हारी एक-एक पाई चुकाऊँगा । <sup>१</sup> शोपक-बग न धपन स्वार्थ-धामन  
क लिये ऐसे ही बर्म की स्पष्टता कर रखी है । सीध व कमपरामख किसानों का  
शानख उसकी प्राह में प्राह भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ है । महारानी-सम्पदा  
पैय के लिय सब बुद्ध करन के लिय बटिबठ है । किसान की महारानों न क्या  
रहा कर रखी है, उसका स्वरूप शोभा धीर हुरी के बर्तलाप में ममी-मॉति  
रखा आ सज्जा है ।

शामा निराश होकर बोला—न जान इन महारानों स कमी गला छुट्टेया  
कि नहीं ।

हुरी बोला—इस जगम में तो कोई प्राण नहीं है मारि । हम राज नहा  
बाहुते भाव विनाम नहीं चाहते बाकी मोटा-भोटा पहनना धीर भाटा भोटा  
जाना धीर भरबाद के साथ रहना चाहते हैं । वह भी नहीं सज्जा । <sup>२</sup>

इस प्रकार प्रेमचर ने किसान-बग क बोधन को बिस्फुत मीकी धपन उप  
स्यासों में बिबिध की है । किसान की धनेक समस्याओं का सम्यक उद्घाटन करने  
के बाद व उसके हल का उपाय भी सुझते हैं । बाम्पुव में किसान की प्रमुख  
समस्या प्राधिक है जब तक किसान का शोपख बंड नहीं होटा तब तक उसका बया  
में कोई सुबार नहीं हो सकता । इसके लिए किसान का शोपख करने बामे बर्म  
का मास होना प्रावरयक है । प्रेमचर ने इस विषय में स्पष्ट संकेत दिय है । उन्हान  
किसान-बर्म में उबरती एक नई बिग्राही पीधी का बिबिध करके किसानों के मुक्ति  
मंघाय को रिशा की है । प्रमापम 'कमभूमि' धीर 'मोशन' में प्रेमचर का ब्रति-  
काटी ब्रकिन्व देवने बाध्य है । प्रेमापम' का मनोहर प्रारम्भ में भी धपन  
स्वायिमान के प्रति कितना सज्ज है 'दिरबर—बब बमीशर की बमीन जानते  
हो तो उसके हुकम के बाहर नहीं आ सकत ।

मनोहर—“बमीन कोई कौरख बोलने हैं ? उनका बजान बते हैं । एक किरन  
मी बाकी पड़ बाव तो गालिना होगी है ।”<sup>३</sup> मनोहर से कहीं बिग्राही ब्रकिन्व  
बनराज नामकमीबजल किसान का है । बनराज स्पष्ट चुनौती के छर्मों में कहता  
है 'बमीशर कोई बाबटाह नहीं है किबाहे बिगनी उबररस्ती कर धीर हम  
मुह न बोंमें । इस बजाने में तो बाबटाहों का भी इज्जा बरूपार नहीं बमीशर

१ मोशन—पृ० २१७-१७

२ वही २४९

३ प्रेमापम , ५

किम गिनती में है। कबहूरी बरबार में कहा सुनायी नहीं है तो (साठी रिखा कर) यह तो कहीं नहीं मबी है।<sup>१</sup>

किमान के हृष्य और मस्तिष्क से सर्व-प्रथम मय को दूर करना आवश्यक है तभी वह सोपक का सुलंघी से सामना कर सकता है। बुराई, उसका शिथिल होना भी अनिवाय है। दुनिया के धन्य देशों के किसान-दानोसनों की आमकारी मिलते रहने पर भारतीय किसान भी धन्य अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकता है। प्रेमचंद ने बसराय को ऐसे ही आमकारी किसान क क्व में प्रेमार्थम में विभित किया है। बसराय कहता है— मेरे पास जो पत्र पाठा है उसमें लिखा है कि कस देश में कारतकारों का हो राज्य है वह जा चाहते हैं करते हैं। उसी के पास कोई और देश बलगायी है। वहाँ धनी ह्याम की बात है कारतकारों ने राजा को पही से उठार दिया है और सब किसानों और मजदूरों की पंचायत राज करली है।<sup>२</sup> सरकारी मकतलों की मनमानो मूट के किच्छ प्रेमचन्द अपने किसानों को धडा करते हैं। कारिर इसमें शाहिमो का कपूर नही। यह सब उनके लरकर बासों की बाँबली है।

मनोहर— कौसी बाँस कइते हो दाया ? यह सब गिनी मगत है। हाकिम का ह्साय न हो तो मजान है कि कोई लरकरी परायी बीज पर ह्याय हास सके। नर कुछ हाकिमों की मर्जी से ह्याय है और उनको मर्जी क्यों न होयी ? सेंग का नाम किमको बुध लपगा है ?<sup>३</sup> प्रेमचंद के ये किमान बुँगे बेबस और कमशोर नही है। उनमें इतिहासी माबनाएँ मूट-मूट कर भरी हुई हैं, जो हर धाम्याय का सक्रिय विरोध करने हैं। गोराल में बनिमा और पम्बर का श्यलित्व भी ऐसा हो है। बनिमा को स्पद साम्यता है हमने जयीशर के गेठ जोती है, ता वह धपना लवान ही तो लैया। उतकी मुस्तामर क्या करें ? उतके लनदे क्यों सह लार्ने ?<sup>४</sup> मोबर धरने विना क दख्खन का विरोध करला हुआ कहला है 'यह तुम रात्र-रोजमातिकों की मुशामर करने क्यों जाने हा ? बाकी न बुके तो प्यादा पाकर मालिया मुनागा है, बेकार देनी ही पडनी है नजर-नजराना सब तो हमने मराना बागा है। फिर किमी को क्या मनामो करो ?'<sup>५</sup> शाठारीन के हृष्यकों का पराङ्मत्त करला हुआ मोबर एक और ह्खन पर कहला है, मुझे गूब बाय है, तुमन र्थ के लिये तीम दरये लिये थे। उमके सी हृ। धर ली के श-सी हो पए। इयो ठरर इन लोर्गों के किमानों को मूट-मूट कर बन्दूर बना बासा और

१	बदो	पु	१७
२			१८
३	ब्रमाधम		७३
४	बोरान	"	३
५.	बही		१६

घाप सनकी जमीन के मालिक बन बैठे । तीस के बो-मी । कुछ हर है । १ घोर घाटापीन के जाने जाने पर गोबर ने तिरस्कार की धाँसों में देखकर कहा—“बदौ से देवता को मनाने ? तुम्हीं लोगों न तो इन सबों का मित्राज बिगाड़ दिया है । तीस रस्य विष्ट, सब बो-सी ज्ये सैमा घोर बाँट ऊपर से बग्रायेना घोर तुमने मझुपी करायेगा घोर नाम बचले-कराते मार डालेगा । २ श्मी क पर्व पर ध्यम्य करने का नाँव बामों को सबसर मिलना है । प्रेमचंद न मझावनी-सम्पना पर एक स्थल पर बड़ा करारा ध्यम्य किया है । किमान महाजन ठाकुर की पकल बना रहे है —

“किमान बाकर ठाकुर के बरख पकड़ कर हान लगता है । बही मुक्तिन से ठाकुर ज्ये देने पर राबी होते हैं । सब कामज सिखा बाठा है घोर घसामी के श्माब में पाँच ज्ये दिये बाते हैं, तो वह बकराकर पूछना है—

‘यह तो पाँच ही है मालिक ।

‘पाँच नहीं बस है । बर बाकर मिलना ।

‘नहीं सरकार, पाँच है ।

‘एक कपया नजरान का हुपा कि नहीं ।

‘ही सरकार ।

‘एक तहरीर का ।

‘ही सरकार ।

‘एक कागद का ?

‘ही सरकार ।

‘एक हस्तुरी का ।

‘ही सरकार ।

एक मुद्र का ।

‘ही सरकार ।

पाँच नगद हम हुप कि नहीं ?

‘ही सरकार । सब यह पाँचों भी मेरी घोर से रख लीजिए ।

बैसा पायब है ।

‘नहीं सरकार एक कपया छोटी ठाकुरान का नजराना है, एक कपया बड़ी ठाकुरान का एक कपया छोटी ठाकुरान के पान बाने का एक कपया बड़ी ठाकुरान के पान बाने का । बाकी बचा एक वह घापके त्रिया-करम के लिये । ३

१ दोशान—पृ० २१७

२ २१५

३ २१४ २१५

मोहर के माध्यम से प्रेमचंद भारतीय किसानों को जो संकेत देने हैं वह किसान-वर्ग के भविष्य का संकेत है—इसने सुना है और समझ है कि अपना भाग्य खुद बनाया होना अपने बुद्धि और साहस से इन भाइयों पर विश्वास करना होगा। कोई देवता कोई मुख्य शक्ति उनका मदद करने न पायेगी। प्रेमचंद ने इस प्रकार किसानों की भाव-दुःखीयता का ही विश्लेषण नहीं किया प्रकृत अपने अर्थात् हुए आत्मिक-विकास को भी स्पष्ट किया है। प्रेमचंद का साहित्य किसान को स्पष्ट-दिशा नहीं करता वह उन्हें प्रेरण करता है, उन्हें अपने अधिकारों के पाने के लिए संघटित होने में प्रेरणा देता है। आन्दोलनों को बन पहुँचाता है।

किमान-वर्ग की समस्याओं को सुझाने के लिये प्रेमचंद ने 'प्रभाव' में स्पष्ट पोषण की है, जिसके अनुसार जमींदारी-वर्ग का कोई अस्तित्व नहीं रहता। प्रेमचंद और आत्मिक-विकास के संदर्भ में प्रेमचंद अपने विश्वास स्पष्ट हुए लिखते हैं, 'मेरा सिद्धांत है कि मनुष्य की अपनी महत्त्व की कमाई खानी चाहिए। वही प्राकृतिक नियम है। किसी को यह अधिकार नहीं कि दूसरों की कमाई को अपनी जीवन शक्ति का आधार बनाये।

जवाहर—'तो यह कहिये कि आप जमींदार के बेटे को ही कुछ समझी है।'

प्रश्न—'हाँ मैं इसका मतलब नहीं हूँ। मुझे समझी है जो उसको जाने। शासक को उसकी उपज में भाग लेना का अधिकार देनेमिये है कि वह देश में स्थिति और रक्षा की व्यवस्था करता है जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समझ में कोई स्थान नहीं है।'

यह स्पष्ट है, प्रेमचंद अपने उद्देश्यों में भाग जमींदार जीवन को बना ही नहीं कहते बल्कि इस कथा के माध्यम से ही राष्ट्रीय जीवन को जाना समझाएँ और प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए उनके हंस का उल्लास भी बनाते हैं। भारतीय किसानों की भाव प्रमुख समस्या जमींदारी-वर्ग में मुक्ति की समस्या है, क्योंकि इसी परम्परा पर उनकी आर्थिक-स्थिति निर्भर करती है। प्रेमचंद ने अपने किसानों को इसी प्रश्न के विरोध में गढ़ा दिया है तथा उन्हें लक्ष्य दिया है। वह मार्ग समाजवादीक उपस्थापना ही अपना बनाता है।





गोबर के माध्यम से प्रेमचंद भारतीय किसानों को जो संदेश देते हैं वह किसान वर्ग के परिपक्व का समाचार है—बसने सुना है और समझ है कि अपना माध्यम चुनना होना अपनी बुद्धि और साहस से इन भाषकों पर चित्रण पाना होना। कोई देवता कोई सुप्त शक्ति उनकी मदद करने न भासेगी।<sup>१</sup> प्रेमचंद ने इस प्रकार किसानों की मात्र दबनीय बसा का ही चित्रण नहीं किया प्रत्युत उनमें उभरते हुए आधुनिकी विचारों को भी व्यक्त किया है। प्रेमचंद का साहित्य किसान की वस्तु-हिम्मत नहीं करता वह उन्हें सजद करता है, उन्हें अपने धर्मिक कार्य के पान के लिए संयोजित होने में प्रेरणा देता है। आन्दोलनों को बन पहुँचाता है।

किसान-व्य की समस्याओं को सुलझाने के लिये प्रेमचंद ने 'प्रेमचंद में स्पष्ट शोधका को है जिसके अनुसार जमींदारी-प्रथा का कोई अस्तित्व नहीं रहता। प्रेमचंद और आजादी के संघर्षों में प्रेमचंद अपने विचार रखते हुए लिखते हैं, प्रम—“मेरा सिद्धांत है कि मनुष्य को अपनी मेहनत की कमाई ज़रूरी चाहिए। यही आधुनिक नियम है। किसी को यह अधिकार नहीं कि दूसरों की कमाई को अपनी जीवन कृति का आधार बनावे।

जवाब—“तो यह कहिए कि आप जमींदार के बेटे को ही बुरा समझते हैं।”

प्रम—“हां मैं इसका मन्त नहीं हूँ। मुझे समझी है जो उनको जोते। शासक को जतनी उपज में धाम सेने का अधिकार इतना है कि वह देत में शक्ति और रक्षा की व्यवस्था करता है जिसके बिना खेती हो ही नहीं सकती। किसी तीसरे वर्ग का समाज में कोई स्थान नहीं है।”<sup>२</sup>

यह स्पष्ट है, प्रेमचंद अपने जगहों में मात्र आधुनिक-जीवन की कथा ही नहीं कहते बल्कि उस कथा के माध्यम से ही आधुनिक जीवन की मात्रा समझाते और प्रश्नों पर प्रकाश डालते हुए उनके हृत् का उल्लास भी बनाते हैं। भारतीय किसानों की मात्र प्रमुख समस्या जमींदारी प्रथा में बुद्धि की समस्या है, क्योंकि हमी पढ़ने पर उनकी आर्थिक-स्थिति निर्भर करती है। प्रेमचंद ने अपने किसानों को इसी प्रथा के विरोध में गाड़ा दिया है तथा उन्हें नहीं रिक्त की है। यह कार्य नवस्यामूहक उपस्थासकार ही अपना लक्ष्य है।

## सधूत-बर्ग

सधूत बर्ग के अन्तर्गत प्रेमचन्द ने केवल जमारों के जीवन पर प्रकाश डाला है। किसी निश्चित जाति को लेकर प्रेमचन्द ने जो विचार व्यक्त किए हैं वे वास्तव में उस जाति विशेष तक ही सीमित न रह कर उस बर्ग के ही बन गए हैं। सधूत जमारों के रहन-सहन, उनकी सामाजिक और धार्मिक स्थिति आदि का बड़ा बड़ा विश्लेषण किया गया है। बड़ा समस्त सधूत-बर्ग का ही विश्लेषण समझना चाहिए।

धुमाधूत हिन्दू समाज की एक अत्यन्त बीमारी है। धार्मिक अन्ध-विश्वासों द्वारा पोषित धुमाधूत की आधुनाई हिन्दू-समाज के अन्विकारा जनों में व्याप्त है। वे लोग चाहे अष्ट शोभित स्त्री-पुरुष हों या पड़े लिखे नागरिक। दोनों अपने को इन सामाजिक कुटीरि से मुक्त नहीं कर सके हैं। प्रेमचन्द धुमाधूत के विरुद्ध वे। अनुप्य-मनुष्य के बीच यह अन्तर अमानवीय है। प्रेमचन्द ने हिन्दू-समाज में पाये जाने वाले इस अमानवीय भाव को दूर करने और सधूत-बर्ग के स्वाभिमान को जाग्रत करने का अरस्तु प्रयत्न किया गया है।

सधूत बर्ग पर 'कर्मभूमि' में चिन्तार से लिखा गया है। वास्तव में बड़ी एक उपन्यास है जिसमें सधूतों की समस्या पाई जाती है। जैसे 'प्रतिज्ञा' 'दोषान' आदि उपन्यासों में भी अन्त-तन्त सधूतों की समस्या पर प्रकाश डाला गया है।

सधूत-समस्या के अनेक पहलू हैं। कुछ लोग इसे मात्र धार्मिक दृष्टिकोण से देखते हैं। हिन्दुओं ने अपने मंदिरों में सधूतों का प्रवेश निषिद्ध कर रखा है। अनेक समाज-सुधारक सधूतों को मंदिर-प्रवेश नरा देने में ही सधूतों की समस्या का समाधान समझ बैठे हैं। वास्तव में मंदिर प्रवेश से सधूतों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं आता। उनकी मूल समस्या तो सामाजिक और धार्मिक है। जब तक समाज में सधूतों और उनके कामों के प्रति आदर भाव अल्प नहीं होता तब तक उनके जीवन में कोई क्रांति नहीं आ सकती। प्रेमचन्द ने यहाँ प्रस्तुत समस्या के धार्मिक पहलू को धुमा है बड़ा दूररी और सामाजिक और धार्मिक पहलुओं को भी दृष्टि से धोरण नहीं किया

प्रेमचन्द किसी बर्ष विशेष के प्रति मात्र बौद्धिक समवेदना ही प्रकट नहीं करते। धधूत-बर्ग एक दमित विरसकृत और उपेक्षित बर्ग है इसलिये दोनों बन्द करके उसका गुण-मान करना प्रेमचन्द की नीति नहीं है। उन्होंने प्रत्येक बर्ग का पूरी-पूरी ईमानदारी के साथ बड़ा ही बचार्थ विश्लेष किया है। जहाँ उन्होंने पञ्चाशर्षों को धुमा है वहाँ उस बर्ष विशेष में पाई जाने वाली दुर्बलताओं को भी छोड़ा नहीं है। यह धरम है कि उनकी सहानुभूति समाज द्वारा पीड़ित और बहिष्कृत बर्गों की ओर है पर यह सहानुभूति सचार्थ की तोड़ती-भरोड़ती नहीं है।

“कमभूमि में दूसरे भाव से जमारों के जीवन की कहानी प्रारम्भ होती है, जब धमर एक परदेसी के रूप में एक पहाड़ी गाँव में पहुँचता है, जहाँ रैवास रहते हैं। सर्वप्रथम उसका एक बुढ़िया से साक्षात्कार होता है। धमर जीत-जीत के सम्बन्ध में प्रारम्भ में ही स्पष्ट घोषणा करता है—‘मे जीत-जीत नहीं मानना माताजी। जो सच्चा है, वह जमार भी हो धमर के योग्य है, जो ब्याबाज झूठा सम्पत् हो वह शाहूण भी हो तो धमर के योग्य नहीं।’<sup>१</sup> प्रेमचन्द को यह स्पष्ट मान्यता थी।

धधूतों की आर्थिक-स्थिति कितनी भयावह है उसका विश्व उस बुढ़िया रैवास की झोंपड़ी है। धमर झोंपड़ी में गया तो उसका हृदय काँप उठा। माना शक्तिशाली पीट-पीट कर रो रही है। और हमारा अल्प समाज बिनास में पड़ है। धमे रहने को बेतला आदि, सचापि को मोटर। इस संसार का विघ्नस बनों नहीं हो जाता ?<sup>२</sup>

जमारों की सामाजिक-स्थिति का विश्लेष जामरों के मुख से प्रेमचन्द करवाने है। धमर जमार जामरों से पूछता है, “कहाँ बड़ने जाते हो ? जानक ने नीचे का घोठ तिकोड़ कर कहा—“कहाँ जायें हमें कीज बड़ाये ? मरते में कोर्द जाने तो देता नहीं। एक दिन रात हम भोगों को लेकर गए थे। पंदिन की ने नाम मिय लिया पर हमें सबसे धमय बैठते थे। सब सड़के हमें जमार जमार कह कर बिड़ते थे। दाश ने नाम कहा दिया।<sup>३</sup> हम समाज में जर तक सिखा का प्रचार नहीं होना सब तक अपने सामाजिक स्तर को उँचा नहीं उठाना या मरता। अशिष्टिन बहा में उनमें पाप जाने जाने शेष भी नहीं सि धरते पर उनकी आर्थिक स्थिति भी नहीं सुधर सकती।

प्रेमचन्द ने जमार-बर्ष के विश्लेष में कम गति नहीं ली है। उन्होंने जमार-बर्ष

१ कमभूमि—पृष्ठ १४८

२ वही १४७

३ १ १४३

को सही या शक्ति रूप में चिन्तित नहीं किया बरन् उनमें बल-शक्ति की प्राप्ति मङ्गली बलाई है, जो प्रत्येक धनीति और धर्याधार का कड़ा विरोध करते हैं। इसी पड़ोसी पाँव का चौबरी मूँड़ धरम से कहता है—“भगवान् ने छोटे-बड़े का मोद क्यों सया दिया इसका मरम समझ में नहीं आता। उसके ता सही लड़क है। फिर सबको एक घाल से क्यों नहीं देगता ?

पयाम मे लंका समाधान की— ‘पूरब बनम का संस्कार है। जिसमें जैसे कर्म किय जैसे फल पा रहा है।

चौपरो ने खंडन किया— ‘यह सब मन को समझने की बातें हैं बटा जिसमें परोबों को धरणी बसा पर संतोप रहे और धनीयों के राय रूप में किसी तरह की बाया न पड़े। लीम समझते हैं, कि भगवान् न हमको गरीब बना दिया धरणी का क्या बाप पर यह कोई स्याप नहीं है कि हमारे बास-बन्ने ठक काम में लगे रहें और पेट भर भोजन न मिले और एक-एक अकसर को बस-बस हजार को तलब मिले। १ जहाँ प्रेमबन्ध प्रभुओं के स्वाभिमाम की पूरी रखा करते हैं वहाँ उनमें पाये जाने वाले दोषों पर भी प्रकाश डालते हैं। मृत गौ का मांस खाने का प्ररम सामने आता है। पञ्च विपच में धनेब बाँते वही आती है। जमारों में पूर्व संस्कारों के अरब मृत पाव का मांस खाना सामारण बात थी। और भी निम्न प्रवृत्तियाँ जमार धर्म में पायी जाती हैं। शक-शराब और मुर्दा मांस का प्रबलन होने से धर्म जातिवाँ जमारों से दूर रहती हैं। उनके सामाजिक बहिष्कार के पीछे कुछ उनमें भी पाये जाने वाले दोष हैं। प्रेमबन्ध ने इस पहलू पर भी स्पष्ट रूप से लिखा है। जमड़े का काम करने प्रबना जूत बनाने से कोई जाति निष्ठ नहीं हा जाती। मोडिन हम बात को स्वीकार करने पर भी जमारों में पाये जाने वाले दोष पर परवा नहीं डाला जा सकता। मुर्दा गाय के मांस खाने के सम्बन्ध में प्रेमबन्ध एक मुषक को मध्यस्थ बनाकर कहताते हैं— ‘मरी गाय के मांस में ऐसा कौन-ना मजा रखा है जिसके लिए सब बने मरे जा रहे हो। यहूदा खोद कर मांस नाइ बो बास निकाल लो। साथी बुनियाँ हमें इसीलिए तो प्रभुत समझती हैं, कि हम शक-शराब पीते हैं। मुर्दा मांस खाते हैं और जमड़े का काम करते हैं। और हममें क्या बरवाई है? शक-शराब हमने छोड़ ही की हमने क्या छोड़ की समय ने छोड़ना था। फिर मुरदा-मांस में क्या रखा है? रजा जमड़े का काम उस कोई बुरा नहीं कह सकता और अपर कहे भी तो हमें धमकी परवाह नहीं। जमड़ा बनाना-बनना बुरा काम नहीं। २

१. कमभूमि—पृ० १३०

२. कर्मभूमि—, १०३

मरी काम का माघ यदि बो-बार जमार जाना छोड़ देंगे तो इससे जगदी बिरादरी के सभी जमार तो सुखर नहीं जात। दो बार का हृदय परिवर्तन कर देने से कोई सामूहिक हल सामने नहीं आता। सेनिग प्रेमचन्द हमक लिए करने वाले नहीं थे। इसी बीच एक बड़े न बड़ा "एक तुम्हारे का हमारे छोड़ देने से क्या होना है? सारो बिरादरी तो भाठी है?"

भूरे न बराब दिया—बिरादरी जाती है, बिरादरी मोच बनी रहे। अपना प्रान्ता परम अपने-अपने साथ है।

मद ने बूरे को सम्बोधित किया—"तुम ठीक कहते हो भूरे। सड़कों का पड़ना ही तो सो। पहले काई मेरता का अपन सड़कों को? मगर जब हमारे सड़के परने लगे तो दूसरे बोबा के सड़के भी पाने लगे।<sup>१</sup> इन प्रकार प्रेमचन्द कर्म म धार्मिक बिस्वास रखने थे। वे मात्र बर्चार्थिक दुनिया में अपने पात्रों को नहीं छोड़ बते बरन् उन्हें कमठ और बीचन पूर्व बनाकर सामाजिक सुधार की बिस्वा में लया देते हैं।

कर्मभूमि<sup>१</sup> में सधुत-समस्या का दूसरा बहुसु मंदिर-प्रबन्ध का है जो एक सीमा तक उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा से सम्बन्ध है। मन्दिर-प्रबन्ध का प्ररन प्रस्तुत उपन्यास म धार्मिक चलकर एक धार्मिकोपन का रूप धारण कर मठा है। एक महीने से ठाकुरदारे में वं मधुसूदन जी की कथा हो रही है। एक दिन सड़का पिछमी सधे में हंभामा हो जाता है। कथा बन्ध हो जाती है। यह हंभामा मंदिर में बैठे सधुतों का लेकर हाता है। प्रेमचन्द ने कर्मधर्मियों की बालनबिद्यता हम प्रसंग को लेकर बिस्वार से बिजित की है—

बड़ाबारी मोय भयवान् की क्या सुनन घाते है कि धरना धम भ्रष्ट करने घाते है? भंभो जमार बिये बेगो पुना जमा घाता है। ठाकुर जी का मन्दिर न हुमा मराय हुई।

ये कुछ राज यहाँ घाल थे। गोर मबका पुत म इनका धुपा हुपा प्रमाय मोय राज घाते थे। इगम बड़कर धनर्ष क्या हो यवता है? धर्म पर इगम बड़ा धापाय और बग हो लवता है? जमरिमारों के हाथ का बारा पार न रहा। ब<sup>२</sup> धारमी जुते से निकर उन बरीबों पर निम पड़। भयवान् के मन्दिर में भयवान् के भक्तों के हाथों भयवान् के भक्तों पर पादुका प्रार हाते लया।<sup>२</sup>

प्रमचन्द इन धम के लबाकविज डेरवार। से बनी समझेता नहीं करते— डा० शान्तिगुमार के मन मे चुनौती के स्वर में बजमाने है,— धार्मिक भक्तों की धार्मिक

म धन भ्रोक कर यह हमसे बहुत दिन जाने को न मिलेगे महाराज समझ मये ।  
 सब वह समय था रहा है, जब समयान् भी पानी से स्नान करने हुए  
 से नहीं । १

प्रेमचंद समस्यामूलक उपासककार थे । कर्मभूमि में जब उन्होंने प्रपूतों  
 की समस्या को स्पष्ट किया तो उस पर ऊपरी तौर पर ही लिख कर वे सन्तोष  
 नहीं कर लेते । व समाज को धीरे सचेत करते हैं उसे धीरे धीरे बढ़ाते हैं तथा  
 उसे प्रत्याय के विरुद्ध विद्रोह करने के लिय तैयार भी करते हैं । दूसरे दिन  
 नियत समय पर कथा फिर प्रारम्भ होती है, पर प्रपूत-वर्ग धीरे उससे सहानुभूति  
 रखन जाने लगे उसमें भाग नहीं लेते । वे 'नीजबान समा' के नाम से जुले मीदान  
 में अपनी प्रगत कथा का आयोजन करते हैं । प्रेमचंद ने इन दोनों समाजों को  
 कथा का चित्रण करके बताया है कि धर्म के उपासक वास्तव में कीम हैं । मन्दिर  
 में ही रही कथा का चित्रण करते हुए प्रेमचंद लिखते हैं 'घोटापों की संख्या  
 बहुत कम हो यकी थी । मनुमुरत भी न बहुत जाहा कि रंग बरामा में पर लोग  
 बम्हाइयां से रहे वे धीरे पिछली छछों म तो लाय बढ़सने से हो रहे थे । मानूम  
 होता था मन्दिर का धीयन कुछ छाटा हो गया है, दरवाने कुछ नीचे हो प्य है । २  
 यह बता उन 'बमबीरों' की है जो मन्दिर म प्रपूतों को देखकर हिंसक हो उठे  
 वे जो धर्म पर अपना एकाधिकार समझते हैं । दूसरी धीरे प्रकटिशील बमात  
 द्वारा प्रायामित कथा का दूरव देखिये 'जबर नीजबान समा के सामने जुले मीदान  
 में शक्तिकुमार की कथा हो रही थी । बजताब सलीम धारमानन्द धारि घाने  
 वालों का स्वागत करते थे । घोड़ी देर में दरियां छोटी पड़ गयी धीरे पाड़ी देर  
 धीरे गुजरने पर मीदान भी छोटा पड़ गया । अधिकार लोग लगे बदन से कुछ  
 लाय भीमड़े पहले हुए थे । उनकी देह से तम्बासू धीरे मीसपन का दुर्गन्ध घा रही  
 थी । दरियां धामपुलहीन मैनी-कुबैली बातातयां मा सँहसे पहले हुए थी ।  
 - पर हदियों में बबा भी धर्म या सेवा माब या त्याग था । ३ यह वास्तविक  
 धम का रूप था मनुष्य मनुष्य के बीच किसी सुभाषुत व बुद्धा का नाम न  
 था । मुत्समान हिन्दू प्रपूत सभी कथा धर्म सेवा धीरे त्याग के साधत  
 प्रवृत्त बने हुए थे । प्रेमचन्द न इन गुणगारमक चित्रण द्वारा धर्म के टेकेदारों  
 की चित्रियां उड़ाई है । समस्त धार्मिक पालतयों का खोलकर रख दिया है ।  
 कथा के बल्यु-विषय पर प्रेमचन्द लिखते हैं — 'यह देखो-देखताओं धीरे प्रवृत्तों  
 की कथा न थी बहू अधियों के उप धीरे तैब वा कुत्तान न था अधियों के शीय  
 धीरे दान की पाबा न थी । यह उठ पुण्य का पावन चरित्र था जिसके यही मन

१ कर्मभूमि—पृष्ठ २०५  
 २ ' ' ' २०६  
 ३ ' ' ' २०६

घोर कर्म की सुदृढ़ता ही धर्म का मूल तत्त्व है। वही ऊँचा है, जिसका मन सुदृढ़ है जिसका मन प्रसुदृढ़ है, जिसने बख का स्वांग रखकर समाज के एक धर्म को मान्य और दूसरे को स्नेह्य नहीं बनाया। किसी के लिए उपरति या उदार का द्वार नहीं बन्द किया एक के माथे पर बहुमन का तिमिर और दूसरे के माथे पर नीचता का कर्मक नहीं लगाया। इस चरित्र में धारभोग्यता का एक संदेश था जिसे सुनकर दूरकों को ऐसा प्रतीत होता था मानो उनकी धारणा के बन्धन तुम यथे है, संसार पवित्र घोर सुन्दर हो गया है। 'धर्म की हमसे सुन्दर व्याख्या और क्या हो सकती है! प्रसूतों के सामाजिक सम्माल को अपने के सिधे प्रेमचर्च ने बर्धबाधियों को दूषित मनोवृत्तियों पर प्रहार करने में कोई कसर नहीं की। धर्मय रोत्र फिर कबा होती है। डा० शांतिकुमार का प्रबन्धन बस रहा है 'क्या तुम ईश्वर के घर से गुलामी करने का बीडा लेकर धामे हो? तुम उन मन् से दूसरों की सेवा करते हो पर तुम गुलाम हो। तुम्हारा समाज म कोई स्वान नहीं। तुम समाज की बुनियाद हो। तुम्हारे ही ऊपर समाज टड़ा है, पर तुम प्रसूत हो। तुम मन्त्रियों में नहीं जा सकते। ऐसी धनीति इस धर्मापे बेल के सिवा घोर नहीं हो सकती है? क्या तुम तबैव इसी भाँति पठित घोर बलिग बने चूना चाहते हो?

... मन्त्रि कित्ती एक धारमी वा समुदाय की बीज नहीं है। वह हिन्दू मान की बीज है। यदि तुम्हें कोई राकता है तो उसकी जबरदस्ती है। मन टसो उद्य मन्त्रि के द्वार से बाहेतुम्हारे ऊपर मोनियोंकी बर्षा ही बर्षा न हो। '२ इस प्रकार 'कमन्त्रि में समाज के ये बलिग प्रसूत संकठित होकर धान सामाजिक धर्मिकारों की सड़ाँ छेड़ देने है। पहले शांतिपुत्र प्रतिरोप में उन्हें सुरुनगा महा मिननी। पड़े-मुबारियों की साठियों के कुंरों के प्रहारों से बाहन होकर भीड़ में जगदड़ मच जाती है। डा शांतिपुमार भीड़ को रोबते रू जाने है घोर धण्ड में धायल और बढ़ाठ होकर बिर जाते है। प्रेमचर्च यही यथार्थ बिलग करके समस्या को स्वाभाविक विधान की दिशा में ले जाने है। मुन-मुप स बलिग-धम में धेनना घोर संघर्ष का इतिहास बिलग प्रेमचर्च न बनाया है। काँ बाजू की लट्टी म ब धण्डन-बन का बायाबस्त नहीं कर बैठे। जहाँ वे यथार्थ का, धीकर, नरी छोड़ने बरी, दूसरे घोर, प्रसूत, धर्म के तात्प का भी बम करके बटा बजाने। इस प्रकार प्रेमचर्च-गादित बलिग धम का उचित प्रदान करण है। उन निराश नहीं होने दना। धर्मय रोत्र प्रसूतों का धारणात्म जार पकड़ता है। हिन्दू धर्म के नवाचरित रचक प्रसूतों क इस बने धारणात्म

पर घाघे से बाहर हो जाते हैं। पुलिस भी उन्हीं की रक्षा के लिये घा जाती है। समरकान्त अभिहित होकर कहता है 'वहाँ का तो रास्ता ही बन्द है। जाने वहाँ क जमार-सिवार बाहर द्वार पर बैठे हैं। किसी की जाने ही नहीं देते। पुलिस जाड़ी उन्हें हटाने का प्रयत्न कर रही है पर घमायी कुछ सुनत ही नहीं।' १ घन्ट में आभा समरकान्त निहत्थे घघुना घोर उनके उच्चारकों पर घोमी जाता देते हैं। प्रेमचन्द मैना के मुख से ऐसे प्रम पर निष्करो करवाते हैं 'बिच प्रम की रक्षा घोमियों से हा उस प्रम में सत्य का घोप समझे।' २ घघुताद्वार के इस घान्धोतन में प्रेमचन्द मारी-बर्ग की सबसे अधिक घामन जाते हैं। उनकी मारियों घघुत विरोधी उन्का का लुना विरोध करती है। मुन्दा घोर मैना के द्वारा प्रेमचन्द ने मारत की प्रमथितीय मारियों के विरोध भाकों को घ्यवन किया है। उन्मवन इतिहा भी कि भारतीय सिवरी घघिक्तर घर्मपरावण होती है। उनमें चेतना का घमावेठ मिनात घघिघार्थ है। क्क ऐसी सिवरी कर्मभूमि' की पड़ेंगी तो उनका प्रतिनिधित्व करते घानी सिवरी के छाहस घोर मानवीय मुझों से निरचय ही ने प्रभावित होंगी। मुन्दा के भापण से भागने वाले घारमियों की एक बीबार-सी लड़ी हो जाती है। प्रेमचन्द न इस घान्धोतन की बृहता का बड़ा ही उर्बीव चित्रण किया है। वे लिखते हैं— 'बन्धुकों से घाय ! बाव की घाघावे निकलीं। एक घोमी मुन्दा के बाकों क पास से प्रम से निकल गयी। ठोन-बार घारमी गिर पड़े पर बीबार म्यो की ल्यों घचल लड़ी थी।' ३

घघुत मन्दिर में प्रवेष्ट कर ही जाते हैं। प्रेमचन्द ने यह मन्दिर-घवेठ कोई गोबीघारी बंग पर विधित नहीं किया है। समरकान्त घोर ब्रह्मघारी का हृदय-परिवर्तन कराके अनुमाचना के बाताबगल में यह बटना मही बटनी। प्रेमचन्द उस विराट बल-समूह के बमिधालों को माभा निकलन के बाद उसके विजय का विज योंकते हैं उन्घ्या समय इन प्रम विजेताघों की घकिर्षा निकलीं। घारा सहर पठ पड़ा। जमात्र बहल मन्दिर-द्वार पर बये। मन्दिर के रोनों द्वार लुने हुए ये। पुढारी घोर ब्रह्मघारी किसी का पठा न था। मुन्दा ने मन्दिर से लुनसी रस बाकर घकिर्षा पर ग्या घोर परने बाकों के मुन् में बरहामून आना। इन्ही द्वारों का लुनबाने के लिये यह नीपण संघाय हुआ। प्रम बह द्वार लुना हुआ है बीरों का स्वापव करमे ने लिये हाप फेनाये हुए है पर ये

१ कर्मभूमि—१०	२१५
२ बही	२१७
३ बही	२१७



कठने वाले घब डार की ओर झोल उठा कर भी नहीं देखते। ऐसे विचित्र विजेता हैं। जिस वस्तु के लिये प्राण रिये, उसी से हलना बिना।

... इतर पंगा के ठट पर चिठाए बस रही थीं छबर मन्धिर उठ उत्तर के धानक में बीपकों के प्रकाश से बगमगा रहा बा मानो बीरों की धारमार्ण बनक रही हों।<sup>१</sup>

घघुत-समस्या का यह धार्मिक पहलु है जिसे प्रेमचन्द ने काफी विस्तार के साथ 'कर्मभूमि' में चित्रित किया है और घघुत-बर्ग को विषय बनाई है। लेकिन घघुत-समस्या कोई मन्धिर प्रवेश की ही समस्या नहीं है। वास्तव में इसके उनही धार्मिक-स्वच्छि में कोई अन्तर नहीं था। प्रेमचन्द ने उन समस्या के धर्म्य पहलुओं पर भी बृत्ति डाली है। यदि वे समस्यामूक अत्याचार न होते तो इन बातों की बहुराई में क्यापि न जाते। कर्मभूमि में धमना संघर्ष सामाजिक और धार्मिक दशा को लेकर होता है।

घघुत और निम्न-वर्ग के रहन-सहन का स्तर किना मन्धिर बीरों में है बतना ही गणों में। उनके रहने के स्थान साधलु तरह है। कर्मभूमि में दण्ड बर्ग के मन्धिरों की समस्या की भी उठाया गया है। म्युनिगिपन-बोड और उगके कर्णधार केवल धर्मियों की ही सेवा करने में अपने कर्मध्व की दण्डियों समझते हैं। गरीबों की अज्ञानियों की ओर कोई ध्यान नहीं देना। नगर की सभी दण्ड धर्मियों इस उपाधा और धर्मधार के विरुद्ध संघटित होकर धर्म जीवनधाम का स्तर उँचा उठाने के लिये धर्मोदमन करती है। इन धर्मियों में बमार है बोधी है, मेहनत है, गर्द है नहार है। सब धर्म-धर्म पंचायत करने हैं और हड़ताल की तैयारी करते हैं। हड़ताल के पूर्व वे लोग धार्मिक से बहने-मुनने के लगे धर्मकण प्रवास कर चुके थे। प्रेमचन्द ने धर्मियों में एक गर्द धर्मना बनी हुई बनाई है। वे धर्मधर्म धर्मों को सहन नहीं कर लेने। उन्हें भी धर्म स्वत्व का ज्ञान हो गया है। वे धर्म धर्मधर्मियों की निर्कृत्यता और स्वार्थरता को सहन नहीं करते। मुनना के द्वारा प्रेमचन्द उन्हें धर्म धर्मधर्म के लिये लड़ने को तैयार करते हैं "धर्मियों से जो कुछ कहना-मुनना या बह गुन चुके किसी ने भी धर्म न दिया। धर्म धर्मना धर्मों यह बड़े धर्मधर्म हने उनका ही धर्मधर्म। धर्म मुनने तप करना है कि तुम धर्म हक के लिये लड़ने को तैयार हो या नहीं।"<sup>२</sup> धर्म धर्म धर्मधर्म के स्तर में कहाँ है, "धर्मियों को ही धर्म धर्म धर्म धर्म, धर्म धर्म पर भी न धर्म। धर्म धर्म में धर्म धर्म है। उनमें में धर्म धर्म धर्म धर्म

१ कर्मभूमि—पृ० २११ २२०

२ " " " २११ २१७

नर से बीमार है। उस काल कोठरी में बीमार न हों तो क्या हों। सामने से गन्धा नासा बहता है। राँध सेते नाक कटती है।<sup>१</sup> घाने बलकर म्युनिसिपल बोर्ड इन टूटी-फूटी घोषणियों का ही समुल गष्ट करने पर तुल जाता है। 'नगर निर्माण-संघ बनाकर किसानों की जमीन धमीरो के बोगसे बनवाने के लिए कौड़ियों में खरीद ली जाती है। जनता इसके विरुद्ध आवाज लगाती है। 'सुधा ऐसी समस्त बसियों से आह्वान-स्वर में कहती है 'हमारी लड़ाई इस बात पर है कि जिस नगर में आगे से आशा आवासी यन्त्रे बिकों में मर रहो हा धन कोई प्रतिकार नहीं है कि मजदूरों और बोगनों के लिए जमीन बँच। घाने देखा जा यहाँ बई हरे नर नाँव से। म्युनिसिपैलिटी न नगर निर्माण-संघ बनाया। पाँव के किसानों की जमीन कौड़ियों के दाम छोड ली गई और आज बही जमीन धस-कियों के दाम बिक रही है। इसलिए कि बड़े धारमियों के बँगसे बनें। हम घाने नगर के विवादाओं से पृथक्ते है क्या धमीरों हो के बाल हाती है? गरीबों के जान नहीं होटी? धमीरों ही का सम्पूर्ण रजना बाहिर? यरोबों को सम्पूर्ण की अकण्य नहीं? धन जनता इन तरह मग्ने को लीवार नहीं है। धनर मरना ही है तो इस मीशन में तुमे धाडास के लीके अग्ना के शीतल प्रकाश में मरना बिकों में मरने से बही घन्था है। हमे बाँध के मेन्बरो का यही जेनाबनी देनी है? 'घसूतों और बसियों का बिज्ञान समुक्त म्युनिसिपल बोर्ड के कार्यालय को घोर बहता है। लीना क बसिधान से उठे दुःख्य बरा मिलता है और धस्त में उसकी बिजय होटी है। म्युनिसिपल-बोर्ड घपन निर्णय को निरस्त कर देता है।

इस प्रकार 'धर्ममूर्ति में अघुत-बग के सामाजिक और धार्मिक पहलुओं पर भी प्रेमचन्द ने पूरे मनोयोग से लिखा है। अघत समस्या का समाधान यही है कि छासकों को और दुःखीन कहुमान वालों को बाहिर कि वे बसियों को सीधे-सीधे मानवीय अधिकार प्रदान करें। अग्यदा धन समय धा मया है कि व नीन बैठने वाले नहीं है और कभी भी बिरोडु की धाग न-क्य सफते है। प्रेमचन्द ने समाज के ठेकेदारों को अज्ञानी देकर उल्ल समस्या पर भली भानि प्रकाश बासा है। घपने उपग्यासों में कबा-बिकास को रोक कर अग्नि-धियल की कला को मूलकर प्रेमचन्द पार्श्व के मुष्ट से मग्ने-मग्ने भाव्यल दिनवाने लपते है। इसका मूल अटल अहरी है कि वे अग्नास के माध्यम से किमिल्ल समस्याओं का अकण्यन कामा बाहते से। यदि वे इन लम्ब संघारों और मायनों को न रघते तो जनता अहरेय ही पुरा न हाता।

१ बही पृष्ठ २६०

२ बही ३६४ ६३

## बैरवा-समस्या

प्रेमचंद समस्यामूलक सपनासकार से यह बात उनके प्राथमिक सपनास से लेकर अन्तिम सपनास तक में अतीव्यक्ति बुद्धिकोषर होती है। प्रेमचंद इस तरह को लेकर ही सौन्दर्याधिक क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। उन्होंने अपने पूर्व का 'सूनु-हिरी' का प्रायः समी कथा-साहित्य पढ़ना था परन्तु अपनी पूरा परम्परा के अनुकार और न कोई सुन्दर कथा मिलने की दृष्टि से उन्होंने अपना उठाया ही। उनकी प्रथम सामाजिक चेतना छोड़कर कृतियों के निर्माण की शिष्टा में उन्मुख थी। 'बदनाम' में यह तब से प्रथम परिचय से शुरू से ही 'प्रतिज्ञा' तो एक सुनिश्चित समस्या विषय-समस्या को लेकर ही हमारे सामने आई। प्रेमचंद इस शिष्टा में निरन्तर भागे करते रहे और अपने प्रसिद्ध एवं सत्यपिण्ड मोक्षिय सपनास सैबासदन में से बैरवा-समस्या को लेकर आते हैं। जिस तरह 'प्रतिज्ञा' पर विषय-समस्या आई हुई है उसी प्रकार 'सैबासदन' पर बैरवा-समस्या। प्रेमचन्द अपने इस सपनास में बैरवा-बुद्धि पर अपने विस्तार से लिख गये हैं कि अपने किरण सपनासों में इस विषय को पुनः स्पर्श करने की आवश्यकता अनुभव नहीं हुई। बैरवा-समस्या के प्रत्येक पहलू पर अनेक बुद्धिकोशों से 'सैबासदन' में विचार दिए गये हैं। बैरवा बनने के मूल कारणों से लेकर उक्त सामाजिक कुख्या को दूर करने के उपायों तक का सर्वांग 'सैबासदन' में भिन्नता है। जैसे 'सैबासदन' में यह समस्या प्रेमचन्द के बुद्धिकोश से अपने में बूझ है कि 'बदनाम' में एक-बाप व्यवहार इस प्रश्न पर अर्थात् की गई है। 'सैबासदन' में प्रेमचन्द का बुद्धिकोश धार्मिक-वादी है, वहाँ से गुणवत्ता के अर्थों से सामाजिक विद्वानों का मूल्यांकन करने है, पर अपने अन्तर्गत उनके विचार पर्याप्त शक्तिशाली हो जाने हैं और वे समाज का पूरा खींचा-ताना कर सकते हैं। इन दृष्टि से 'सैबासदन' में सत्य विचार के अतिरिक्त गोदान में उक्त समस्या पर पाये जाने वाले विचार भी अपना महत्त्व रखते हैं। बरन् वहाँ कहा जाय कि प्रेमचंद बड़ी धरती पूर्व सपनासों की स्वयं ही एक प्रकार से आलोचना करते हैं। लेकिन इस आलोचना व्यवहार शक्तिशाली विचारों से उनके पुनः दृष्टिकोश का अन्तिम सपनास नहीं

ही बाधा । यदि धामामो हृदयों में प्रेमबन्ध उठने ही विस्तार से, यथार्थवादी ढंग से उक्त समस्या को चिन्तित करते तब निश्चय ही उनकी पूर्व मामूलापूर्व महत्त्वहीन हो जाती पर प्रेमबन्ध के उपस्थासों में यह बात नहीं पाई जाती । अतः सम्प्रथम 'सेवासदन' में व्यक्त बेरमा-समस्या पर उनके दृष्टिकोण को व्याख्या आवश्यक है । धाम भी अनेक सुधारवादी संस्थाएँ उनकी व्यावहारिकता में विरवास रखती हैं । यद्यपि 'सेवासदन' उक्त समस्या पर प्रेमबन्ध के विचारों की सीमा नहीं है ।

प्रेमबन्ध में अपने उपस्थास में क्या समस्या को इसलिए नहीं उठाना कि उससे उपस्थास सरस हो जायगा और उसकी बिजो अधिक होगी । मौन-वीकित पाठकों को प्रेमबन्ध के सेवासदन उपस्थास को पढ़ने के बाद बड़ी निराशा होगी । और न प्रेमबन्ध बेरमा-समस्या की बड़ में मारी-मनोविज्ञान की बारीकियों में ही उलझे हैं । धामका दृष्टिकोण विरुद्ध सामाजिक है । वे बताते हैं कि सामाजिक-धार्मिक कारण मिलकर मनुष्य के मन को बनाते हैं । अतः उन्होंने किसी व्यक्ति विशेष को न लेकर ब्रिटिश वर्ग को ही धमन सामने रखा है । प्रेमबन्ध के पाठों का किसी व्यक्तिपर नितास्त स्वतंत्र नहीं होता । वे किसी वर्ग की समस्त दुःखताओं-सबलताओं को लेकर हमारे सामने आते हैं । 'सेवासदन' की मुमन' एक ऐसा ही पात्र है । प्रेमबन्ध ने कहीं भी बेरमा-जीवन के चिन्तने रूप के विश्लेष में क्वि सीमा तो दूर उसका मात्र वर्णन तक नहीं किया है ।

उनका यथार्थवादी हृदय इन बातों को जान बुझकर छोड़ देता है । यदि बेरमा-जीवन के इस पक्ष पर पृष्ठ के पृष्ठ मिल गये होते तो निश्चय ही 'सेवासदन' एक हल्का उपस्थास प्रमाश्रित होता । सामाजिक-स्वास्थ्य की दृष्टि से प्रेमबन्ध के उपस्थास आदर्य उपस्थास है । हो सकता है कि उनका धारणावाद कहीं-कहीं अस्वामाजिकता की सीमा को छूने लगा हो जैसे 'सेवासदन' में मुमन का कथन "यद्यपि इस काजल की कोठरी में बाकर पबिन रहना कठिन है, पर मैं बड़ प्रतिज्ञा करती हूँ कि अपने सतीत्व की रक्षा कर्होमी पाउंगी मार्चुपी पर अपने को अह न होनूंगी ।" और प्रेमबन्ध न मुमन की निश्चय ही अष्ट होने से बचा लिया है । धौपग्यासिक रुका के आधार पर मुमन के चरित्र पर कोई भी कर्हक नहीं बताया जा सकता । वह एक होय होते हुए भी समस्यामूनक उपस्थासकार के लिए अम्य है, क्योंकि समस्यामूनक उपस्थासकार का मुख्य उद्देश्य समस्या के मूल कारणों और उनको मुनम्नने के प्रयत्न की ओर रहता है । यदि उनकी हृति उस समस्या को निबटाने के स्वाग पर समाज में और जीवन को सबलता से प्रोत्साहित करे, तो वह समस्यामूनक उपस्थासकार के पर का धर्मकारी नहीं । 'सेवासदन' बेरमा-

समस्या के मूल कारणों पर ही विस्तार से प्रकाश नहीं डालना बरन् उन समस्या के हल के भी अनेक व्यावहारिक सुझाव उपस्थित करता है जो एक नीमा तक समाश्रययोगी बड़े या मझते हैं यद्यपि उनसे प्रस्तुत समस्या का अंतिम निदान संभव नहीं स्वयं प्रेमपात्र ने इस मूल को बोधान में प्रकट किया है।

सिखाई बेरपा-वृत्ति क्यों घपनाती है ? प्रेमचंद ने इस विषय पर निम्नलिखित टिप्पणों का उल्लेख किया है—

बकीस पपसिंह रामा सुमन' के बेरपा-वृत्ति संवीकार करने पर अपने मन में सोचते हैं—

परि मीने उसे घर से निकाम न रिया होता तो इस मर्ति उलझ पकल न होता। मेरे यहाँ से निकल कर उसे घोर कोई टिकला न छा घोर ब्रेष घोर कुप नैराश्य की घबरेला में बह यह भीपल धमिमय काने पर बाध्य हुई।<sup>१</sup>

बैक घर के बाबू और समाज सुधारक विट्ठलदास से स्वयं 'सुमन बेरपा-वृत्ति घपनाने के मूल कारण पर बर्षा करती है। साथ सोचते हैं कि जोय-बिनाग की मानसा संकुमार्य में धारि हैं पर बास्त्व में ऐसा नहीं है। मैं जानती हूँ कि मने घरपल्य निष्ठ कर्म किया है। सजिन में बिबता भी इसके विधाव में निग घोर कोई शरता न था। इतना ठा साथ जायते ही है कि संघार में सबकी प्रकृति एकगी नहीं होती ? कोई घगता घाघान छह उरता है। मैं एक ठेके बुन की लफ्की हूँ गिता की मादामी सं मेग। रिबाह एक दरिद्र मूग मनुष्य सं हुषा नेकिन बरिह होने पर मो मुमने घपना घपमान न सहा जाता था। जिनका निघरर होना पाहिण उघवा घारर होवे बैलकर मीरे हरय में कुबाउतारै उठने लपनी थीं। ...सम्भव था कि कामांतर में यह धमि साथ ही साथ शाग हो जाती पर पपसिंह के जन्मे में इस धमि की मझा रिबा। पपसिंह के पर से निकल कर मैं मांती बार्द की शरण में बर्द। मरर उघ बरल में भी मैं इस कुमार्य से भायती रही। मीने जाहा टि कपके सीटर घागता निबर्दि बरू पर घुरों न मुझे ऐसा ठंय किया कि धम में मुझे घुरै में बूदना पड़ा गुग न मगी बही बर मीरा घारर तो है। मैं निगी की गुमान तो नहीं हूँ।<sup>२</sup>

महो बाग घाने पमकर यह पपसिंह रामा से भी बहती है। साथ साथै गम मने हो कि घारर घोर मज्जान की मूग बड़े घारमिग की बा हाती है। रिम्नु दोन-बटा बागे प्राडिमीं ब। हमरी मूग घोर मा घरिरर हाती है कनाकि उनक पाल इसके प्राण करने का कोई साधन नहीं होता। मैं इसके लिए बोरी घम-बगट ताब मुघ कर बैठते हैं। घारर में बह मंनोर है जो घन घोर घाग-विघाम में भी नहीं है।

१ महाभारत—१ ८७

२ बही —पृ० ६१—६२

मेरे मन में नित्य यही चिन्ता रहती थी कि धारर कैसे मिले । इसका उत्तर मुझे बिठ्ठी ही बार मिला लेकिन धारसे होना बाने बलसे के दिन जो उत्तर मिला उसने भ्रम दूर कर दिया मुझे धारर और सम्मान का माय दिवा । यदि मैं इस बलसे में न जाती ठा धार में धारण रूपसे मैं संतुष्ट हूँगी । धारको मैं बहुत सम्पन्निय पुण्य समझती थी इसलिए धारही रमिणता का मुझ पर भी प्रभाव पड़ा । मोठी बाई धारके सामने जब स बैठी हुई थी धार उसके सामने धारर और भक्ति की मूर्ति बने हुए थे । धारके मित्र-दुश्मन धारके इशारों पर कठमुठली की मूर्ति भावने थे । एक सरल हृदया धारर की धर्मभाषिणी स्त्री पर इस वृथका जो फल हो सकता था बाई मुझ पर हुआ ।<sup>१</sup>

धरणी बहुत शांति के बिनाइ सबकी दुर्घटना पर मुझ धरणी को बोपी टूटती हुई पुन धरणी इस धरण्या क मूलकारण पर प्रकाश डालती है धरणी विकास की इच्छा और निरम धरणा न उभरने लगता शक्ति को शिथिल न कर दिया होता तो बहुकराधि धर से बाहर धर न निवासती । बहु धरणी धरि के हाथों कड़ी-से-कड़ी मातना सङ्गी और धर में पड़ी रहती । धर से निकलते समय जैसे यह धरणा भी न था कि मुझ कभी धारमंडो म बैठना पड़ेगा । बहु बिना कुछ सोचे-समझे धर से निकल लगी हुई । उस शोक और नैराश्य की धरण्या में बहु भूंस गई कि मेरे पिता हैं बहन हैं ।"<sup>२</sup>

इस प्रकार प्रेमचंद ने धरणावृत्ति के दो कारण प्रपाद-रूप से बताये हैं । एक तो नारी के स्वामिमान का कुछसा जाना जिसकी बाई में वैवाहिक-धरण्या नाम करती है, और दूसरा विमायी-शोकन के प्रति धारकर्षण जिसकी मीठ में मनुष्य की स्वामिधिक दुबलता निहित है । ऊपर की धर पर देखने से यह मामूम पड़ता है कि प्रेमचंद ने धरणावृत्ति के धारिक धरु को सरा नही किया । कुछ बिचारकों के मत से धरणावृत्ति का मूल कारण धारिक है । सही है पर प्रेमचंद के उपर्युक्त स्वामिमान-रक्षावाले कारण धर धारिक धारार में कोई भीतिक धेर नहीं है । बिना धरने धरों पर लड़े हुए नारी स्वामिमान से भीषित नहीं रह सकती । धारर और स्वामिमान के पीछे धारिक धारार धररमंभाषी है । जो स्विया समाज में धरणी धारिक समझा हुए नहीं कर सकती उन्हें धरणी में यही मात धरनाना पड़ जाता है क्योंकि दूसरे विधिति में उन्हें धरणावृत्ति भीषण धरणीय करना पड़ता है । धरने समाज धरिण होने के कारण स्त्री स्वर्णन रूप से धारिक धरिण से धरणी को मुहुड भी नहीं बना सकता इसे हम प्रेमचंद-धरणी की सीमा भी बहु सधते हैं,

१ सेवासदन—दृष्ट ११०

२ वही— " १२२

क्योंकि धाम सम्प्रदाय की ऐसी स्थिति नहीं है। धाम नाटो स्वतंत्र रूप से अपनी नींविका के अनेक साधन छोड़ सकती है और स्वतंत्र रूप से पूर्ण स्वाधिमान के साथ जीवन यापन कर सकती है। 'सेवासदन' से 'सुख' बेरवा-भूति धराने के पूर्व ऐसा ही करती है, पर समाज उसे इस प्रकार जीवन स्थीत करते नहीं देना पाता। अतः बेरवा-भूति का धार्मिक अर्थ प्रेमचर की भूति से अलग नहीं रहा है।

इस स्थान पर बेरवा-भूति के उन सभी कारणों की खर्चा करने की आवश्यकता नहीं है जो समर-समर वर अनेक विचारकों से उत्पन्न किये हैं। उनका उपन्यासों से आई अल्प अनुमानों की तरह हम केवल यह देखना है कि प्रेमचर उक्त समस्या के प्रति अपने क्या विचार रखते थे तथा उन्होंने उसके इन की विद्या में कौन-कौन से मुख्य अपने उपन्यासों में हमें दिये हैं।

व्यक्तिगत रूप से बेरवाओं के प्रति प्रेमचर बड़े उदार हैं। उन्होंने कभी भी इस वर्ग को निरा नहीं की है, कभी भी पूजा के साथ स्थित नहीं किये हैं। समाज के अविश्वसनीय अक्षिप्त और शोषित वर्गों के प्रति प्रेमचर के हृदय में अतृप्त महानुभूति है। वे किसी व्यक्ति विशेष के प्रति प्रशंसा के साथ उत्पन्न नहीं करने बरन् व्यक्ति प्रथा के विरुद्ध सतत संघर्ष में लिखते हैं। पाठक उन प्रथा विरुद्ध से प्रेरित करने लगता है न किसी पात्र विशेष से। बेरवा-भूति के विरुद्ध प्रेमचर ने बड़ी कठोरता से लिखा है, लेकिन बेरवाओं को बुरा भना नहीं गया है। बही नहीं उन्होंने लोगों को भी स्पष्ट कहा है कि वे बेरवाओं को शोषित करने के परिष्कार नहीं क्योंकि बेरवा-भूति समाज के पात्रों का ही एक है। परन्तु अर्थात् उक्त विषय पर भाषण करते हुए कहते हैं ... हमने बेरवाओं को शत्रु के बाहर रखने का प्रस्ताव इतना नहीं किया कि हमें उनसे प्रशंसा है। हमें उनसे प्रशंसा करने का कोई अधिकार नहीं। यह उनके साथ और सम्पाद्य होगा। यह हमारी ही बुद्धिमत्ता, हमारे सामाजिक अर्थानुसार, हमारा ही सुप्रचार है किन्तु बेरवाओं का का कारण किया। यह अन्तर्गत हमारे ही जीवन का अन्वय प्रतिक्रिया हमारे ही वैसाविक अर्थानुसार का साधन स्वयं है। हमें अन्तर्गत अन्तर्गत प्रशंसा है। उनको अन्तर्गत बहुत साधनीय है। हमारा अन्तर्गत है कि हम उन्हें सुधार पर लाने उनसे जीवन को सुधारें और यह नहीं हो सकता है, जब वे शत्रु से बाहर अन्तर्गत से दूर रहें। हमारे सामाजिक सुधार अन्तर्गत के अन्तर्गत है और वे सामाजिक अन्तर्गत अन्तर्गत के अन्तर्गत। अन्तर्गत को अन्तर्गत करना चाहते हो तो अन्तर्गत को अन्तर्गत दूर करवायें जब अन्तर्गत अन्तर्गत ही अन्तर्गत हो जायगी। अन्तर्गत बेरवाओं को अन्तर्गत वर विचार करना है ही वे अन्तर्गत अन्तर्गत ही अन्तर्गत है अन्तर्गत अन्तर्गत

है, पर उन्होंने अपने इन स्वर्गीय गुणों का सेवा दुरुपयोग किया है। उन्होंने अपनी धारणा को क्लृप्ता बना दिया है। हाँ ! केवल इन देवताओं के लिए, इन अवसरों पर धामूपकों के लिए उन्होंने अपनी धारणाओं का विद्युत् कर बना है। व धर्मों के नामों के अति निकलनी चाहिए की कपट-कटाक्ष और कुचेष्टाओं से भरी हुई है।

...कितनी घबोहती है।<sup>१</sup> पर्याप्त एक और स्थल पर कहते हैं, प्रायः प्राय एक बट्टे के लिए मरे लाख दामनदो बनें तो प्रायःको मालूम हो जायगा कि जिसे प्रायः क्वासायुष्मो पवन समझ बैठे हैं वह कबल बुझे हुई प्राय का डेर है। धर्मों और बुरे धारणाओं सब बगल होते हैं। बरपाएँ भी इस नियम से बाहर नहीं हैं। प्रायःको यह विश्वास है कि उनमें कितनी धार्मिक धारणा प्रायः जीवन से कितनी बूझा अपने जीविकोद्धार की कितनी घबोहाया है।... उन्हें केवल एक सहाये की धारणा है जिसे पकड़ कर वह बाहर निकल जावे।<sup>२</sup> और प्रायः केवल प्रेम-बर्ष सुमन को बिदुषी बनाकर दिखाते हैं, सुमन छोपती है, 'सुमन होने कीसे फिर कर कैसे ऐसी बिदुषी हो गई कि पत्रों में उनकी प्रशंसा छपती है।'<sup>३</sup> इस प्रकार प्रेम-बर्ष बेरयाओं के प्रति बूझा उत्पन्न नहीं करते बरन् उन्हें सुधार की दिशा में ले जाकर समाज में बेरया बनने के पूर्व से वहीं धार्मिक प्रतिष्ठित रूप से दिखाते हैं। वे समाज से बेरया-वृत्ति को समाप्त कर देना चाहते हैं जिस समाज में बेरया-वृत्ति को स्थान दिया जाता है वह सम्भव नहीं कहा जा सकता। बेरया-वृत्ति को मिटाने की क्रिया में बेरयाओं को कह चुँच सकता है, पर उसके पीछे पुनीत उद्देश्य छिपा हुआ है। पर्याप्त बेरया-वृत्ति को समाप्त करने के निमित्त प्रस्तुत प्रस्ताव पर कहते हैं, 'इस प्रस्ताव से हमारा उद्देश्य बेरयाओं को कह देना नहीं बरन् उन्हें सुधार पर लाना है।'<sup>४</sup>

बेरया-सम्भ्या के हल और बेरया-वृत्ति समाप्त करने के उद्देश्य से 'सिवालय में प्रेम-बर्ष ने पर्याप्त उत्पन्न तर्कों के साथ अनेक उपाय सुझाये हैं। प्रेम-बर्ष लिखते हैं, 'जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विभिन्न-विभिन्न बाधनाओं का प्रावण रहता है। बचपन विद्यार्थों का समय है बुझा लोभ का जीवन प्रेम और लाभताओं का समय है। इस अवस्था में मोना बाजार की मर मर में विचलन मथा देती है। का मुहुक है, लज्जाशोक या भावशून्य है वह संभव जाते हैं। रोय टिपलते हैं और फिर पढ़ते हैं।

१. सेवासदन—पृ० २१२ २०

२. " १११

३. " १११

४. " २१६



सराब को दुकानों का हम बस्ती से दूर रखने का प्रयत्न करते हैं। पुएलाने से भी हम बचा करते हैं, लेकिन बेरयापों की दुकानों का हम मुगजिन कोठों पर बीच बाजार में टाट से सजाते हैं। यह पापासंजना नहीं तो घोर क्या है ?

..... इसलिए आवश्यकता है कि इन बिपमरी मागियों को घाबारी से दूर किसी पृथक स्थान में रखा जाए। तब उन निम्न स्त्रियों की घोर पीर करने वाले हुए हम सकोच होना। यदि यह घाबारी से दूर हों घोर वहाँ मृत्यु के लिए किसी बहाने की गुंजाइश न हो तो एव बहुत कम बेहया घाबारी होंगे जो इस भीताबजार में क्रम रखने का साहम करें।<sup>१</sup> तीसरे परिच्छेद में यही बात बिट्टमराम बहया है। प्रेमचंद बिट्टमराम के मुँह से भी घटना अरूप स्पष्ट भाषित करते हैं, 'मरा पहला अरूप है, कि बरयापों का साबरनिक स्त्रियों से हटाना घोर दूराय बरयापों के नाचन-गान की रसम को मिटाना।<sup>२</sup> यहाँ बरयापों की बस्ती को नगर से हटाने के अतिरिक्त प्रेमचंद बरयापों के नाच-गाने की रसम को भी मिटाना चाहते हैं जिसे बेरया-नमस्या के मुबारक व हम में सहायता मिल सके। मात्र मृत्यु का ही न निग्रह कर प्रेमचंद अपने बिचारों की व्याख्या भी करते हैं। पर्याप्त रसम नाच गाने की प्रथा के मिटाने के संबंध में अपनी संक्षेप व्यक्त करते हैं 'लेकिन यहाँ मुझे एक संका होती है। ध्यानिर हम लोगों ने भी शहरों ही में इतना जीवत अजीब क्रिया है हम सोच इन दुर्भाग्याओं में क्यों नहीं पड़े ? नाच भी शहर में घाये-रिन हुआ ही करते हैं लेकिन उनका एसा अर्थव्य परिणाम होने बहुत कम होगा गया है। हमने यही निश्चय होता है कि हम बिपम में मनुष्य का स्वभाव ही प्रथम है। घात हम घान्दोमन से स्वभाव तो नहीं बरन मरने।<sup>३</sup> प्रेमचंद में यहाँ अपनी स्वयं घानाचना करके यह यथाया है कि उपरान्त मुग्ध घान्दोमन ममत्या का आशिराज हम है लेकिन एसा बरन गता कुछ हाय सनेवा ही। घात के पूर्व हम के घनाच में आशिराज टग की लोछा लीकार नहीं करने। बिट्टमराम कहने हैं हम ता बिबन उन दशाया का संशयन करना चाहने है जो दुर्बल स्वभाव के मनुष्य हैं।<sup>४</sup>

मनामन का घट्टादगी परिच्छेद तो पूरा प्रमृत्त ममत्या से सम्बन्धित बाह-बिचार में भग हुआ है। प्रेमचंद में यहाँ स्पष्ट बनाया है कि बास्तव में ब तोय बीन है जो बेरयापों का नगर में घनाए गता जात है घोर अत्र अत्र का<sup>५</sup> ममाम गुप्ता का घान्दोमन नामन घाना है तब-तब के ही ताम मभी संभव उतापों में उमका बिरोध करते हैं। यहाँ तब कि उगे माग्नायिक रूप तक देने में संभाव नहीं

१	संघामन—	१२८	२१	२१
२	बड़ी	—	१२७	
३	बही	—	१२७	
४			१२८	

करते। प्रेमचंद लिखते हैं, 'शहर की कम्युनिस्टिपैलिटीयों में कुल १८ समाजवादी थे। उनमें ८ मुसलमान थे और १० हिन्दू। सुशिक्षित मेम्बरों की संख्या अधिक थी इसलिए शर्मों को विरहात था कि कम्युनिस्टिपैलिटी में बेरदाओं को नजर से बाहर निकाल देने का प्रस्ताव स्वीकृत हो जायगा। वे सब समाजवादी से मिल चुके थे और इस विषय में उनका रुकावटों का समाधान कर चुके थे लेकिन मेम्बरों में कुछ ऐसे धरम भी थे जिनकी ओर से ओर विरोध होने का भय था। वे लोग बड़े व्यापारी बनना और प्रभावशाली मनुष्य थे। १ और उनके कारखाने का मासिक मुन्गी बहुत बड़ा मुसलमानों के प्रतिनिधि हाजी हाशिम का समर्थन करता हुआ कहता है, 'यह हमारी तादाद को बढ़ाने की सही कोशिश है। तबामकें २ श्रीमती मुसलमान हैं, जो रोज रजती हैं, इजाजतारी करती हैं मीसूय और चर्च करती हैं। हमको उनके बाकी कर्मों से कोई बहुत नहीं है। मेक व बर की समा व बना देना खुदा का काम है। हमको तो सिर्फ उनकी तादाद से परवा है। ३ लेकिन समाज का एक वर्ग ऐसा भी है जो इन समाज-विरोधी तत्वों का स्पष्ट विरोध करता है। पेंशनर किटी क्लेकर रीयर हाफकठ धनी कहते हैं

अगर इन तबामकों की शीनकारी के तुकेल में सारे इत्तनाम को खुदा अमल धरा करे तो मैं बोजब न जाना पसन्द करूँगा। अगर उनकी तादाद की बिना पर हमको इस मुल्क की बापदाहो भी मिलती हो तो मैं बहुत न करूँ। मेरी राय तो यह है कि इन्हें मरकजी शहरों से नहीं हटूद शहर से बाहर कर देना चाहिए। ४ हकीम शोहरत खाँ कहते हैं, बनाज मेरा बस बात तो मैं इन्हें त्रिमुस्ताल से निकाल दूँ, इससे एक बड़ीय फायदा बने। मुझे इस बाजार के करीवदारों से प्रफ्तर घाबिका रहना है। अगर मरे महुबबी दफ्तर में फर्क न पाये तो मैं तो यह कहूँगा कि तबामकें होने और ताल्ल का अन्तार है। ईजा हो गये मे काम कर देता है, ज्येग वा तिन म लेकिन यह अहममी इस्तिवाँ रमा रमा कर और बुना-मुभाकर मारती है। मुन्गी बहुत बड़ा साइज उन्हें अदती हुए उकलते हैं लेकिन वे मे फासी मागिने हैं जिनकी धाँधों में जहर है। ये वे बरमे हैं जहाँ से बरायम के सोते निकलते हैं। किन्ती ही मेक बीबियाँ उनकी बरौमत धून के धाँधू रो रही हैं। किन्ते ही शरीफबादे उनकी बरीमत अस्ता व बनार हो रहे हैं। यह हमारे बरकिस्मती है कि बेततर तबामकें धपने को मुसलमान कहती हैं। ५ बकील शरीफ हसन के म्ग म— 'इसमें तो कोई

१ मेबासदत—पुष्ट १७ १४१

२ १७२

३ १७३

४ १७४

बुलाई नहीं कि वह अपने को मुसलमान कहती है बुलाई यह है कि इसलाम भी उन्हें उहें उहें रास्ते पर जाने की कोई कोशिश नहीं करता। हिन्दुओं की देखा-देखी "मसलाम न भी उन्हें अपने बापरे से खारिज कर दिया है। जो धोखे एक बार किसी बजह से गुमराह हो गई उसकी तगफ से इसलाम हमेशा के लिए अपनी भाँति बच कर लेता है। " और प्रागे बसकर प्रेमचंद समस्या का ७१ फीसदी हल प्रस्तुत करते हैं। सटीक हल करते हैं— अगर उन लड़कियों की मायाबज तीर पर खड़ी हो सके तो इनके साथ ही उनकी परिवारित की मूलतः भी निकल आये तो मेरे क्याम से ज्यादा नहीं तो ७५ फीसदी तबामके इसे लुठी से कबूल कर लें। " और इसी को लेकर म्युनिडिपलबोर्ड में परफिसिह अपना प्रस्ताव उपस्थित करते हैं जो तीन भागों में विभक्त है—

- (१) बेरयागों को शहर के मुख्य स्थान से हटा कर बस्ती से दूर रखा जाय
- (२) उन्हें शहर के मुख्य स्थान के स्थानों और पार्कों में जाने का नियंत्रण किया जाय
- (३) बेरयागों का नाब करान के त्तिये एक मारी टैक्स लगाया जाय
- (४) और ऐसे बससे किसी हानत में लुने स्थानों में न हों।

इस प्रस्ताव में धार्मिक पहलू पर कोई विचार नहीं किया गया है और इस प्रकार का यह प्रस्ताव ७५ फीसदी से भी कम प्रस्तुत समस्या के हल की दिशा में कारगर सिद्ध हो सकेगा। प्रेमचंद ने धार्मिक पहलू पर बुद्धि का रानी है पर वे उसका कोई ब्यावहारिक रूप सामन नहीं ला सके हैं। जीवन-निर्वाह की बुद्धि से प्रेमचंद बेरया-समस्या का वैयक्तिक हल प्रस्तुत करते हैं या महत्वहीन है। मुमन बहनी है— मे गुप घोर घाबर दोनों ही की छाड़ती हूँ पर जीवन-निर्वाह का तो कुछ उपायकर ना पड़ेगा ? ...कई ऐसा हिन्दू-जाति का प्रेमी है जो मेरे मुझारे के लिए ५० रुपये मासिक देने पर राजी हो ? " और प्रागे बस कर प्रेमचंद इन धार्मिक सहायता की व्यवस्था करता है। बिट्टमराम मुमन से कहते हैं— 'मुझसे तो कुछ नहीं हो सका लेकिन परफिसिह ने लाभ रल सी।

बहुनि दुन्हाटा प्रल पूछ कर दिया। वह अपनी मरे पास आये से घोर बचन है पवे है कि तुम्हें ५०) मासिक धारागम देने रहने। " समाज में देने परफिसिह कितने विन सकते हैं ? राउट है बरया-जीवन की धार्मिक समस्या के हल की दिशा में यह कई ब्यावहारिक मायों नहीं गुमाया। इस प्रकार 'सबासदन ७५ फीसदी से भी काफी कम प्रस्तुत समाया क हल की

१	विवासरत—पृ०	१०१
२		१०५
३		२६७-२६८
४		२९
५		३१२

हमारे सामने साठा है। बास्तव में धार्मिक दृष्टि से स्वतन्त्र जीवन यापन की व्यवस्था प्रेमचन्द अपने समय के समाज में नहीं देख सके। यह एक ऐतिहासिक सीमा है, इससे प्रेमचन्द को बेपी नहीं टूट्टया जा सकता। यह तो उनकी मर्यादा को बस ही पहुँचाता है।

'सेवा-सर्वग' के बाद योदान में वह ७५ प्येसबी से कम हून भी समाप्त हो जाता है और प्रेमचन्द समाज का डीना समूल बदलने की कोपछा करते हैं। बलीसबे परिच्छेद में मिर्जा साहब और मेहता साहब को बातचीठ ब्याग देने योग्य है। मिर्जा साहब की भारछा की 'बप के बाजार में बही स्थियाँ प्राठी है, जिन्हें या तो अपने घर में किसी कारण से सम्मानपूर्व्य ब्यामय नहीं मिसठा या जो धार्मिक कष्टों से मन्बबूर हो जाती है और घरर यह बोगों भरन हून कर दिये बामें तो बहुत कम धोरें इस भाँति पठित हों।

मेहता का मठ या 'मुख्यठ मन के संस्कार और भोग-भासला ही धोरतो को इस धोर भीबठी है। इसी बात पर बोगों बहूस करते हैं बियाका बाल इन शब्दों से होता है—

बड़ पर अब तक मुन्हाड़े न चलेंगे पसियाँ टोड़ने से कोई गठीबा गही।<sup>१</sup> कहीं 'योदान का बिपय और कहीं बेरया-समस्या। प्रेमचन्द को कहीं भी बबसर मिसा है उन्हाने बिभिन्न समस्याओं पर अपने बिचार स्वतन्त्रता से ब्यक्त किये हैं। ऐसे बबसरों पर वे धीपम्बासिक रचना-तन्त्र के शास्त्रीय नियमों के पासन की चिन्ता नहीं करते। ये सभी बामें उनको समस्यामूक उपम्यासकार सिद्ध करती है।

सबसे प्यारी बस्तु होती है। वह उठी के लिये जोती है और बही के लिए बरती है। उसका हँसना बोसना उसी के प्रसन्न करने के लिए और उसका बलाघ गुंमार खनी को मुमाने के लिए होता है। उसका सोहारा उसका जीवन है, और सोहारा का उठ जाना उसके जीवन का अन्त है।<sup>१</sup>

प्रतिभा में पूर्वा की कहानी विषया जीवन का हृदय विदारक विषय उपस्थित करती है। ठीक पति के मृत्यु के परचाण पूर्वा उठ उठूँ स हिन्दू-धर्म के धर्मग्रन्थियों पौमा-पंथियों तथा विद्वानों की दृष्टि से सोनने वालों की तिनार बनती है। यह सब इतने यथार्थवादी ढंग से चित्रित किया गया है कि विषया जीवन की सारी दयनीयता सारी विचरता एवं सारी दुर्बलता सामने ला देता है। पूर्वा का जीवन एक दर्पण है जिसमें हिन्दू-विषया का यथार्थ स्वरूप देखा जा सकता है।

कमला प्रसाद पूर्वा के पति पं० बलरामकुमार का मित्र है। बलरामकुमार की मृत्यु के बाद वह अपने बकिमानुस पिता बररीप्रसाद से उम्र लेकर पूर्वा की सहायता करने जाता है। पूर्वा के माँ बाप पहले ही मर चुके थे। मामा ने किसी प्रकार विवाह किया था। समुदाय में भी कोई समाज था। ऐसी स्थिति में पड़ोसी-धर्म के भाते बररीप्रसाद उसके पालन-पोषण का कुछ प्रबन्ध करना चाहते हैं और उसे अपने घर में ही रखने का प्रस्ताव रखते हैं। यह प्रस्ताव कमलाप्रसाद को अच्छा नहीं लगता क्योंकि उनमें धार्मिक भाँति थी। फिर भी पिता के मर के कारण वह पूर्वा के घर पहुँचता है लेकिन यही साबकर कि किसी भाँति पूर्वा को यहाँ से टाक दूँ मैंके जाने के लिए प्रेरित करूँ। प्रेषण होना। उसका निर्बाह कैसे होना उसकी रक्षा कौन करेगा उसका उसे सेतुपत्र भी प्यार न था।<sup>२</sup> और जब वह पूर्वा को देखता है, उसकी दृष्टता और विषय से बरी हुई सजल भाँतों को देखता है, बसक्य ठरम निज्जसक बीनमूर्ति को देखता है तो अपनी दुर्बलता पर अस्मिक सज्जित होता है। लेकिन उसकी यह लज्जा पूर्वा के गौरव और जीवन को देखकर लू म्मर हो जाती है और अपनी नामनामा की पूर्ण के लिये वह बड़ी-बड़ी बातें करके नीची घोर मुँह पूर्वा को अपने घर में ले जाने के लिए उन्नी कर लेता है। समाज में दूगरों की दुर्बलताओं और विचरताओं से लज्जा उठाने वाले विषयाओं का पहले पालन लक्ष्य बनाने है। नीची तिरवाँ उगरी प्रसामासक धम मरी बातों में धाजानी ने कौन जानी है। पूर्वा की कमलाप्रसाद के जाल में पीरे-पीरे बँसने लगती है। प्रेषण

१ बरराम पू० ११५

२ प्रतिभा पू० २५

लिखते हैं, "प्राभयविहीन प्रबला के लिये इस समय तिनके का सहारा ही बहुत या तो वह मौना की बीसे व्यवहृतना करती पर वह क्या जागती थी कि यह उसे उबारनेवाली मौना नहीं बरन् एक विपिच बलजन्तु है, जो उसकी धारमा को नियल जायगा । १ धीर भावे बलकर यही हीठा है । पूर्वा धीर कमला प्रसाद की पत्नी सुमित्रा के बीच छाड़ी के प्ररन पर सन्देश का बाठाबरण बन जाता है । कुबासनाधर्मों में लिपटा हुआ कमलाप्रसाद सुमित्रा का अपमान करता है धीर दिन रात पूर्वा के फँसान के कुचक्र रचता रहता है । सुमित्रा पूर्वा को एक स्वाम पर सचेत भी करती है, जब पूर्वा कमलाप्रसाद के बारे में कहती है—

बहन तुम कैसे बातें करती हो ? एक तो ब्राह्मणी दूसरे विषया फिर नाते से बहन मुझे वह क्या कुबुद्धि से बेलेंगे ? फिर उनका कमी ऐसा स्वभाव नहीं रहा ।

सुमित्रा पान लगाती हुई बोलती 'स्वभाव की म कहो पूर्वा स्वभाव किमी के भावे पर नहीं लिखा होता । जिन्हें तुम बड़ा संमयी समझती हो वह लिये रस्तम होते हैं । उनका तीर मैदान में नहीं बर में बलता है । २

पूर्वा सोचती है— 'वैषम्य क्या कबक का दूसरा नाम है । प्रेमबन्ध विषया की बयनीमता के सम्बन्ध में लिखते हैं, 'विषया पर दोपारोपण करना क्लिप्ता प्रासाद है । अनदा को उसके विषय में नीची से नीची धारणा करते बेर नहीं लगती । मानो कुबासना ही वैषम्य की स्वाभाविक बुद्धि है । मानों विषया हो जाना मन की सारी बुर्बासनाधर्मों सारी बुर्बलताधर्मों का उमड़ धाना है । ३

पराधीन पूर्वा बीरे-बीरे कमलाप्रसाद के बंगुल में धाने लकती है, धीर एक रात उसकी कामुकता का शिफार होते-होते बचतो है । पूर्वा के ये शब्द विषया के धमिरुपत बीचन की विमीपिका को क्लिप्ता स्पष्ट कर देते हैं, धन जान दो बाबूजी क्यों मेरा बीचन भ्रष्ट करना चाहते हो तुम मर हो तुम्हारे लिए सब कुछ माफ है, मैं धीर हूँ मैं कहाँ भाऊँमी ? हुब मरने के सिवा मेरे लिए कोई उपमय न रह जायगा । मैं तो धान मर भी बाऊँ तो किसी की कोई हानि न होमी बरन् पुष्पो का कुछ बोझ ही हलका होना । ४ पूर्वा का बीचन एक समस्या बन जाता है, धीर वह उस बर से निकल जाने का निरबय करती है— 'संसार में साच्चों विषयाएँ पड़ी हैं, क्या सभी के रचक बीटे हैं ? रिधी मति

१	प्रतिष्ठा	पृ०	२७
२		पृ०	३६
३		पृ०	५४
४		पृ०	६३-६४

जलके दिन भी कटते ही हैं। मेरे भी उसी भाँति कट जायेंगे। घोर ठिठ बहों घायम नहीं है, तो गंगा तो कहीं नहीं बर है।<sup>१</sup> वह बिषया-घायम जाने का निरवय करती है लेकिन भ्रमेसा बहने के भय से रुक जाती है। वह सोचती है "ठरू-ठरू के सम्येह मोर्षों के मन में वेदा होंदें। घामी जम से कम मोर्षों को मुक्त पर क्या पाती है फिर तो कोई बात भी न पूछेया। बिषया की कुलटा बनते किन्ती देर मगती है?"<sup>२</sup> निराम बह बहों उसी बाघावरण में ही रहती है। कमलाप्रसाद जब घम-जम से पूर्ण का सतीत्व हारक नहीं कर पाता तब वह उसे बोगे से एवात्त बोगसे में ले जाता है घोर वहाँ बलात्कार करने की उद्यत होता है। पूर्ण कमलाप्रसाद को पायम कर बैठो है घोर बोगे से बाहर बहक पर निकम पाती है। प्रेमचर बिषया के कदम जोवन का वहाँ बरमोर्षय ला देने है। वे कहते हैं, सब उसके लिए क्या घायम या? एक घोर जेन की दुस्वद पंखछाएँ यों दूधरी घोर रोशियों के माने चाँसुओं की पार घोर घोर प्राण-सीड़ा। ऐसे प्राणों के लिये मृगु के विषा घोर कहीं ठिठामा है।<sup>३</sup> पूर्ण के बीजम की निरपरा घपन घमिम घोर पर पहुँच जाती है। वह सोचती है, अपने पति के बाद ही उधने क्यों न प्राणों का त्याग विषा? क्यों न उसी शर के साज मनी हो गई? इन जोवन से तो सती हो जाना कहीं घपता या।<sup>४</sup>

यह सब प्रतिज्ञा की कथा घोर "पूर्ण" की कहानी है। यह कहल 'पूर्ण' की ही जोवन कहानी नहीं है, बरन् हजार-हजार हिन्दू-भारियों की कहानी है। युवा बिषया हिन्दू-समाज से एक बहुत बरो लमस्या है। प्रेमचर ममस्यामूलक उपपान का ये पत्र उग्हने इन सामाजिक समस्या को जो पूरी उमरा घोर भीपलुता से उपविषय किया है। कमलाप्रसाद घोर कमलाप्रसाद न भी घमिक मुक्तिन मनोबुद्धिबाने मनुष्यों का समाज में घमाव नहीं है। बिषयाओं की ऐसा समाज व्यवहार तथा बेरमाबुद्धि का पान घमभता है। घपता सम्भाल परिवारों में घायिक दिवहता से बिषयाएँ घपममिन जीवन का बीज होती है। 'निमला' में रामली का जीवन क्या है? रामली मुंठी तोतायम की बिषया बहन है। वह लहों के मरु रहती है। पारिवारिक जीवन में कभी-कभी जमद वेदा हो ही जाती है। ऐसे घमघरों पर घमिम के मनोमाज घपने घपार्य मय खरन में हेयने को मिनते है। मुंठी तोतायम मनी बहक के लममय में जो पाव राने है वे उग्हें के शरों में इन प्रचार है— देने तो घोता या कि बिषया

१ प्रतिज्ञा—पृष्ठ ६६

२ ' ' ' ' १००

३ ' ' ' ' १२१

४ ' ' ' ' १०३

है, पनाप है, पाव भर पाठ लागनी पड़ी रह्येयी । अब और नीकर-बाकर ना रहे है, तो यह अपनी बहिन ही है । लड़कों को बेचाराग के बिने एक धीरा की बकरत भी भी रख लिया सकिन इसके यह माने गयी है कि वह तुम्हारे ऊपर शासन करे । <sup>१</sup> सहायर बिबवा बहन को पानी के रूप में बेचना बिबवा का फिटना बड़ा मशक है । अब घर क घर में माई के द्वारा बिबवा बहन फिरस्तन हो सकयी है तो फिर माना कुर्मकारों से बल गमाव में उसके लिये क्या स्वाग हो सकता है ?

बिबवा-समस्या ने समाज म बगव नगस्थाओं को भी जल्प दिया है । प्रत्येक सामाजिक कृतीक्रिया को हिन्दू-समाज में सीमा हुई है, एक सीमा तक बिबवा समस्या हल हो जाने पर बुर हो सकती है । बिबवा-समस्या बैरवा समस्या को पराजय भयवा प्रत्यक्ष रूप से बम पहुँचाती है प्राचिक दृष्टि से तब बिबवा के बरि दो-तीन युवा लड़कियाँ हों तब तो यह समस्या और भी मयाबद्द हो जाती है । ऐसी स्थिति में धर्ममेल विवाह का प्रयत्न बड़ जाता है यद्यपि यमक लड़कियाँ प्राकम भविष्यहित रूँ बानी हैं प्यवा कुछ दुर्बल लड़कियाँ समाज की कुषामना को शिकार हो जाती है । प्राय ऐसे समाचार बैनिक पत्रों में पढ़ने को मिलते है । 'निर्मला में बन्पायी एही हो बिबवा है जिमके दो लड़कियाँ है । निर्मला और कृष्णा । पनि को मृत्यु के समय निर्मला पन्द्रह बप की और कृष्णा बम बप की थी । बन्पायी जो बिबवा हो जाती है, उसको समस्या नहीं पर पीछ है, लेकिन उससे उत्पन्न बटिन समस्या उसकी पुनियों के विवाह की है । प्रेमचन्द लिखते हैं "बटिन बिबवा के लिय इमसे बड़ी और बसा बिपति हो सकती है कि अबाव बैटी तिर पर सवार हो ? लड़के बम पीच पढ़ने का लखी है, बीना बर्तन भी अपने हाथ से किया जा सकता है कन्वा युवा खाकर निबद्धि किया जा सकता है, न्योपड़ में दिन काटे जा लखने है लेकिन युवनी कन्वा घर में नहीं बिगाना जा सकती । <sup>१</sup> और कस्य में निर्मला का विवाह एक बीहानू से हाता है । यह विवाह निर्मला की पाठायों-भविष्यताओं को जीवन को मापी हैनी-मुठी को मिट्टी में मिला देता है । इस तरह प्रेमचन्द ने बिबवा-समस्या के विभिन्न पहलुओं पर बूटिगाठ किया है ।

अब प्रश्न यह पाता है कि इस समस्या का क्या हल है । प्रेमचन्द ने समस्या को समीरता को ही इमारे समने नहीं रखा है बरन् उसके हल के सम्बन्ध में भी अपने विचार दिये हैं । बलुन देखा जाय तो बिबवा-समस्या के हल न होने का बुर बाराव प्राचिक है । बिबवा को नबम बडा समस्या यौवन-सम्बन्धी नहीं है—ईया कि कुछ लोय सोचते है, बिबवा विवाह यौवन सम्बन्धी सामनाओं



की पूर्ति के निमित्त नहीं बल्कि धार्मिक सहायता के निमित्त है क्योंकि समाज की इनायत ही कुछ ऐसी है कि यहाँ स्त्रियाँ मौजूद नहीं करतीं। प्रकृति पशु-मिथी मनुष्यों तक में है फिर बिना पशु-मिथी स्त्रियाँ किछ प्रशासक कार्य करने को प्रस्तुत हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में बिना बिबाह बिम्बा का उद्धार कर देता है। यदि स्त्रियों में शिक्षा का प्रवेश प्र हो बाप और ब मौजूद कर सके तो बिम्बा-बीबन की सारी इतनीपता मिट जायगी। स्त्रियों में मात्र यह प्रकृत धीरे-धीरे पैदा हो रही है। प्रेम के समय यह स्थिति न थी। धार्मिक बिम्बा बिबाह भी एक शासक बात समझी जाती है। लेकिन प्रेमकाल के समय बिम्बा से बिबाह करना सारी आर्थिकी कार्य समझा जाता था। बिम्बा समस्या को हल करने सिधे प्रेमकाल में ही उपाय बनता है—

( १ ) बिम्बा बिबाह और ( २ ) बनिता-प्राप्त्य को स्थापन

बिम्बा-बिबाह हिन्दू बिम्बा सारी की समस्या का एक कारगर हल समाज के हिन्दू-समाज का देखते हुए इसे सामयिक कदम भी कहा जा सकता है। धर्म की हिन्दू शिक्षा बहुत कम साधर है। दूसरे सामाजिक और नैतिक कदम में इनका धार्मिक जटिल ही नहीं है कि अतिरिक्त बड़ी-मिथी स्त्रियाँ भी का कोई स्वतन्त्र धार्मिक व्यवस्था नहीं कर सकतीं। जैसा कि निम्न या कुछ बिम्बा की समस्या बीज-नष्टि की समस्या नहीं है। बसका धार्मिक धार्मिक है। यही धार्मिक हिन्दू बिम्बा के पास नहीं के बराबर है। ऐसी स्थिति में यदि के मुक्त बिम्बा-बिबाह की पद्धति को लागू करें तो सामाजिक स्थिति का ही हुए समस्या के हल की पद्धति में उनका यह एक महत्वपूर्ण कदम होगा। यदि बिम्बा-बिबाह हिन्दू सारी की पर्याप्तता का कारण नहीं है, पर समाज के समय के हिन्दू-समाज के लिए यही आर्थिकी कार्य था।

प्रेमकाल में बिम्बा के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा में विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये हैं। प्रतिज्ञा का धार्मिक ही हल प्रारम्भ का सेक्टर होता है। वा के धार्मिक-जन्म में पंडित धर्मशास्त्र का व्याख्यान हो रहा है। बनिता व्यवस्था उपरिष्ठ जगता का उल्लास में जिसे पल्लो विद्योत हो पुरा है मूखने है। धार्मिक गोशों में किन्तु महाराष्ट्र है या वैश्व के भेद में नहीं हुए। धार्मिकों के साथ अपने कर्तव्य का पालन करने का साधन बनने है? कृपया से हाथ उठाने रहे। यदि यह बात? एक ही ही बरकर नहीं आता। हजारों मुक्त समाज बनाना सम्भव है, इनका साधक है। 'यह समाज की स्थिति है। बिम्बा

विवाह करने को न तो समाज में इच्छा है और न चाहत। प्रेमजन्य इस कठम्य पामन के लिये समुत्पन्न को सामने लाते हैं, और विवाह-समस्या का हम व्यक्ति-पक्ष रूप में प्रस्तुत करते हैं कि यदि जिसकी पक्षी स्त्री मर गई हो तो वह विधवा से विवाह करे। यह हम वैयक्तिक हो नहीं मरिक्ता से भी सम्बन्ध रखता है। समाज का यदि नैतिक स्तर उठ जाता है तब तो यह या इसके समान बनेक सम्मथार्थ अपने प्राप हल हो जाती है। प्रस्तुत विषय पर समुत्पन्न और प्रो० बालगाय में जो बहस होती है वह इस प्रकार है— 'यह इच्छा सिद्धांत है कि जिसकी पक्षी स्त्री मर गई वह विवाह से विवाह करे।

प्र०—'न्याय तो यही कहता है।

बाल०—'बस तुम्हारे न्याय पक्ष पर चलने हो से तो सारे संसार का उद्धार हो जायगा। तुम अपने कुछ नहीं कर सकते। हाँ मनु बन सकते हो। समुत्पन्न ने बालगाय को सर्क नेत्रों से देखकर कहा—'भारती बनेका जो बहुत कुछ कर सकता है। बनेका आदर्शियों ने ही आदि से विचारों में क्रांति पैदा की है। बनेके आदर्शियों के कृत्यों से साष्ट इतिहास भरा पटा है। कुछ नहीं कर सकता—यह मैं न मानूँगा।'

निसन्देह व्यक्तिगत रूप से विवाह विवाह विवाह-समस्या को सुसम्भने में सामयिक और आर्थिक सहायता कर सकता है। हर वह भी एक दुर्लभ काम है, कम से कम प्रेमजन्य के सम्म तो ना ही। विवाह विवाह के विरोधियों का इच्छा-प्राप्त बस विद्यमान था जो इसे बाध ठहरता था और कम की दुहाई देकर इसका बुरे से बुरे शर्तों में क्षुमा विरोध करता था। प्रतिष्ठा में ऐसे समाज का प्रतीक प्रेमा का विना बरपीप्रसाद है। माना बरपीप्रसाद विवाह-विवाह का विरोध करते हुए कहते हैं, 'मे समझता हूँ इससे हमारा समाज गट हो जाएगा हम इनसे नहीं आशोपति को पहुँच जायेंगे द्विगुण्य का पछा-महा विज्ञानी मिट जायगा।'

प्रागे बसकर जब उन्हें मानुस पड़ता है कि समुत्पन्न ने विवाह-विवाह करने की प्रतिष्ठा की है तब तो समझते हैं, समुत्पन्न ने तो प्राज्ञ होना ही हूँ दिया। बरपीप्रसाद का पुत्र कमपात्रछात्र भी समनराय की बन प्रतिष्ठा पर श्रव्य करता है 'यै तो समझता था इनमें कुछ समझ होयी। मपर निरा पौया निकला।....तो कोई विवाह मी टीक हो पई कि नहीं बहाँ है निरपलन कइ दो घब तुम्हारी जाँचे है कम ही संदेशा भेज ब। कोई और न जाय तो मैं जाने का तैयार हूँ। बडा मजा रूँवा। वहाँ है निरपलनी

१ प्रतिष्ठा पृष्ठ—५६  
 २ पृष्ठ—१०  
 ३ " पृष्ठ १४

की पूर्ति के निमित्त नहीं बरन् धार्मिक सहायता के निमित्त है क्योंकि हमारे समाज की बनावट ही कुछ ऐसी है कि यहाँ स्त्रियाँ लौकिक नहीं करतीं। यह प्रकृति पशु-जिवी मनुष्यों तक में है फिर बिना पशु-जिवी स्त्रियाँ किस प्रकार साधारण कार्य करने को प्रस्तुत हो सकती है। ऐसी परिस्थिति में विधवा विवाह विधवा का उधार कर देता है। यदि स्त्रियों में विवाह का विशेष प्रचार हो तब धीरे-धीरे लौकिक कर सके तो विधवा-जीवन की सारी दयनीयता स्वनिमित्त जायगी। स्त्रियों में आज यह प्रकृति धीरे-धीरे पैदा हो रही है। प्रेमचन्द के समय यह स्थिति न थी। आजकल विधवा-विवाह भी एक साधारण-सी बात समझे जाती है। लेकिन प्रेमचन्द के समय विधवा विवाह करना बड़ा भारी अश्लेषकारी कार्य समझा जाता था। विधवा समस्या को हल करने के लिये प्रेमचन्द ने दो उपाय बतलाए हैं—

( १ ) विधवा विवाह और ( २ ) बंदिता-साधन की स्थापना।

विधवा-विवाह हिन्दू विधवा मारी की समस्या का एक वास्तविक हल है। आज के हिन्दू-समाज को देखते हुए इसे सामाजिक कर्म भी कहा जा सकता है। आज की हिन्दू-सिद्धि बहुत कम साधारण है। बूढ़े सामाजिक और शैक्षिक वर्गता में वे इतनी धार्मिक अकर्म ही गई हैं कि धार्मिक पशु-जिवी स्त्रियाँ भी अपना कोई स्वतन्त्र धार्मिक व्यवस्था नहीं कर सकतीं। जैसा कि मित्रा या बुद्धा है विधवा की समस्या धर्म-तन्त्रि की समस्या नहीं है, बरन् साधारण धार्मिक है और यही साधारण हिन्दू-विधवा के पाठ नहीं के बराबर है। ऐसी स्थिति में यदि देश के मुबक विधवा-विवाह की प्रवृत्ति को बढ़ाते हैं तो सामाजिक स्थिति में देखने हुए समस्या के हल की दशा में फलका यह एक महत्त्वपूर्ण कदम होना। माना कि विधवा-विवाह हिन्दू मारी की पराधीनता का उधार नहीं है पर प्रेमचन्द के समय के हिन्दू-समाज के लिए यही अश्लेषकारी कार्य था।

प्रेमचन्द ने विधवा के सम्बन्ध में प्रतिज्ञा में विस्तार से अपने विचार व्यक्त किये हैं। 'प्रतिज्ञा' का प्रारम्भ ही इन प्रश्नों को लेकर होता है। काशी के कार्य-मन्दिर में पवित्र धर्मशास्त्र का व्याख्यान हो रहा है। पवित्र धर्मशास्त्र उपनिषद् जगत के उच्च भाग से किये पत्नी विधोम हा पुत्रा है पुत्रने है धार सोर्गों में विधाने महाराज है जो वैधर्म्य के अन्त में पशु हुई अक्षताओं का नाप करने कर्मका का पानक करने का आह्वान करते हैं ? कृपया के हाथ उदाय रह। परे यह क्या ? एक भा हाव मकर नहीं घाना। हमारा मुबक सम्बन्ध दानता कनव्यप्यतुय, दानता माहृमशीन है। \* यह सम्बन्ध की स्थिति है। विधवा

विवाह करके का न तो समाज में इच्छा है और न साहस । प्रेमचन्द इस कर्तव्यपालन के लिये अमृतराय को धामने लाते हैं, और विधवा-समस्या का इस व्यक्ति पर रूप में प्रस्तुत करते हैं कि यदि जिसको पहली स्त्री मर गई हो तो वह विधवा से विवाह करे । यह एक वैयक्तिक ही नहीं नैतिकता से भी सम्बन्ध रखता है । समाज का यदि नैतिक स्तर उठ जाता है तब तो यह या इसके समान अपनेक सम्पादन अपने पाप हल हो जाती है । प्रस्तुत विषय पर अमृतराय और प्रो. दलमान में जो बहस होती है वह इस प्रकार है— 'यह प्रश्ना विद्यमान है कि जिसकी पहली स्त्री मर गई वह विधवा से विवाह करे ।

प्रश्न०—क्याय तो यही कहता है ।

जान०—यह तुम्हारे क्याय पर चलने ही से तो सारे संसार का उदार हो जानना । तुम अपनेसे कुछ नहीं कर सकते । ही मनु बन सकते हो ।

अमृतराय ने जाननाम को समर्थ नेत्रों से देखकर कहा—भादनी अकेला जो कुछ कुछ कर सकता है । अकेले भादमियों में ही आदि से विचारों में अन्ति पिरा की है । अकेले भादमियों के हृदयों से सारा इतिहास मरा पड़ा है । कुछ नहीं कर सकता—यह मैं न मानूँगा ।<sup>१</sup>

निःसन्देह व्यक्तिगत रूप से विधवा विवाह विधवा-समस्या को सुलझाने में सामयिक और यांत्रिक सहायता कर सकता है । हर वह भी एक दुर्लभ काम है, कम से कम प्रेमचन्द के समय तो था ही । विधवा विवाह के विरोधियों का प्रश्ना-आशा हम विद्यमान का जो इसे पाप ठहराता था और हम की बुझाई देकर इसका बुरे से बुरे शब्दों में झुला विरोध करता था । 'प्रतिज्ञा में ऐसे समाज का अतीत प्रेमा का विना बहरीप्रसाद है । माता बहरीप्रसाद विधवा विवाह का विरोध करते हुए कहते हैं, मैं समझता हूँ इससे हमारा समाज गल हो जाएगा हम इससे कहीं अशोचन को पहुँच जायेंगे हिन्दुत्व का रक्षा-सहा चिह्न भी मिट जायगा ।<sup>२</sup> धाये चमकर जब उन्हें मानुम पड़ता है कि अमृतराय ने विधवा-विवाह करने की प्रतिज्ञा की है तब तो समझते हैं, 'अमृतराय ने तो आज बौना ही बूढ़ो दिया ।'<sup>३</sup> बहरीप्रसाद का पूरा कमवाप्रसाद भी अमृतराय की इस प्रतिज्ञा पर व्यंग्य करता है 'मैं तो समझता था, इसने कुछ समय होयौ । मरत निरा योगा विख्या । ...तो कोई विधवा भी टीक हो गई कि नहीं कही है मिसरयदन कह दो यह तुम्हारी जायें है, कम ही सन्देहा भेज है । कोई और न जाय तो मैं जाने का तैयार हूँ । बड़ा मजा रहेगा । कही है मिसरयनी

१ प्रतिज्ञा पृष्ठ—१६

२ " पृष्ठ—१०

३ " पृष्ठ १४

यह उनके भाव्य चमके । रूखी बिराहरी हो क्या बिपबा न ? कि बिराहरी की भी कीद नहीं रही ?' १ ये बे सारी कफावटें हैं जो बिपबा-समस्या के हम में सामने आती हैं । प्रेमचन्द ने उन सबका घबघा बिचल किया है लेकिन हजार कफावटों के होते हुए भी प्रेमचन्द समाज के धामे बढ़ाते हैं । प्रेमा और समुत्तराय जैम छन् पाशां को गढ़ते हैं । प्रेमा अपनी माँ बेबफी से कहती है 'प्रेम (समूत राव) सुशिक्षित पुरुष अमर यह क्रम न करने की कौन करेगा ? जब तक एम मान साहस से काम न लेंगे हमारी प्रभाविनी बहनों को रक्षा कौन करेगा ?' २ स्वयं प्रेमचन्द न जो बिपबा-बिबाह (?) बिबा बहु इस हम पर उनकी घास्वा का प्रमास है ।

प्रतिज्ञा में पूर्णा हिन्दू-बिपबा की प्रतीक है । माता बहरीप्रगाह उसे अपने पर रखने को सभ्ये हृदय से प्रस्ताव रखते हैं 'म सौच रहा हूँ पूर्णा को अपने ही घर में रखूँ तो क्या हरज है ? प्रकैमी धीरज जैसे रहेगी ?' ३ धीर जाने कम कर पूर्णा उनके घर में आ भी जाती है । पर स्वयं प्रेमचन्द यह अन्ती तरह बना देते हैं कि बिपबा की रक्षा का यह कोई हस नहीं है । पूर्णा का आगामी जीवन जो क्या लेता है वह मान बहरीप्रगाह की इस दया को बकार कर देता है ।

बिपबा-समस्या के हम का दूसरा उपाय प्रेमचन्द 'बनिगा-आधम की स्थापना द्वारा बताते हैं । यह उपाय वैयक्तिक तो नहीं है, पर धार्ष्णिकारी रूप प्रवरय लिए हुए है । प्रेमचन्द के आलोचकों ने उनके इस धार्ष्णिकारी की मुख गिन्पी उड़ाई है । पर वे यह भूल जाते हैं कि प्रेमचन्द के समय के समाज में हमने बड़ा प्रभावकारी व्यवहारिक बदल और क्या हा सकता था ? पराचोन जाति अपनी सामाजिक समरपाशों को इसी प्रकार मुसभ्य सकती थी । यही हममें जेतना अल्प करने तथा जातिजारी भावनाओं का धरने का माध्यम था । मात्र के युग में प्रेमचन्द के ये हम व्यवहारिक व्यवसा साधारण असे ही सर्व पर हमम मरिह नहीं कि उच्च समय का लेखक हमक घासे कुछ ठाव भी न सकता था । बनिगा आधम की स्थापना भी कोई सहर बनू न भी । प्रतिज्ञा ने प्रेमचन्द न इन पर भी पर्याप्त प्रकाश डाला है । समुत्तराय एक 'बनिगा-आधम' गोनन आ रहे हैं । कमलाप्रकार उनपर टिप्पणी करता है, "कमाने का नया ढंग निराना है । बहरी प्रगाह न जरा भावा सिबाइकर पूछा 'कमाने का ढंग कैसा है नहीं नमभ्य ? कमलाप्रकार—बही जो धीर सीहर करता है । 'बनिगा-आधम में बिपबाओं

१ प्रतिज्ञा पृष्ठ—१४ १३

२ पृष्ठ—२२

३ पृष्ठ—२२

का वास्तव-योग्य दिखा जायगा। उन्हें लिखा भी दी गायी। चन्दे की रजमे घायेंगी और बार लोव पौत्र करने। कौन जानता है कहीं से फिटने रुपये माए ? महीने भर में एक मूठा-सम्पत्ति दिखाव जायगा दिया।<sup>१</sup> इकित्तिसूती समाज का प्रतिक सामा बदरीप्रसार अनिता-वाद्यम बीछी संस्थाओं पर भी बुद्धि विचार रखता है, आपकी (प्रमुत्तराय) कर्तव्य बतने की बुन है। इस बीछ बवान विद्यबाधों को इपर-उपर से एकत्र करके रासमीसा रचायेगे। बार-दीवारी के समर कौन देखता है, क्या हो रहा है।<sup>२</sup>

प्रेमचन्द यह मत्तोमाति बता देते हैं कि समाज उक्त समर्या पर अपने क्या विचार रखता है, पर, वे उक्त समाज का समर्थन नहीं करते। समाज की प्रवृत्तियों का घाम देते हैं। प्रमुत्तराय द्वारा 'अनित्त-वाद्यम' की स्थापना करके समाज को गति देते हैं, उक्त साधने समझने के लिए संकेत करते हैं। मात्र भौतिक प्रवृत्तियों प्रकट करके नहीं रह जाते। 'अनित्त वाद्यम' की वाक्यस्वकता से प्रेमा के भावस से व्यक्त करते हैं। यह उभा घाम इसमिय की गई है कि आपसे इस तरह से एक ऐसा स्थान बनाने के लिए सहकारता माँगी जाय वहाँ हमारी घनाय वाक्यमहीन बहनें अपनी मान मर्त्या को रखा करत हुए शक्ति से रह सकें। कौन ऐसा मुहस्ता है जहाँ ऐसे इस-बाँच बहनें नहीं है। उनके ऊपर जो बीछती है, वह क्या आप अपनी साँचों से नहीं देखते ? कम से कम अनुमान तो कर ही सकते हैं। वे विचार घालें उठाती हैं उपर ही उन्हें विचार बड़े विचार देते हैं, का उनकी बीनाबस्था को अपनी कुनासगतो के पूरा करने का साधन बना लेत है। हमारी साँचों बहनें इस भाँति केवल बीचन-निर्वाह करने के लिय पतित हो जाती है। क्या आपको उक्त पर क्या नहीं घाती ? मे विरवास से कह सकती हूँ कि अनर उक्त बहनों को कौन रोटियाँ और माँ कपड़ों का भी सहारा हो तो वे धन्य समय तक अपने सरीख की रखा करती रहें। एनी हारे बनें पुराचारिणी होती है। अपने सरोत्थ से अधिक उसे संसार की और किन्ही वस्तु पर गर्व नहीं होता न वह किसी चीज को इतना मुम्बवान समझती है।<sup>३</sup>

इस प्रकार विद्यवा-समस्या पर प्रेमचन्द जैसे वाक्यक संकाफ में जो कुछ लिखा है वह हिन्दू-समाज को एक बुनोती है। उनका सुभारवारी बुद्धिकोष्ठ उक्त समय का बड़े से बड़ा क्रांतिकारी कदम था इतने इत्कार नहीं लिखा जा सकता।

## वैवाहिक समस्या

वैवाहिक समस्या भारतीय समाज की ही समस्या नहीं है बरन् समस्त सभी पुस्तकों से सम्बन्ध रखती है। प्रत्येक देश और जाति के लोग अपने-अपने धार्मिक विचार से विवाह के सम्बन्ध में सोचते हैं। प्रेमचन्द ने प्रायः अपने सभी उपन्यासों में हिन्दू-समाज की वैवाहिक समस्या का स्पष्ट चित्रण किया है। सामाजिक संरचना में विवाह का महत्वपूर्ण स्थान है। वैवाहिक प्रसंगियाँ समाज में प्रत्येक कुटुंबियों को पतन का सब्भार देती हैं। सामाजिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सभी-युवक के यौन सम्बन्धों में प्रसंगियाँ नहीं होनी चाहियें। प्रेमचन्द भारतीय जन-समाज का स्वरूप और धारण रूप में देखा चाहते थे। ऐसी स्थिति में वैवाहिक समस्या की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था। दूसरे प्रायः घर-घर में वैवाहिक समस्या एक पुराना समस्या के रूप में देगी जाती है। प्रेमचन्द ने वैवाहिक समस्या को मध्यम-वर्ग तक ही सीमित रखा है। उच्च व निम्न वर्गीय समाज का चित्रण इस क्षेत्र में नाम मात्र का है। वास्तव में देखा जाय तो वैवाहिक समस्या धरने सबस अधिक अटिठ रूप में मध्यमवर्गीय परिवारों में ही पाई जाती है। यद्यपि उक्त समस्या के लिये मध्यम-वर्ग की श्रेष्ठ मानकर जनता धारणरूप का।

सर्वप्रथम यह जानना धारणरूप है कि प्रेमचन्द की विवाह के सम्बन्ध में क्या मान्यताएँ थीं। बरन् 'प्रतिज्ञा है मेरे गोरान तक क्या व मान्यताएँ धारणरूप रहीं? यदि नहीं तो विवाह सम्बन्धी वे प्रसंग धीरे धीरे धारणरूप जीवन-जीवन-जी है? इस प्रश्न के उत्तर के लिये उनके उपन्यासों में धारण विचारों का उल्लेख धारणरूप है।

बरन्धन में प्रथम धारणरूप है यह कहने धारण का जीवन धारण धारण की हारणरूप है या नहीं धारण से न धारणरूप धारण मंदन उक्त प्रेम धारण धारण धारण का धारण का धारणरूप है जो जीवन धारणरूप धारण से न धारणरूप।"

“हृदय का निहार सच्चा विवाह है। सिद्धर का टीका धरि-बंधन घोर भीर में सब संसार के इकोमसे है।”<sup>१</sup>

“मैं धार्य बाला हूँ। मैंने गांधारी घोर माविषी के कुस म जन्म लिया है। जिसे एक बार मन से धरना पति मान चुकी उस नहीं त्याग सकती। यदि मेरी प्रायु इसी प्रकार रौंटे-रौंटे कट जाय तो भी अपने पति को धार स मुझे कुछ भी खेद न होगा।”<sup>२</sup>

बरदान में विवाह के सम्बन्ध में प्रेमचन्द के विचार प्राचीन धार्यों के पोषक हैं। यह धरय है कि वैवाहिक रीति रिवाजों को महत्व नहीं बतें। ‘सेवा-सदन’ में भी प्रेमचन्द यही बात लिखते हैं, बिबद्ध, भीर या सिद्धर बंधन नहीं बंधन केवल मन का भाव है।<sup>३</sup> प्रेमचन्द धर घोर प्रेम के धारार पर होन बामे विवाह के समर्पक थे। ‘सेवासदन’ में ख्याता कहती है, ‘हम विवाह को धर्म का बन्धन समझती हैं। हमारा प्रेम धर्म के पीछे चलता है।’<sup>४</sup> प्रमाधम में धारयो भी प्राचीन वैवाहिक धार्यों को सब कुछ समझती है, विवाह स्त्री-गुण के धर्मत्व को संयुक्त कर देता है। उनको धार्याएँ एक धूमरे में सम्मिश्रित हो जाती हैं।<sup>५</sup> परिष्करी धार्यों के वैवाहिक धार्यों को धारोचना करती हुई धारयी कहती है, उन धार्यों की बात न बलाइये बहू के सेवग विवाह का केवल धार्याजिक सम्बन्ध समझते हैं।....उनके विचार में स्त्री-गुण का धरुमति ही विवाह है। सक्ति धारतधर्य में कभी इन विचारों का धारर नहीं हुआ।<sup>६</sup> ‘काया धर्य’ में लोनों के मुख से पुन अररी रीति-रिवाजों को महत्वहीन ठहराया गया है, धार भीरें फिर बामे से ही ध्याह नहीं हो पाता।<sup>७</sup> कमभूमि में मैना कहती है ‘जो विवाह को धर्म का बन्धन नहीं समझता है, उन केवल बाधना की गुन्ठि का साधन समझता है, वह धरु है।’<sup>८</sup> ‘गोधान’ में मैला कहते हैं ‘प्रेम जब धारम-समर्पक का धर सेता है, तभी ध्याह है, उसके पहले देवारी है।’<sup>९</sup> हमके पूब ‘बरदान’ में प्रेम घोर विवाह पर प्रेमचन्द लिख चुके थे ‘प्रम धरि रा

१ बरदान—गुण—१२३ १२४

२ वही—गुण—१२८ (माधवी का धरन)

३ सेवासदन—गुण—२४२

४ वही—गुण—२६४

५ प्रमाधम—गुण—२६४

६ वही—गुण—२६२

७ कायाधर्य—गुण—६१

८ कमभूमि—गुण—२६१

९ गोधान—गुण—१२२



ही नहीं। तिनके के बरबर भी परवाह नहीं की। बुरा रिवाज है बेहूब बुरा। मेरा बस जने तो बहोज सेनेबालों और बहोज सेनेबालों बोलों ही को बोली मार हूँ। फिर जाहे फीसी ही क्यों न हो जाए। पृथो भाप लड़के का विवाह करते हैं कि उसे बेचते हैं? अगर भापको लड़के की शारी में बिस सोसकर छर्ब करने का धरमान है तो शोक से कीबिए, लेकिन जो कुछ कीबिए, अपने बस पर। यह क्या कि कन्या के पिता का गमा रीठिये। नीचता है नीचता। मेरा बस जने तो इन पाकिरों को बोली मार हूँ। ' बहोज-प्रथा के विरीण में इतना भापख करने के बाद मानचन्द्र सिन्हा निमला से अपने पुत्र का विवाह करने में धसमर्षता प्रकट करते हैं और वास्तविका को छिपाकर घोरतों वैसी बलीम प्रस्तुत करते हैं 'पंक्ति जो, हस्त से कड़ता हूँ मुझे उस लड़की से जियता प्रेम है उतना अपनी लड़की से भी नहीं लेकिन जब ईश्वर को मंजूर नहीं है, तो मेरा क्या बस है? यह मरुपु एक प्रचर की धर्ममल सुचना है, या विधावा की घोर से हमें मिनी है? यह किसी घाने वाली भुमीकन की धाकासवाली है। विधावा म्पह रीति से कह रहा है यह विवाह मंगलमय न होया। ऐसी बरा में भाप ही सोबिए जिस काम का धारमन ही धर्ममल से हो उसका धल मंगलमय ही लजता है? नहीं जान बुझकर मकरो नहीं निगली जाती। ममबिन माहब को समझ कर यह सोजिएगा मैं उनकी धामापालन करने को तैयार हूँ लेकिन इनका परिखाम धर्या न होया। स्वार्थ के बस में होकर मैं अपने परम मित्र की उन्तान के घाब यह धर्याय नहीं कर सकता।'<sup>१</sup>

पर उनका सारा पात्रीपन उनकी पत्नी रंजीनीबाई धाब देती है, "साक बाठ बहने में संकोच क्या? हमारी इच्छा है नहीं करते। किसी का कुछ लिया ही नहीं है। जब दुगली जगह बस हजार लख मिल रहे हैं, तो वहाँ क्यों न बसे? उनकी लड़की कोई सोने की बीदे ही है? बकील लाइव बीसे होते तो शरमाते शरमाते भी पन्द्र बीस हजार दे मरते। धब बटा क्या रहा है? ' घोर जब कस्यापी का पत्र लड़कर रंजीनीबाई बया से इबीभूठ ही कटपी है तथा निर्मला से विवाह करने को शारी हो जाती है तब बाबू मानचन्द्र निम्हा तरह-तरह से पैने बरलन लय जाने हैं। उनकी इस कलाबाजी पर रंजीनीबाई की कटकार मानचन्द्र निम्हा जैसे सागो बाबयों की नीचता का पर्चासत करती है वरों जो तुम मुममे भी उड़ते हो बाई से पैर विघाने हो। मैं तुम्हारी बने मान जाती हूँ तो तुम समझते हो हमे बक्या दिया अगर मैं तुम्हारी एक-एक नन

१ निर्मला पृष्ठ १६

२ बड़ी पृष्ठ २१

३ बड़ी पृष्ठ २२

पहचलती है। तुम अपना ऐब मेरे भिर पटक कर कुन् बेराप बनना चाहते हो। सोमो कुछ मूठ क्यूँ है? अब बकीम साहब जोते से तो तुमने मोचा बा कि टह राब की बकरत ही क्या है नह कुन् ही त्रितना उचित ममझे सेमे बन्कि बिना टहराब के घोर ही ज्यादा भिनने की घाटा होगी। अब जो बकीम साहब का देहान्त हो क्या तो तरह-तरह के हीलै-हवाने करने लगे। यह मसमनगी नहीं छोटापन है, इसका इस्त्राम भी तुम्हारे ही भिर पर है। मैं टापी-ब्याह के लकीर न जाऊँगी। तुम्हारी जैसी इच्छा हो करो। डोंगी घाशमियों से मुझे बिड़ है। जो बात करो सखई से करो कुरा हो या घण्टा। 'हाथी के रांग बिजाने के घोर भाल के घोर' बानो नीति पर बनना तुम्हें ठामा नहो देता।<sup>१</sup>

इसी प्रकार बन के लोमी प्रक्रमब्य धर्मेतिक व चरित्रहोन मुबकों को भी प्रेमचन्द्र समाज के सामने माते है। बाबू घासचन्द्र सिन्हा का पुत्र मुबन अपनी माँ ने कहता है, 'कहीं ऐसी अबह तारी करबाइसे कि कुब रुपये मिलें। घोर न सही एक लाख का तो बीन हा। बरा क्या रक्खा है? बकीम साहब रहे नहीं बुडिया के पास घब बजा होया'<sup>२</sup>

रबीमी०—तुम्हें ऐसी बाने मुँह से निकालन ठम नहीं घाडी?

मुबन—'समे ठाम की बीन सी बात है? रुपये कितने काटते है? लाख रुप तो लाख जन्म में भी जमा न कर पाऊँगा। "बुडिया का कुछ मजा न उठा सकेगा। किसी घनी सड़की से टापी हा बारी ता बैन से बटती। मैं ज्यादा नहीं चाहता बस एक लाख नकर हो या फिर कोई ऐसी जागनादबाली बेबा मिले त्रियके एक ही लड़की हो।

रबीमी०—बाई घोरत कैसी ही मिले?

मुबन०—बन तारे ऐबों की घिपा देगा। मुझे तो बह पाकियाँ भी मुगामे तो नूँ न करे। दुबार नाय की बात कितने कुरी भापून होती है?<sup>३</sup>

निदान निमला के बिबाह की बात टूट जाती है। प्रेमचन्द्र रोज-बरा पर टीका करते हुए लिखते है, 'बह (निर्मन्त्र) करबती है मुकसीन्त्र है, बतुर है कुभीन है तो हुपा करे, रोज हो तो तार रोप मुक है, पुण का कोई मूस्य नहीं केबल रोज का मूस्य है। कितनी बिपम माप्यभीता है? ३ भापे बनकर मुबन का बिबाह मुबा नामक मुबती से हो जाता है। प्रेमचन्द्र ने मुबा के माप्यम से मुबन जैसे मुबकों पर कितना मर्मभेरी स्वप्य किया है, मेरे बाघमी ने पाँच-दुबार दिये न। बकी छोटे माई के बिबाह में पाँच घं हजार घोर मिल जायेंगे। फिर

१ निमला पृष्ठ २४

२ बही पृष्ठ २६

३ बही पृष्ठ ३३

तो तुम्हारे बराबर बनी संसार में कोई दूसरा न होना । प्यारह हजार बहुत होते हैं, बाप रै बाप । प्यारह हजार ..छटा बटा कर रखने समे तो महीनों लग जायें । प्रपर लड़के उड़ाने भी समे तो तीन पीढ़ियों तक चर्च बने । कहीं से बाठ हो रही है या नहीं ?”

निर्मला —उपन्यास के पूब ‘प्रतिज्ञा’ में भी प्रेमचन्द ने दहेज-प्रथा के विरोध में पयाँप लिखा है । यहाँ उन्होंने दहेज के मूल कारण पर प्रकाश डाला है । मुमिबा और पुर्खा का निम्नलिखित बातसिाप उपर्युक्त तन्म को हमारे सामने रखता है ‘मुमिबा—मया तो तधी धामे जब लड़कीवासी भी लड़कियों का दहेज सेने समे । बिना मरपूर दहेज सिाए विवाह ही न करें । तब पुख्याँ के होय टिकाने हो जायें । मेरा तो धगर बामुबी विवाह न करटे तो मुझे कभी इतका पमास भी न धाता । मेरी समझ में यही बाठ नहीं धाती कि लड़की बासों को ही लड़की ब्याहने की इतनी गरज क्यों होती है ?’

पुर्खा—तुम बहुत बच्चों की-सी बातें करती हो । लड़कियों के विवाह में सास दो सास का बिसम्ब हो जाता है, तो चारों धोर हँसी होने लगती है । लड़कों का विवाह कभी न हो तो भी कोई नहीं हँसता । सोक-रीति भी कोई चीज है । १ यहाँ प्रेमचन्द ने सोक-रीति का चर्च करके वर्तमान सामाजिक संगठन को निम्ना बी है । दहेज-प्रथा कानून से बिलगुन नहीं मिटाई जा सखती । कानून बना देने पर बहु कोई धीर तन्म में सामने धा जाएगी । धाबरपयता सोक-रीति को बचलने की है ।

सिबासरन का धाधार भी दहेज प्रथा है । धारोगा इच्छुबन्ध के दो लड़कीवाँ है—मुमन और सागता । मुमन को सोसहर्षा बप लवने पर बी बर की टोत्र करते है । प्रेमचन्द बडाते है कि धारोगा बी के सामने दहेज की कुभेद हीधार धाकर जनका कित प्रधार रास्ता टाक लेनी है ‘बर की धात्र में हीड़ने लने, कई जगहों से टिपलियाँ मँगवाई । बहु शिथिल परिवार चाहते थे । बहु तमझने थे कि ऐसे घरों में लैन-देन की बर्चा न होनी पर उन्हें बहु देपकर बड़ा धारचर्च हुआ कि बरों का मोस तलकी टिछा के अनुसार है । राति बर्ष टोत्र हो जाने पर जब लैन-देन की बातें होने समनीं तब इच्छुबन्ध की धाँगों के सामने धेवेरा धा जाता था । बाँ धार हजार नुनाता कोँ पाँच हजार धीर कोई हमस भी धामे बहु जाता । धेधारे निराध होकर मोन धाने । २ धामे दहेज के निग

१ निर्मला —गूण्ड १७८

२ प्रतिज्ञा —गूण्ड २२

३ सिबासरन —गूण्ड २६

ही कृप्यव्यक्त रिरवत सेते है और पकड़े जाते है। उनके पकड़े जाने के बाद मुम्ल का जीवन किस बिधा मे जाया है वह 'सिवा-उदन' का कथानक है।

प्रथम प्राय द्विगु-समाज में विवाह के लिये सर्वप्रथम जन देखा जाता है। द्विगु-समाज की वैवाहिक समस्या के पीछे धार्मिक प्रभाव नहीं बरन् विरी हुई नैतिकता है। जिस समाज में विवाह का आधार हो जन है वहाँ धार्मिक प्रभ कोई महत्व नहीं रखता। प्रमीर-गरीब सभी परिवारों में इस विरी हुई नैतिकता के दशन होते है जो वैवाहिक असंगठितों को जग्न देती है। यदि गरीबी मिटा दी जाय तो भी बहुक-प्रथा इस समय तक नहीं मिट सकती बल तक समाज का नैतिक स्तर उँचा नहीं उठता। प्रथम बहुक-प्रथा का धार्मिक पहलू नयय है। वह तो एक समाजिक कुटीरि है जिसे कानून प्रथा नैतिक बल से दूर करना प्रायश्यक है। कानून से बहुक प्रथा के विधाने य सह्यपता मिल सकती है पर उछे विस्तृत हटाया नहीं जा सकता। इसलिये प्रेमचन्द मुबकों के नैतिक स्तर को उँचा उठाने का प्रयास करते है जितते यह कुप्रथा मिट सके। 'निम्सा' में शुधा के म्य से प्रेमचन्द मुबकों की पीढ़ी को प्रारम्भस का परिचय देने का प्राज्ञान करते है, 'बुझा प्रारमी सोचता है, मुझे साथ स्वर्न सेनालगा पड़ेगा क्या पछ से जितना ऐँठ सके, उठना हो प्रच्छा, मगर यह बर का धर्म है कि यदि वह स्वार्न के हाथों जित्नुम विक नहो गया है तो अपने प्रारम्भस का परिचय दे। १ और काया कल्प' में से एक ऐसा प्रारस मुबक बरुजर के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करते है वहाँ बहु अपनी माँ निमला से बर होकर कहता है, 'मगर तुम मेरे सामने हैने- बिलाने का नाम जोमी तो बहर का मुँगा।

निर्मला— 'बाह रे तो क्या पचीस बरस तक बों हो पाता पीछा है ? मुँह का रव ।

बरुजर— 'तो बाजार में लड्डा करके बेच क्यों नहीं देती ? देखो कि टके मिलते है ? ' यही नहीं बरुजर अपने पिता बरुजर से भी स्पष्ट लुकों में कहता है— 'मेरा कवास है कि स्त्री ही या पुरुष मुझ और स्वभाव ही बतमें मुख्य बस्तु है। इसके सिवा और सभी बातें पीछ है। ३

वैवाहिक समस्या से सम्बन्धित दूधरा महत्वपूर्ण पहलू माता-पिता की और से पकीरत शावभानी का प्रभाव है, द्विगु परिवारों में विवाह मुबक-मुबकी स्वतन्त्र रूप से नहीं करते उसके पीछे उनके माता-पिता का हाब रहता है। पुत्री तो रत-मरिगत माता-पिता की इच्छा-मनिक्या पर ही रहती है। ऐसी शूरत में

१	निर्मला	पृष्ठ १ ६
२	कायाकल्प	पृ० १६-१७
३	वही	पृ० ११०

वैवाहिक संसर्गप्रियों के प्रति बर-बन्धु के माता-पिता भी उत्तरदायी ठहरते हैं। प्रेमचन्द ने प्रस्तुत समस्या के इस पहलु पर भी अपने उपन्यासों में बिम्बार से लिखा है।

माता-पिता अपनी लड़की का नाम बिबाह कर देना अपना कर्तव्य समझते हैं। लड़की का बिबाह करके वे मातां अपने सिर से बहुत बड़ा बोझ उतार कर निरिश्चय हो जाते हैं। यदि बिबाह असफल रहा तो उसके लिए अपने का रोय न देकर भाग्य की कोसते हैं। इसका मुख्य कारण सामाजिक व्यवस्था है जहाँ लड़की का बिबाह अधिक दिन रोके रखा कसक की बात समझी जाती है। प्रतिज्ञा में प्रेमचन्द लिखते हैं, 'जबान लड़की बँटी रहे, यह कुल के लिये और और अपना भी बात थी। 'पत्र कुस मर्यादा' की रचा के लिये कुप्राय के माथ भी लड़कियों का बिबाह करवा दिया जाता है और बाद में भाग्य की साफ में माता-पिता अपने दम्बूपन और घातक को क्षिपान का प्रयत्न करते हैं। डाकुर हरिसेवक सिंह को फटकारती हुई लौकी क्यूती है, भाग्य पर वह बरोसा कण्ठा है, जिनमें वीर्य नहीं होता। लड़की को दुबा दिया ऊपर से तरमात्र नहीं रहते ही भाग्य भी कोई चीज है। '१ 'निमला में बस्याणी भी अपनी पुत्री का बिबाह भाग्य के धासरे कर देने से घान कठम्य की इच्छि समझती है। माय ईरबर का नाम लेकर कभील साहब को टोका कर घास्ये घामु दुध अधिक है, सेदिन मरना बीजा बिधि के हाथ है। वैसीस सास का घासमी बूझ नहीं बहसाता। घबर लड़की के भाग्य में गुण भीदना बडा है, तो जहाँ आयगी मुगी रहैगी। दुग्न भीमला है, तो बहाँ आयगी दुग्न भेमेयो। '२ 'बरदान में मुंठी संजीवननाथ अपनी पत्नी मुंठीला पर बिदजन के बिबाह का दोषारोपण करता है पर प्रेमचन्द उपन्यास-कमा की हुरमा करके भी उनक बिचारों का लंडन करते हैं और समाज के ऐम सापरबाह विचारों को बेनाबनी देते हैं— 'कभी बमना हाट म बुनदुप लड़ाते मिल जाता कभी मुलदा के लंब विमरेट पीने पान बदाने बदनपन के पूमला हुमा विप्राई देना। मुंठीला अब आयान्त की मरू बडा देलने तो बर घाते ही रनी पर झोप निपानने बह मब मुहारी ली करलु है। मुंठी ने बडा का घर-बर शोर्नो घपते हैं मुंठी पीछे वीं। जहँ उस छल यह बिचार न होना कि जो दोषारोपण मुंठीला पर है, कम से कम मुम्ह पर भी उनका ही है। बर बैचारी तो बर में बन्द रहती थी उट बना तान या कि लड़का बँसा है। बर सामुदिफ विद्या बोड़े ही बड़ी थी ? जगके माता-पिता को भाग्य देना अपनी कुनीकता

१	प्रतिज्ञा	पृ०	३३
२	बायाबल		१६३
३	निमला		३९

घोर बीमर पर सहमत हो गई। पर मुंशी भी ने तो केवल प्रकर्मण्यता घोर घामस्य के कारण घागबीन न की यद्यपि उन्हें इसके अनेक अवसर प्राप्त थे घोर मुंशीजी के अन्तर्हित वाग्म्य इसी भारतवर्ष में अब भी विद्यमान है जो अपनी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार भेज बन्द करके कुर्से में डबेस बिना करत है।<sup>१</sup>

इसके विपरीत प्रेमचन्द ने धन उपन्यासों में धाव्य माता पिता का भी समावेश किया है जो विवाह का माय गुहे-मुहियों का धम नहीं समझते। 'प्रतिज्ञा' में प्रेमा का महा बकियानुस पिता बररीप्रसाद भी इस मामले में काट्टे उतर है। प्रेमचन्द लिखते हैं, 'बपरीप्रसाद विवाह के विषय में उसकी (प्रेमा) अनुमति धावरयक समझते थे।<sup>२</sup> कायाकल्प' में बहोदानन्द कहता है, 'स्त्री में कितने ही गुण हों, लेकिन यदि उसकी मूरत पुरय को पसन्द न धायी तो वह उदकी नजरों से पिर जाती है। घोर इनका वाग्म्य जीवन दुःखमय हो जाता है। य तो यहाँ तक कहना है कि हर घोर कन्या में दो-चार बार मुलाकात भी हो जानी चाहिये। कन्या क लिये तो वह परिवार्य है। पुरय को स्त्री पसन्द न धायी तो वह घोर शरिया कर सकता है। स्त्री को पुरय पसन्द न धायी तो उसकी साठी उमर रोते ही गुजरेगी।<sup>३</sup> इसी उपन्यास में एक स्वत पर मयोरना कहती है 'जो विवाह सङ्की की इच्छा से विच्छ किया जाता है, वह विवाह ही नहीं है।'<sup>४</sup> मोदान में मेहता रामसाहब से कहते हैं 'घाप अपनी शारी के जिम्मेदार हा सकते हैं सङ्के की शारी का वाचित धान क्यों धपने उमर लते हैं, खातरक अब घापका सङ्का बालिग है। घोर धपना नष्ट-गुच्छान समझता है। कम से कम ये तो शारी जैसे महरा के मुधामने में प्रतिष्ठा का कोई स्थान नहीं समझना।'<sup>५</sup> 'कायाकल्प' में लौया एक तरह से सभी माता-पिताओं को सचेत करती हुई कहती है, 'सङ्की कंगाल को दे दे पर बुझे को म है। गरीब रह्यी तो क्या बन्द मर का रोना मीकना ता न रहुया।'<sup>६</sup> कुछ बड़ी सन्देह मयु-शुभा पर पङ्गी निर्मला का है, 'बन्धी को धापकी गोद में छोड़े जाती हैं। धगर जोठी बागथी बचे तो किसी धप्ये कुल में विवाह कर बोविएया।....बाहे क्वीटी रबिएया बाहे विप बेकर मार डालिएया पर कुपाय के मने न बड़िएया इतनी ही धाप से मेरी विनय है।'<sup>७</sup>

१ बरदान	पृष्ठ ४३ ४४
२ प्रतिज्ञा	पृष्ठ ३४
३ कायाकल्प	पृष्ठ १६
४ बही	पृष्ठ २६
५ मोदान	पृष्ठ ४१४
६ कायाकल्प	पृष्ठ १७४
७ निर्मला	पृष्ठ १७४

प्रेमचन्द प्रारम्भ में विवाह को बम-बख्त मानते थे। घाये गोदान में उन्होंने विवाह को 'सामाजिक समझौते' के नाम से पुकारा है। लेकिन उनके सामाजिक समझौते की भावना में और बम-बख्त में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। गोदान में मेहुटा-मासठी बाढासाप प्रेमचन्द के सामाजिक समझौते की भावना को स्पष्ट कर देता है। मेहुटा कहते हैं, विवाह को मैं सामाजिक समझौता समझता हूँ और उसे तोड़ने का अधिकार न पुत्र्य को है, न स्त्री को। समझौता करने के पहले घाप स्वाधीन है, समझौता हो जाने के बाद घापके हाम कट जाते हैं।

'तो घाप तसान' के विरोधी हैं क्यों ?

'पक्का। १ फिर भी विवाह-बिच्छेद के सम्बन्ध में प्रेमचन्द की मान्यताएँ स्पष्ट नहीं हो सकी हैं। कर्मभूमि में वे बिच्छेद का समर्थन करते प्रतीत होते हैं। मैना और सुखदा का विवाह इस बात का प्रमाण है— 'घब कोई इस भ्रम में नहीं रहे कि पति जाहे जो करे, उसकी स्त्री उसके पाँच बो-बोकर पिपेवी उस अपना बैबता समझेनी उसके पाँच बबायेगी और बह उससे सबा हँसकर बीसेया तो अपने भाव्य को भाव्य मारिगी। बह दिन सब गए।

मैना बहस कर बैठी तुम कहती हो पुत्र्य के धाबार-बिचार की परीचा सेनी चाहिये। क्या परीचा कर मैने पर बीया नहीं होता ? घाये दिन तनाक क्यों होते रहते हैं ?

सुखदा बोली— 'तो इसमें क्या बुराई है ? यह तो नहीं होता कि पुत्र्य तो गुलघरें उड़ाए और स्त्री बमके नाम को रोटी रहे। तनाक की प्रभा मर्ग हा जाने हो फिर मालूम होया कि हमारा जीवन किठना मुठी है। १ गोदान कर्मभूमि' के बाद लिखा गया है। अतः गोदान के विचारों को ही अन्तिम मान्यता ही जानी चाहिये।

वैवाहिक समस्या का धारिण क्या है ? प्रेमचन्द ने बड़ी एक ओर सुबकों को नैतिक बुद्धता का सम्बेध दिया है और उसके सामने आर्त्त पात्र उरखिन फिर है वहाँ बुरी धोर उन्हीं सुखिया का भी बममान समाज-स्यवस्था के प्रति बिडोह करने के लिये जलकारा है। कर्मभूमि की सतीता का धारण क्या हमारी अनेक वैवाहिक धर्मनियमों और कुरीतियों के बुर करने में उपयोगी प्रभावित नही हा सजना ? सहीना कर्ती है, 'शारी नहीं करना चाहती बम जब तक नाई ऐसा धारमी न हा जिसके साथ मुझे धाराम से जिम्मी बसर होन वा इनमीमान हो में यह सरदर्श नहीं मैना चाहती। तुम मुझे ऐसे घर में जानने वा रही हो जहाँ जिम्मी तम हो जायनी। शारी

१ गोदान पृष्ठ ८०-८१

२ कर्मभूमि पृष्ठ १०२

की संशा यह नहीं है, कि प्राणमी रो-रोकर दिन काटे ।<sup>१</sup> इस प्रकार प्रेमचन्द ने वैवाहिक समस्या के समस्त पहलुओं पर विचार करने के बाद समाज के सामने जो रास्ता रखा है वह कोई कानून का रास्ता नहीं है, और न वह प्रत्यावहारिक ही है । समाज के नैतिक मूल्यों में परिवर्तन हुए बिना प्रस्तुत समस्या का कोई ठोस और स्थायी हल मिलना असम्भव नहीं तो दुर्लभ अवसर है ।



## पारिवारिक जीवन के पहलू

प्रेमचन्द समस्यामूलक उपन्यासकार थे। उन्होंने अपने प्रायः सभी उपन्यासों को समस्या केन्द्रित रखा है, इसके प्रतिरिक्त प्रेमचन्द के उपन्यासों की सबसे बड़ी विशेषता उनमें पाये जानेवाले ऐसे विचार हैं जो विभिन्न समस्याओं की घोर सहज ही पाठक का ध्यान आकर्षित कर लेते हैं। इस प्रकार इनके एक उपन्यास में यदि एक या दो समस्याएँ प्रमुख होती हैं तो दूसरी घोर अन्य समस्याओं का प्रासंगिक स्पर्श भी होता है जो पर्याप्त महत्वपूर्ण है। प्रेमचन्द में यह प्रवृत्ति 'बरबान', 'प्रतिज्ञा' से लेकर 'मंगलमूत्र' तक पाई जाती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं के प्रतिरिक्त पारिवारिक समस्याओं का भी चर्चापटन हुआ है। इन पारिवारिक समस्याओं का स्तर भी मध्यम-वर्गीय समाज है लेकिन मात्र संयुक्त पारिवारिक जीवन चिन्तित हो रहा है। घर-घर में कसई घोर उसके दुष्परिणामों के समाचार प्रप्त होने को मिलते हैं। प्रेमचन्द ने पारिवारिक ऋद्धों के कारणों पर यथ-स्य प्रकाश डाला है और घायली कण्ठ से बस्य भारतीय परिवारों को गुण घोर शांति का मार्ग भी बताया है। इन पारिवारिक जीवन के घनैक पहलू हैं जिनमें प्रमुख प्रति उल्लेख सम्भव है। इस पहलू का आधार वैवाहिक समस्या है पर उक्त साम्प्रदाय-आचन के लिये कुछ और भी चाहिये। प्रेमचन्द ने निम्न-वर्गीय समाजों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या करते इस पहलू पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

संयुक्त परिवार की समस्या 'प्रेमापम' में विद्येय का से मिलती है। इसे 'रंगभूमि' विषया 'गोदान', 'पवन' 'वर्मभूमि' आदि में भी उल्लेख किया गया है। भारतीय परिवारों का संयुक्त-जीवन क्या चिन्तित हो रहा है ? के कौन से प्रमुख कारण हैं जिनकी वजह से पारिवारिक गुण घोर शांति दुर्लभ हो गई है, आदि विषयों पर प्रेमचन्द के उल्लेख उल्लेख पर्याप्त प्रकाश डालने हैं। प्रेमचन्द ने बताया है कि जाहे से संयुक्त परिवार निम्न-वर्गीय के हैं और जाहे मध्यम-वर्गीय के—शेनों की चिन्तितता का गुण कारण आदि है। वर्ष में मात्र माई माई को रिता-गुण को एक-दूसरे का शत्रु बना दिया है। पारिवारिक समस्याओं को जड़ भी यही पारिवारिक प्रण है। प्रेमापम में आदर्शकर

बच्चों के बल प्राये संयुक्त परिवार को धार्मिक बारदा से ही भंग कर बना जाहता है। प्रेमचन्द लिखते हैं— 'एक उन्हें राठ-दिन यही बुद्धिबन्ता रहती थी कि किसी तरह बच्चा साहब से प्रसंग हो जायें। यह बिचार सबका उनके स्वार्थानुकूल था। उनके ऊपर केवल तीन प्राणियों के भरण-पोषण का भार था प्रायः स्त्री और भावज। लड़का प्रती बूब पीता था। इसाक की घामरनी का बड़ा भाग प्रभारकर के काम था। उनके तीन पुत्र थे दो पुत्रियाँ एक बहू एक पोता और स्त्री-पुरुष प्रायः। ज्ञानरंकर अपने पिता के परिवार-वासन पर भ्रूम-लाया करते। प्रायः से तीस साल पहले यह प्रसंग हो मने होते तो प्रायः हमारी बत्ता ऐसी बरतन न होती।' <sup>१</sup> 'रंजूमि में ताहिरप्रती के परिवार के धार भी धार्मिक प्रसंग प्रमुख है। ताहिरप्रती की स्त्री अपने बच्चों पर प्रायः करती है 'मे भाई बन्ध एक भी काम न प्रायेंगे। ज्यों ही प्रबन्धर मिला पर भाइकर निकल जायेंगे तुम बड़े ठाकरे रह जाओगे।' <sup>२</sup> प्रेमचन्द ने मध्यम-वर्ग में पायी जाने वाली धार्मिक स्वाय की भावना का कारण पारिवात्य सम्बन्ध माना है। 'प्रेमचन्द में से इसी धोर संकेत करते हैं। प्रभारकर के मुख से यह कहनाते हैं, यह (ज्ञानरंकर) पत्निमी सम्बन्ध का मारा हुआ है जो लड़के को बासिन होते ही माता-पिता से प्रलग कर देती है। उसने यह शिष्या पाई है जिसका मन्तव्य स्वार्थ है। उसमें प्रब बया विनय तीव्रम्य क्रोध भी न रहा। यह प्रब केवल अपनी इच्छाओं का इच्छिओं का धार है।' <sup>३</sup> पत्निमी-सम्बन्ध एक धरा तक इसके लिए उत्तरदायी हो सकती है पर वास्तव में मनुष्य का स्वभाव तक इसके लिए उत्तरदायी है, जिस धार्मिक विपन्नतायें बनायी है। निम्नता में धार्मिक भावना के कारण पारिवारिक कर्म बन्ध भेदा है, पर इस धार्मिक भावना के पीछे भी धार्मिक कारण ही है। क्विमिच्छि और निम्नता के पारिवारिक सम्बन्धों के विगडन पर प्रेमचन्द व्याख्या करते हुए लिखते हैं 'जब मे बकील साहब ने निर्मला के हाथ में अपने पैर दन शुरू किए हैं, क्विमिच्छि उसकी धारोचना करने पर धारक हा गई थी। उन्हें मनुष्य हाता था कि प्रसंग होने में बहुत बौड़ी कसर रह गई है। लड़कों का बार-बार पैरों की बकरत पत्नी। जब तक मुर स्वामिनी थी उन्हें बहसा दिया करती थी प्रब सीधे निर्मला के पास भेज देनी। निर्मला को लड़कों का बटोरपन प्रबन्ध न मयता था। कर्मी-कमी वैसे दैन स इन्कार कर देनी। क्विमिच्छि का अपने वास्तव्य घर करने का प्रबन्धर मित जाता—प्रब तो धार्मिक ही है लड़क काई को विवेक। बिना माँ के

१ प्रेमचन्द पृष्ठ २८

२ रंजूमि ( भाग १ ) पृष्ठ १२१

३ प्रेमचन्द पृष्ठ १२७

बच्चे को कौन पढ़े ? कपड़ों की मिटाइयाँ धा जाते थे, धब धेले-धेसे को तरलते हैं। निर्मल धमर बिककर किसी बिना कुछ पूछे-छाछे पैसे के बैठो ली बैबी श्री उसको दूसरी धामोचना करतीं—इन्हें क्या मङ्गके बिये या मरं, इनकी बला से माँ के बिना कौन समझये कि मेटा बहुत मिटाइयाँ मत्र छाछो। धायी नयी लो मेरे निर कामयी बन्हे बना। ' यहाँ पारचास्य संस्कारों का प्ररत ही नहीं धाता। मि-सन्देश बर तक धाबिक धामनों मे संयुक्त परिवार के सत्य्य सङ्गति से कोई निरिक्तत धोजना धपने धामने नहीं रखते तब तक पारिधारिक एकठा स्यापित नहीं हो सकती। जिस परिवार मे ऐसी धोजना नहीं है, वहाँ धापसी प्रेम का नितांत धमाध है। धौर वहाँ प्राम भङ्गते होते रहते हैं जो बटबारे के बार ही समाप्त होते हैं।

पारिधारिक जीवन का प्रमुख स्तम्भ धाम्यत्य जीवन है। पति-पत्नी के सन्धनों पर प्रमचन्द्र धाय धपने प्रत्येक उपन्याय मे वर्णा की है। इन सन्धना का धारम्भ विवाह के बार होता है जो सुखी साम्यत्य-जीवन के मिये प्रत्यधिक महत्वपूर्ण है। इन सन्धनों के मनोवैमानिक धौर ध्याधहारिक बाना पधों पर प्रेमचन्द्र को बुद्धि गमी है। जैसे बैला जाम लो प्रत्येक उपन्यास साम्यत्य-जीवन का चिन्तय रहना है, पर बहु बिषय कथा-विक्रम का धबधा धरिनांघन को लाने रखकर क्रिया जाता है, लेकिन प्रेमचन्द्र की मह सोमा नहीं है। न पारिधारिक समस्या के इस पद्धतु पर प्रमुत्रता से विचार करते हैं, कथा-विक्राय धौर धरिनां वन पर नहीं। सुत्री साम्यत्य-जीवन किस प्रकार धपनाया जा सनना है, उसकी सङ्क भी न धपन लान्यासा न देते हैं।

साम्यत्य-जीवन मे सुत धौर धान्य का धभाध क्यों पाया जाता है ? पति पत्नी के धापसी मधुर सन्धन्य वनों लोप हो रहे हैं। प्रेमचन्द्र मे इन सन्धन्य मे बनेक कारल उपस्थित क्रिये है वैन वनि उषेधा धधिकार प्राधना धधिरधाल, कसह धधहार, पुराने धौर मये विचारों का संघर्ष लकी को समझने की कमी पाठिधन का एकधो धाधर्त धाधि। प्रनिता मे सुविधा धौर कनना प्रताध का साम्यत्य जीवन वनि-उषेधा के कनसवरुग ही धीरे धीरे बिनाधन हो उठया है। लकी का लैनन धमिल्य न लमभनधामे तमा उठे एक निर्धोच मुक यन लमभने धामे धरो न साम्यत्य सुत का धामास धध्रम्भध है। पूर्ण सुविधा से उनके वनि कननाप्रमाध के धाने के बारे मे वृत्ती है। सुविधा धार की धौर लयमीन बैबी से बैलनी हुं कही है, ' धमी नहीं बारह ही लो बजे है। इनना लकी धायेये ? न एक, न दो न तीन। मेटा विवाह ला इन मत्रन से हुआ है। लाना धरिनांघर

की बहू हैं। इसने बड़े मुझ की फल्पना कौन कर सकता है ? सुमित्रा के हृदय की बेरता उपर्युक्त अर्थ में साकार हो उठी है। 'प्रतिज्ञा' में कमलाप्रसाद को एक सम्पन्न और अविवाही पुरुष के रूप में चित्रित किया गया है, जब सुमित्रा के प्रति उपेक्षा का भाव उसमें पामा जाता स्वामयिक है, पर यह बात नहीं कि यह उपेक्षा भाव ऐसे ही पुरुषों में पामा जाता हो। 'रघुनी' में रघु और मन्त्रेय के दाम्पत्य-जीवन की भी बहुत कुछ यही दृष्टि है। रघु सोचिया है कहती है— 'किसी बेट-बेवक से विवाह न करना नहीं तो पछताओषी। तुम उसके धनकाण्ड के समय को मनोरंजन-शामची मात्र रखोगी। पुरुष-विद्वद् समाज में गारी के स्वामिमान का कोई मूल्य नहीं समझ जाता। जब स्त्री का जीवन बड़ा बयमोम हो जाता है। उसके दाम्पत्य-जीवन की कल्पना बुर-बुर हो जाती है। पुरुष-विद्वद् समाज का आधार धार्मिक है। स्त्री की वह ऐसी सारी शक्तियाँ नष्ट कर देता है जिससे वह धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में समर्थ हो सके। विवाह उसे पुरुष की आकृष्ट करनी पड़ती है। पातिषत के उच्च धारकों के नाम पर इस प्रकार दाम्पत्य-जीवन की सारी सरसता कण्ठा में बरल जाती है। प्राय कमल हुआ करती है। ऐसे बरों में शान्ति बिरसे ही देखने में पाए। प्रतिज्ञा की सुमित्रा ब 'निर्मला' की कस्याणी के जीवन के ऐसे चित्र प्रेमचन्द ने स्पष्ट रेखाओं के साथ चित्रित किए हैं। सुमित्रा बिब्रोह के स्वर में कहती है 'स्त्री पुरुष के पैरों की भूषी के सिवा और है ही क्या ? पुरुष चाहे जैसा हो धोर हो ट्य हो अविवाही हो लठबी हो स्त्री का बर्म है कि उसकी बरख-रब को-को कर विदे। मैंने कौन-सा धपराय किया था को चम्हें मगाने जाती।' एक धोर स्वक पर सुमित्रा का कुचला हुआ अविमान पति को चुनौती देता है 'कमला ने कमरे में कबम रखते ही कठोर स्वर में कहा बीठी गप्पें मडा रही हो। जब ही धककन मीम भेजी तो उल्टे न बना। बाप से कहा होता किसी करोड़पति सेठ के बर ब्याहते। बहू का हाम तो जानते थे।'

सुमित्रा ने लड़क कर कहा—बाप-बादे का नाम न लेना कहे देती हैं। यह चारपाई पर कुंजी पड़ी है और वह धामने लभूक है। धककन को धोर बाहर जाया। यहाँ कोई तुम्हारी सीड़ी नहीं है। जब धकनी बमार् चिसाना लब जाँट लेता। बाप यह नहीं जानते थे कि यह टाट बाहर ही बाहर है।...

—मैरी धककन निरक्षरती हो या नहीं ?

—मगर भसमानची से कहते ही तो हूँ रोब से बहने ही तो नहीं।

१ प्रतिज्ञा पृ ३१

२ रघुनी ( भाग १ ) पृ ६०

३ प्रतिज्ञा पृ० ५५

—मैं तो रोब से ही कहता हूँ ।

—तो निकाल लो ।

—तुम्हें निकालना पड़ेगा ?

—मैं नहीं निकालूँगी ।....

—तुम अपने घर बसी जाओ ।

—मेरा घर यही है । यहाँ से घोर कहीं नहीं जा सकती ।

—बाप का घर या जब या, घर यही घर है ।

५००) ४० महीने मैं लूँवो लामा हम फेर में न रहना । घर की जूती नहीं है कि नहीं थी तो पहना पुरानो हा मैं तो निकाल देंका । १

इसी प्रकार 'निर्मला' में उदयमानु-कस्याची इच्छा के जीवन में यही बाधा पार्स जाती है ।

कस्याची—इसलिए न कि जानते हो इसे कहीं ठिकाना नहीं है, मेरी ही रोटियों पर पड़ो हुई है या घोर कुछ ? जहाँ कोई बात बड़ो बस तिर हा पमे मार्गों में घर की लौड़ी हूँ मेरा केवल रोटी घोर नपड़े का नाता है ।

जिनका ही मैं बकती हूँ तुम घोर भी बबाले हो ।

उदयमानु—मैं कमाकर लाता हूँ जैसे बाड़ू लख कर लकटा हूँ । किसी को बोलने का अधिकार नहीं है । १ घट जब तक स्त्री धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं करती उसके स्वाभिमान को इसी प्रकार पर-पर पर ठेम पहुँचाई जायेगी । पुण्य-विद्वद् समाज में स्त्री को लौकी नहीं करने ही जानी उसे पति प्रपत्ता प्राप्त बनाकर रखना चाहता है । स्पष्ट है, जहाँ पति-पत्नी के सम्बन्धों का यह आधार हो वहाँ सफल घोर सुखी साम्प्रत्य-जीवन दुर्लभ है ।

स्त्री घोर पुण्य के इस धार्मिक पहलू पर 'प्रतिज्ञा' से लकर 'संगमयूत्र' तक प्रेरकत्व बराबर ह्वाला प्पान धारकपित करते हैं । 'प्रतिज्ञा' में सुनिधा प्ररन करती है, धातिर पुण्य धरना स्त्री पर क्यों बनना राब जमाडा है ? बहुत कुछ तुम्हारी समझ में पाडा है ? २ इन प्ररन का उत्तर पूर्वा मे बड़े ही यथार्थ ढंभ से दिया है, 'मैं स्त्री मे बन मे बुद्धि में वीर्य में धरप्रर बड़कर होडा है, इन निर उनको हुकूमत है । जहाँ पुण्य के बरने में स्त्री में यही गुण है वहाँ रिचवों को ही बननी है । मर कमाकर निभाडा है बना रोब बनाने मे भी जाय ?" ५

१ प्रतिज्ञा प० ६६

२ निर्मला १०

३ प्रतिज्ञा ६१

घौर बुधिया इसी बात को घोर घोर देवर कहती है। बस बस तुमने साज बनाने की बात कह दी। यहाँ मैं भी समझती हूँ। बेचारी घौरत क्या नहीं सकती। हमलिये उसकी यह दुर्गति है।”<sup>१</sup>

‘संभलसूत्र’ में सन्तकुमार घौर पुण्या इच्छा का जीवन भी यही कहानी कह रहा है। सन्तकुमार ने पुण्या से एक वर्षा बाद को पुत्र करने के लिये कहा था जो स्त्री पुण्य पर प्रबलमित्त है उसे पुत्र की तुल्यता जाननी पड़ेगी।<sup>२</sup> घोर जब मौखिक मन्त्रों के साथ पुण्या सन्धि-यम पर हस्ताक्षर स्वयं पात्र का एक बीजा लगाकर सन्तकुमार को देती हुई कहती है, “घब से कभी यह बात मुँह में न बिलानना घबर में तुम्हारी आभिलाषा है तो तुम भी मेरे आश्रित हो। मैं तुम्हारे घर में बिना काम करती हूँ। इतना ही काम दूसरों के घर में करूँ तो अपना निर्वाह कर सकती हूँ या नहीं? तब मैं जो कुछ कमाऊँगी वह मेरा होगा। नहीं मैं जाहूँ प्रालय की दे हूँ। पर मेरा किन्ती बीज पर अधिकार नहीं। तुम जब चाहो मुझे घर से निकाल सकते हो।”<sup>३</sup> यहाँ प्रेमबन्ध भारतीय नाट्य के स्वामि मान की ही रक्षा नहीं करते बल्कि उसको स्याज में प्रविष्ट स्थान का अधिकारी की घोषित करते हैं। प्रेमबन्ध के अधिकार नाट्य पाम बिरोधी व्यक्तित्व के परिणाम हैं। पुण्य-विद्वत् समाज स्त्री के आत्मबल को तरल-तरल ने मजबूत करने के पद्यमन्त्र रचता है, पुण्या के इत कथन में किन्ती सत्कला है। ‘हम भी तो वही आत्मबल घौर शक्ति घौर कला प्रत्यक्ष करना चाहती हैं। लेकिन तुम लोगों के मारे जब कुछ बचने पाये। मरना घौर धारण घौर किन-किन कहानों से हमें रक्षाने की घौर हमारे ऊपर अपना तुल्यता बनाये रखने की कोशिश करते रहते हो।”<sup>४</sup> पारिवारिक जीवन में अधिकार भावना का यह धार्मिक पद्यम् कर्म या धर्मिक माना में अधिकार परिवारों में देखा जाता है। यहाँ स्त्री में गहनशीलता प्रबल होती है। यहाँ ऊपर उठने तो प्रथम पाई जाती है, पर यहाँ आत्म-जीवन का एक प्रबल नहीं हो सकता। तथा प्रिय परिवार के नाट्य बर्ष में बेजान है, यहाँ स्त्री-पुत्र में इस अधिकार भावना को लेकर प्रायः संघर्ष होते रहते हैं, जो कभी-कभी तो धर्मिक परिवारों के जनक होते हैं। ‘कापाकर्म’ में रोहिणी की लुब्धगी है घौर निम्न विवरणानुसृत बोल भारतीय स्त्री की दायीय स्थिति को घौर स्पष्ट करते हैं। “घाने मरे साथ कोई प्रणय नहीं किया। घाने नहीं किया। जो स्त्री पुत्र करते हैं। घौर मोह, रिश्वे-रिश्वे, करते हैं। उदा. कोक

१ प्रतिधा	पृष्ठ २३
२ संभलसूत्र	पृष्ठ १०
३ यहाँ	पृष्ठ १२
४ यहाँ	पृष्ठ १४

वही काम जूनै-जुने करती है। स्त्री कमी पुरुषों का विशेषता है, कमी उनके पास ही जाती है। इन्हीं दो प्रवृत्तियों में उसकी छत्र भीत जाती है। यह धारणा दोष नहीं, हम स्त्रियों को इसीलिए बनाया है। हमें यह सब चुपचाप सहना चाहिये यिना या मान करने का बंध बहुत कठोर होता है और विरोध करना तो जीवन का सबनाश करना है।<sup>१</sup>

सिद्धासदन में सुमन-गजानन्द का शास्त्र-जीवन धर्मफल रहता है और समाह्वय परिणाम के रूप में सामने आता है। चूंकि सुमन को अपना स्वामिमान प्यारा था अतः वह घर छोड़कर भाग जाती है और वैश्या-जीवन धरमाने के लिये बाध्य होती है। सुमन के इन प्रसंग पर प्रेमचन्द सापसी व्यवहार की प्रशंसा करते हैं। पति-पत्नी के धर्मदोषों का कारण कभी-कभी एक-दूसरे के प्रति प्रतिष्ठ व्यवहार भी होता है। सुमन के जैसे जाने पर स्वर्ग गजानन्द उसके कारणों का विश्लेषण करता हुआ कहता है, 'मेरी प्रशंसनीयता और निर्ययता सुमन की बंधनता और विनाश दोनों ने मिलकर हम दोनों का सर्वनाश कर दिया। मैं सब उस समय की बातों को सोचता हूँ तो ऐसा मामूळ होता है कि एक बड़े घर की बेंटी से ब्याह हो जाने पर उसका उचित धार-सम्मान नहीं दिया। निपट या दमलिये धारव्यवस्था या कि मैं बत के समाज को अपने प्रेम और भक्ति से पुरा करता। मने इसके विपरीत उसके निर्ययता का व्यवहार किया। कम बदन और भोजन का कर दिया। वह बीजा-बलन बंधी-बुद्धि से निगुड नहीं थी और न हा लक्ष्मी थी पर उसके बहुत-बहुत काम लेता था और जरा पर देर ही जाती तो निकलना था। अब मुझे मान्य होता है कि मैं ही उसके घर से निकलने का कारण हुआ मैं उसकी सुन्दरता का फल न कर सका इतनी सुन्दरता का भी मुझे प्रेम नहीं हो सका।<sup>२</sup> अनेक परिचारों में शास्त्र-जीवन की श्रमणा लगे और पुराने धारों के संघर्ष से जन्म लेती है। परं और जातिधर्म के नाम पर हिन्दू-भारत का समाजियों से शोषण हो रहा है। सामुहिक नारी अपने इन शोषण के विरुद्ध विद्रोह कर रही है। अब वह परिद्रोह की धारानुसार निर के बत बनना अपना धर्म नहीं मयम्नी। 'रामसूत्र' में इतु एक ऐसी ही नारी है। अपनी मां काहूँ-बुद्धि पुराने धारों के धनुष्य हैती को भी जानना चाहती है पर इतु उसके गुना विरोध करती है। काहूँ-बुद्धि है 'मैं तुम्हें प्रति-व्ययय लगी देना चाहती हूँ। जिने अपने पुरुष की धारता या इच्छा के सामने धरन आचारधर्म का जरा भी विचार नहीं होता। धरन वह निर के बत बनने को बड़े ती भी सुन्दर धर्म है कि निर के बत बनो। इतु उत्तर देती है, धरन तुम्हें बत बनने को बतनी है जो देर

१ वाचस्पत्य शब्द ३७२-७६

२ सिद्धासदन शब्द २६२

लिए समझना है।<sup>१</sup> रघु का यह विरोह उच्छ्वसता की कोटि का नहीं है, बल्कि अपना मुहुर्ध वैचारिक पहलु रखता है, 'स्त्री का कर्तव्य है कि अपने पुरुष की सहायिनी बने। पर प्रश्न यह है, क्या स्त्री का अपने पुरुष से पुरुष कोई प्रसितत्व नहीं है? इसे तो बुद्धि स्वीकार नहीं करती।<sup>२</sup> भारी का यह पुरुष प्रसितत्व क्यों सोप हो रहा है? 'मंगलमूत्र में विषयी कहती है, 'मर्ते' ने स्त्रियों के लिये घोर और प्रथम छोड़ा ही नहीं। पाठिष्ठ उनके अन्दर इतना कूट-कूट कर मटा गया है कि उनका अपना व्यक्तित्व रहा ही नहीं। वह केवल पुरुष के आचार पर भी सक्त है। उसका स्वर्ण कोई प्रसितत्व ही नहीं।<sup>३</sup> स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को सुधारने के लिए पुराने सोपे आदतों की विनाशिता देना अनिवार्य है। प्रेमचन्द ने समाज के सामने वहीं एक सन्तुमित दृष्टिकोण रखा है वहाँ प्रतिष्ठिताचारियों से कहीं समझौता भी नहीं किया है। पुरुष की एक घोर दुर्बलता की घोर प्रेमचन्द ने उक्ति किया है। वह दुर्बलता है उसकी स्त्री को समझने की कमी। मनोरमा कहती है, 'पुरुष अज्ञान ही विज्ञान और अनुभव ही पर स्त्री को समझने में अक्षम ही रहता है।'<sup>४</sup> निःसन्देह यह नासमझी की अनेक दुर्बलताओं की बलक होती है।

इस प्रकार प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में साम्प्रदाय-जीवन के संघर्षों के मूल कारणों पर जगह-जगह प्रकाश डाला है, पर वे उन मूल कारणों पर समाज का ध्यान आकृष्ट करके ही मन्त्रोप नहीं कर लेते प्रत्युत धुंधी साम्प्रदाय-जीवन का मार्ग भी बटाते हैं। स्त्री-पुरुष के मधुर सम्बन्धों के लिए प्रेमचन्द उनमें बरिचना और स्वभावगत कुछ बाँटें चाहते हैं, जो एकपक्षीय नहीं हैं। 'आवाकन्य' में रोहिणी कहती है, 'गीता बनाने के लिये राम जीवा पुरुष चाहिये।'<sup>५</sup> अतः प्रेमचन्द ने केवल एक पक्ष की ही बकासत नहीं है। वे स्त्री में वैशामात्र प्रेम बन्धा प्राति सद्गुणों का होना उक्त साम्प्रदाय-जीवन के लिए आवश्यक समझते हैं। 'बरदान' में अन्ना और रामाचरण के सुखी साम्प्रदाय-जीवन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द लिखते हैं 'अन्ना में बाहे घीर न हो परन्तु पति की सेवा वह उन-मन से करती थी।....इन्हीं कारणों ने रामाचरण को स्त्री का बटीभूत बना दिया था। प्रेम रूप पुरुष धारि सब बुद्धियों का पूरक है।'<sup>६</sup> 'गोशाल' में मेहता का

१ रंगभूमि (भाग १) पृष्ठ ११६

२ वही पृष्ठ २६१ २६२

३ मंगलमूत्र पृष्ठ ६८

४ आवाकन्य पृष्ठ ११८

५ वही पृष्ठ १७७

६ बरदान पृष्ठ २६



यह जीवन भी अपर्युक्त तप्य का समर्पण करता है "सच्चा धान्य उसी शक्ति केवल सेवा-प्रय में है। वहीं परिवार का धोत है, वहीं शक्ति का अक्षय है। सेवा ही वह सीमित है, जो शक्ति को जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रखता है। अतः पर बड़े-बड़े धारणाओं का भी कोई अन्त नहीं होता। जहाँ सेवा का अभाव है, वहीं विवाह-विच्छेद है, परिवार है, परिवारण है।" १ 'कर्म भूमि में सुखदा अमरकण्ड के धान्य-जीवन की नीरवस्था का यही कारण है कि वहाँ सुखदा में वास्तविक प्रेम और समर्पण का अभाव है। प्रेमचन्द सुखदा के इस अभाव को स्पष्ट करने के लिए सञ्ज्ञा की सामने लाते हैं जो धान्य-जन्म के धारणाओं की बाहिर है। सञ्ज्ञा को देखकर सुखदा धारणासोचन करती है, 'ऐसी ही किन्हीं पुरुषों के हृदय पर राज्य करती हैं। मेरे हृदय में कभी इतनी शक्ति नहीं हुई। मैंने सबसे हँसकर बोलने हास-परिहास करने और धरने का धीर जीवन के प्रदर्शन में ही अपने कर्तव्य का अन्त समझ लिया न कभी प्रेम किया न प्रेम पाया।' २ सुखदा और सञ्ज्ञा का अन्त बताते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं 'सुखदा अपनी प्रतिभा और गरिमा से उस पर हासन करती थी। वह हासन उभे प्रिय था। सुखदा में परिवार का कर्म था। सञ्ज्ञा में समर्पण की शक्ति थी। सुखदा अपने को पति से बुद्धिमान और कुशल समझती थी। सञ्ज्ञा समझती थी मैं उनके धरने का हूँ?' ३

प्रेमचन्द के धान्य-जीवन के विचारों में परिवार के दर्शन दर्शन होते हैं। पुराने बलिदानुत्ती विचारों का वहीं वह विरोध करने हैं वहीं उच्छृङ्खलना का समर्पण भी नहीं करते। उनके विचारों में भारत की प्राचीन गरिमा के अनुकूल धार्मिक बहुरूप है। 'इतिहास' में धान्य-जीवन का सुख-मूल बनाते हुए वे अमृतप्रसाद और सुनिता के जीवन पर टिप्पणी करते हैं, 'धर्म ज्ञान जो धान्य-जीवन का सुख मूल है, दोनों में किसी को न था।' ४ प्रेमचन्द पत्नी की सबसे धनी सबसे सहायक और सबसे मित्र के रूप में देखना चाहते हैं। यदि दोनों में विचार और धारणाओं की दृष्टि ही तो धान्य-जीवन दोनों के विचारों में अन्तर्गामी मित्र होगा। 'आपादान' में 'सतोपासना' कहना है यदि रोज़ और पुरुष के विचार और धारणा एक ने हों तो रोज़ी पुरुष के कार्यों में बाधक होने के बरने सहायक हो सकती है। ५

१ गोदान पृष्ठ २२८

२ कर्मभूमि पृष्ठ २०४

३ वहीं पृष्ठ ११२

४ प्रतिज्ञा पृष्ठ ४८

५ आपादान पृष्ठ १३

लेकिन प्रेमचन्द स्त्री को सुपरने का ही मकित नहीं होते बरन् विपरीत दृष्टा में समझौता न करने के लिये भी तैयार करते हैं, उसके स्वतन्त्र अस्तित्व का समर्पण करते हैं तथा उसके स्वामिमान की प्रतिष्ठा करते हैं। पुरुष-वर्ग के अत्याचार के विरोध में प्रेमचन्द 'मंगलमूत्र' में पुण्या बीसी स्त्रियों का समर्पण करते हैं जो अपनी दुर्बलताओं को त्याग कर पुरुष को चुनौती देती हैं, जानते हैं (पुण्या के पति) कि इसे चाहे कितना सतायो कहीं जा नहीं सकती - एक बार बद् (पुण्या) बिलास का मोह त्याग दे और त्याग करना छोड़ ले फिर उसपर कौन रोष जमा सकेगा फिर वह क्यों कियो से दबेगी ।<sup>१</sup>

प्रेमचन्द की बुद्धि पारिवारिक समस्या से लेकर सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं तक समान रूप से बर्त है। पारिवारिक क्षेत्र की महत्ता को उन्होंने कम करके नहीं देखा है। इस प्रकार प्रेमचन्द के अन्वेषण भारतीय जन-जीवन के विभिन्न पक्षों पर मनो-भाषि प्रकाश डालते हैं और सामाजिक समस्याओं की ओर जनता का ध्यान आकषिण करते हैं।

यह कथन भी अचर्मुक्त वाय का समर्पण करता है "सच्चा ध्यान्य सच्ची शक्ति केवल सेवा-दत्त में है। वही अविचार का द्रोह है, वही शक्ति का अक्षय है। सेवा ही वह धोमेष्ट है, जो स्वयं को जीवनपर्यन्त स्नेह और साहचर्य में जोड़े रख सकता है जिस पर बने-बड़े धापातों का भी कोई असर नहीं होता। जहाँ सेवा का ध्यान है, वहीं विश्वास-विश्वास है, परिष्कार है, अविचार है।" १ कर्म-भूमि में सुधरा धनरकाश के साम्य-जीवन की नीरसता का यही कारण है कि वहाँ सुधरा में वास्तविक धर्म और समर्पण का ध्यान है। प्रेमचन्द सुधरा के इस ध्यान को स्पष्ट करने के लिए सकोना को सामने लाते हैं जो साम्य-व्यवस्था के धारकों की वांछना है। सकोना को देखकर सुधरा धारमातोषण करती है, ऐसी ही स्थिति पुष्पों के हृदय पर राज्य करती है। मेरे हृदय में कभी इनकी भया नहीं हुई। धीरे धीरे हँसकर बोलने हास-परिहास करने और धारने का धार दोषण के प्रदर्शन में ही अपने कर्तव्य का धार समझ लिया न कभी प्रेम किया न प्रेम पाया। २ सुधरा और सकोना का धार बसाते हुए प्रेमचन्द लिखते हैं सुधरा अपनी धारमा और धारमा से धार पर शासन करती थी। वह शासन उसे धार था। सुधरा में धारिकार का धार था। सकोना में धारिकार की धारमा थी। सुधरा अपने को धार से सुधरान और सुधरा समझती थी। सकोना समझती थी मेरे इनके धार बसाते हैं? ३

प्रेमचन्द के साम्य-जीवन के धारिकारों में अविचार के धारक रत्न होते हैं। पुष्पों के धारिकारों में वहाँ वह धारिकार करती हैं वहाँ उष्णता का समर्पण भी नहीं करते। इनके धारिकारों में धारिकार के धारिकार के धारिकार का धारिकार है। प्रथम में साम्य-जीवन का सुध-मूल बनाते हुए वे धारिकार और सुधरा के धारिकार पर धारिकार करते हैं, 'धर्म धारिकार को साम्य जीवन का सुध मूल है, धारिकारों में धारिकार की न धार।' ४ प्रेमचन्द धारिकार के धारिकारों में धारिकार और धारिकारों की धारिकार ही तो साम्य जीवन धारिकारों के धारिकार में धारिकारों धारिकार है। धारिकारों में धारिकार और धारिकारों की धारिकार ही तो धारिकार के धारिकारों में धारिकारों धारिकार है। धारिकारों में धारिकार और धारिकारों की धारिकार ही तो धारिकार के धारिकारों में धारिकारों धारिकार है। धारिकारों में धारिकार और धारिकारों की धारिकार ही तो धारिकार के धारिकारों में धारिकारों धारिकार है।

- १ शीतल पुष्प २२१
- २ कर्मभूमि पुष्प २०४
- ३ वही पुष्प १११
- ४ प्रथम पुष्प ४८
- ५ धारिकार पुष्प १३

तथा उनका हृदय यद्यपि हृदय सर्वत्र प्रवेष्टित नहीं होता मान के उपन्यासकार का प्रधान कर्म है। उपन्यासकार एक सामाजिक प्राणी होता है, वह अपने समय की समस्याओं से विमुक्त नहीं रह सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं "लोक वा किसी जन-समूह के बीच काम की गति के अनुसार जो गुड़ और खिलव परिस्थितियाँ बड़ी होती हैं उनको बाहर रूप में सामने माना और कभी-कभी निस्तार का कार्य भी प्रत्यक्ष करना उपन्यास का काम है।"<sup>१</sup> प्रेमचन्द साहित्य का उद्देश्य ही समस्याओं पर विचार एवं जनका हृदय उपस्थित करना घोषित करते हैं, जब वह (साहित्य) केवल नायक-नायिका के संयोग-वियोग की कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है।<sup>२</sup> अपने युग की समस्याओं के प्रति लेखक को सहायोग नहीं ही रहना चाहिए। रेस्क क्रान्तिक शक्तियों में क्या उपन्यासकार दुनियाँ की समस्याओं की विनम्रें वह रहता है, उपेक्षा कर सकता है? क्या वह मुझ के लिए होने वाले शोर के प्रति अपने काम बन्द कर सकता है, अपनी दृष्टि-दृष्टा के प्रति धाँसे बन्द रह सकता है? क्या वह अपने चारों ओर मनामक बातावरण देखकर अपना मुँह बंद रख सकता है जबकि राजकीय देह के नामपर व्यक्तिगत लोभमुफता को ध्येय-कार्यों कायम रखने के लिए जीना डुमर कर दिया गया है। दिन-पर-दिन उपन्यासकार यह अनुभव करने लगे हैं कि शक्ति काय और स्वर वास्तव में अलग के अंग हैं और मानवीय दुनिया को शक्ति प्रदान करने के लिये उत्तर है, वे किसी साम्प्रदायिक विरह के निष्क्रिय दास मात्र नहीं हैं। वेता कि कला के क्षेत्र में परम्परागत मान्यता रही है।<sup>३</sup> वही उपन्यासकार का युग-धर्म है। उसे अपने समय की समस्याओं

१ हिन्दीसाहित्य का इतिहास पृष्ठ २१६

२ कुल विचार पृष्ठ ३

३ The Novel and the People: Ralph Fox, Page 7

"can a novelist remain indifferent to the problems of the world in which he lives? can he shut his ears to the clamour of preparing war his eyes to the state of his country can he keep his mouth closed when he sees horror around him and life being a void daily he the name of state pledged to maintain the sanctity of private greed? More and more novelists, are beginning to feel that eyes, ears and voice are in fact organs of senses, responsible to the stimulus of the human world and not mere passive servants of a spiritual world supposed traditionally to be the domain of art.

## समस्यामूलक उपन्यास और प्रेमचन्द

[ १ ]

उपन्यास का मत्प्राप्तिक स्वरूप समस्यामूलक है। समस्यामूलक उपन्यास वैसा कि शब्दों से प्रमित होता है किसी समस्या विशेष को लेकर चलता है। समस्या पारिवारिक सामाजिक राजनीतिक नैतिक पारलौकिक धार्मिक किसी भी प्रकार की हो सकती है। सामाजिक-उपन्यास और सामाजिक-समस्यामूलक उपन्यास में वस्तु-विन्यास सम्बन्धी घन्टारंग है ठीक इसी प्रकार राजनीतिक वस्तु को प्रधानता नहीं देते वे कहीं-कहीं धौलप्यासिक रचनात्मक के शास्त्रीय नियमों तक भी अपेक्षा कर जाते हैं वर समस्या को प्रभावशाली रूप से प्रस्तुत करने के कारण इस अपेक्षा में पाठक की कृति के प्रति प्रतिक्रिया नहीं होती। समस्या मूलक उपन्यास धौलप्यासिक तत्वों में सबसे धार्मिक महत्व अपनी समस्या को ही देते हैं। शेष सब उनमें विभेद पर ध्य धौलप्यासिक प्रकारों से किञ्चिन् भिन्न।

समस्यामूलक उपन्यास के दो प्रकार हैं—

( १ ) जिनमें केवल एक समस्या हो और

( २ ) जिनमें एक प्रधान-समस्या के साथ अन्य समस्याएँ भी बुंधी हुई हों पर इनका स्वतन्त्र गौरव हो।

उपन्यास नाम से पुकारे जाने के धार्मिकारी हैं। दूसरे प्रकार के उपन्यास समस्यामूलक उपन्यास की श्रेणी में इस कारण परिगणित किये जाते हैं क्योंकि उपन्यासकार का ध्यान उनमें भी समस्याओं की धोर ही केन्द्रित रहता है। स्वयं में कुछ विपत्ता होते हुए भी बहुतेर्य में एतदा धररर विलगी है। इसके धार्मिक से एत-बुन्दरे के धार्मिक निरुध भी है बिधीकी होने वा तो प्ररन ही न घटता। धन' समस्यामूलक उपन्यास की विरलुत परिभाषा के धन्तर्गत उपन्यास दोनों प्रकार के उपन्यास सम्मिलित किए जाने हैं।

समस्यामूलक उपन्यासों का प्रकार दिन-पर-दिन बढ़ता जा रहा है प्रायःक देस में लोकप्रिय हो रहे हैं। जीवन की नाना समस्याओं का उद्घ

तथा उनका हल यद्यपि हल सर्वत्र अपेक्षित नहीं होता थाय के उपस्थासकार का प्रधान कर्म है। उपस्थासकार एक सामाजिक प्राणी होता है, वह अपने समय की समस्याओं से विमुक्त नहीं रह सकता। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य के इतिहास में लिखते हैं लोक या किसी कल-समय के बीच काल की प्रति के अनुसार जो मूढ़ और चिन्त्य परिस्थितियाँ बड़ी होती हैं उनको मोचर रूप में सामने आना और कभी-कभी निस्तार का मार्ग भी प्रत्यक्ष करना उपस्थास का कर्म है।<sup>१</sup> प्रेमचन्द साहित्य का उद्देश्य ही समस्याओं पर विचार एवं उनका हल उपस्थित करना जोषित करते हैं, जब वह (साहित्य) केवल नायक-नायिका के संयोग-विमोघ को कहानी नहीं सुनाता किन्तु जीवन की समस्याओं पर भी विचार करता है, और उन्हें हल करता है।<sup>२</sup> धपन मुग की समस्याओं के प्रति लेखक को उदासीन नहीं ही रहना चाहिए। ऐल्ड छावस के शब्दों में 'क्या उपस्थासकार बुनिया की समस्याओं की जिनमें वह रहता है, उपाय कर सकता है? क्या वह युद्ध के लिए होने वाले शोर के प्रति अपने कान बन्द कर सकता है, अपनी देश-वश के प्रति झेलें बन्द रख सकता है, क्या वह धपन चारों ओर नयानक बस्ताबरछ देखकर धपना मुँह बंद रख सकता है जबकि राजकीय रेल के नामपर व्यक्तिगत लोभुपुष्ठा को ज्यों-जैसे-ज्यों कायम रखने के लिए जीना डुमर कर दिया गया है। दिन-पर-दिन उपस्थासकार यह अनुभव करने लगे हैं कि धाँख कान और स्वर वास्तव में शैतना के धंग हैं और मानवीय बुनिया को शक्ति प्रदान करने के लिये उत्तर है, वे किन्तो धाम्मारिक चिन्त के निष्क्रिय बास मात्र नहीं हैं बस कि कला के क्षेत्र में परम्परागत माम्यता रही है।<sup>३</sup> मही उपस्थासकार का मुय-धर्म है। उसे अपने समय की समस्याओं

१ हिन्दीसाहित्य का इतिहास पृष्ठ २३९

२ कुछ विचार पृष्ठ ५

३ The Novel and the Poet: Ralph Fox, Page 7

"Can a novelist react indifferently to the problems of the world in which he lives? Can he shut his ears to the clamour of propaganda war, his eyes to the state of his country, can he keep his mouth closed when he sees horror around him and life being denied daily in the name of state pledged to maintain the sanctity of private greed? More and more novelists are beginning to feel that eyes, ears and voice are, in fact organs of senses responsible to the stimulus of the human world and not mere passive servants of a spiritual world supposed traditionally to be the domain of art.

में काफ़ी गहरे दूब जागा होता है। समस्यामूलक उपन्यासकार की कला का उपबोधितावाही दृष्टिकोण अपनाता पड़ता है। उसका संदेश सामाजिक है। वैयक्तिक समस्याओं के उपन्यास मनोवैज्ञानिक उपन्यासों को कोटि में धाते हैं। वे मात्र व्यक्ति के मन का विश्लेषण करते हैं। किसी सामूहिक जन-जीवन के प्रश्नों को समस्याओं को धारककथाओं को सम्मुख नहीं रखते। समस्यामूलक उपन्यास हमारे बटिम धीरे विभिन्न अपारमक संसार का स्पर्श है।

धोपन्यासिक तत्त्व समस्यामूलक उपन्यासों में सीमित धीरे विविध दृष्टिकोण लेकर धाते हैं। कथावस्तु, चरित्र-चित्रण कथोपकथन वैकाल धारि सभी तत्त्व किचित् परिवर्तित रूप में इनमें दृष्टिकोणर होंगे। कहीं तक वस्तु का सम्बन्ध है समस्यामूलक उपन्यास में उसके विन्यास का विन्यय म्हरण है। समस्या की धापार मानकर उपन्यासकार वस्तु की रचना करता है। जीवन की घटनाओं का वह इस तरह संकमन करता है कि समस्या पाठकों के सामने धीरे-धीरे धाठी जाव धीरे धाधे चलकर धुरे उपन्यास पर छा जाव। इस क्रिया में सामाजिक व राजनीतिक परिपारर्ब की बड़ी धपेछा रहूठी है। सामाजिक व राजनीतिक वातावरण समस्यामूलक उपन्यासों की रंगभूमि है। इसी वातावरण पर समस्या को गम्भीरता निभर करती है। समस्या की बटिकता भी सामाजिक वा राजनीतिक सीमाधों में ही धावड रहूठी है, तथा समस्या का इस भी इन्हीं सीमाधों के परिवर्तन वा बिकास पर निर्भर करता है। समस्यामूलक उपन्यासकार का कर्म ऐतिहासिक उपन्यासकार से भी धाधिक बंधा हुआ है। जिस प्रकार ऐतिहासिक उपन्यासकार धपने उपन्यास की कथा की मनमाना रूप नहीं दे सकता उसी प्रकार समस्यामूलक उपन्यासकार भी धपने प्रतिपाठ समाज की स्थिति का बर्णन करते समय उसे धपने इन्ध्यानुसार नहीं बदल सकता। जिस प्रकार की समस्या उपस्थित हो उसकी ध्यों-धी-रधों से ध्रुण करना पड़ता है। धिर समाजगत धापार्धों, धर्वाधार्धों तथा सीमाधों का परिधय कराता हुआ वह सम्मोचन धीरे देशोचित रूप निरुधनैगा। प्रायः समस्याधों वा उत्पन्न होता सामाजिक धारिधार्थिक वा राजनीतिक दशाधों पर निर्भर करता है। धन' समस्यामूलक उपन्यासकार की धपने समय के समस्त प्रकार के वातावरण की सम्पूर्ण वावराधी-कीनी वाधिए। यमात्र शासन धाधराधन राजनीति धीरे इतिहास वा विस्तृत वैज्ञानिक ज्ञान धनधो होता वाधिए। इहसत सिधते है— उपन्यासकार धीवत के वा भी सेव धपन विस्तृत क निर धुने उसे वह पूर्ण समझने के परबल ही निरुधन धाररुध करे वह मन्त्र बह्य-विधय के निरुधत में ही प्राण हो सधती है।”<sup>1</sup>

1 An Introduction to the study of Literature (William Henry Hudson) page 156.

Whatever aspects of life its novelist may choose to write about, he should write to them with the grasp and thoroughness which can be secured only by familiarity with his material.

बहु तथ्य समस्यामूलक उपन्यास के धर्मगत विरोध महत्त्व रखता है। समस्या मूलक उपन्यास में कथा का विकास विशिष्ट दृष्टिकोण को लेकर होता है। उपन्यासकार का यही उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन करना नहीं होता। उसे तो मर््या की कठोर भूमि पर चढ़े होकर अपनी दृष्टि का निर्माण करना होता है। जिस समस्या को लेकर वह चलता है और जो उसका उस समस्या को देखने का दृष्टिकोण होता है उसी की पूर्ति भावना को सामने रख कर वह कथा-सामग्री एकत्र करता है। इस कथा-सामग्री में कोई भी घनावरणक बटना का समावेश नहीं होना चाहिए। अन्य बटनाओं के समावेश से प्रायः अन्य उपन्यासों की रोचकता बढ़ जाती है, पर समस्यामूलक उपन्यास में ऐसा करने से उसके प्रभाव की तीव्रता पर व्यापार होता है। समस्यामूलक उपन्यासकार अपने पाठक का ध्यान एक चरम की प्रतिपाद्य समस्या से हटाना नहीं चाहता। उसका मार्ग प्रशस्त रामयण नहीं है, उसे सैकरी पनडण्डो पकड़नी होती है और समस्याओं के बीहड़ जंगलों में काफ़ी भीतर पहुँचना होता है। उस पणडण्डे के घासपात या मध्य में जो कुछ है वह उसका है, उसके बाहर के खेप से उसे कोई सरोकार नहीं।

समस्यामूलक उपन्यास कोई निबन्ध नहीं होता वह कलात्मक रचना होती है। इसलिए उसमें निश्चित समस्या से सम्बन्धित विचारों प्रश्नों व विज्ञानासनों के लिए प्राथमिक धोष व प्रभावशाली घटना की खोज आवश्यक है। बटना साधारण होत पर समस्या उभर नहीं सकती। एक ही समस्या को लेकर नाना उपन्यासों को रचना की जाती है पर उनकी सञ्जता-श्रेष्ठता बहुत कुछ बटना पर निर्भर करती है। घटना के चुनाव में समस्यामूलक उपन्यासकार को बड़ा सजग रहना होता है। बिना इसके उसके ऊँचे विचारों का पुरा-पुरा जन्मीय नहीं हो सकता।

कथा-वस्तु में स्वाभाविकता अनिवार्य है। उसके विकास-पथ का बाध नरु होता है। प्रारम्भ का धीरा विस्तृत नहीं होता। मध्य भाग में समस्या का उभार होता है और चरमोत्कर्ष कई घाते हैं तथा इन्ट्र की तीव्रता बढ़ती जाती है और फिर प्रायः सभी पहलुओं के प्रकाशन के बाद उसका अन्त हो जाता है। समस्या-मूलक उपन्यासों का अन्त प्रायः प्राकृतिक होता है। उपन्यासकार समस्या को रचता है उसका विरोध करता है, उसके कारणों पर प्रकाश डालता है पर इन सबका व्यक्त नहीं करता सुझाने ही है। वह पाठकों को सोचने के लिए बाध्य करता है और उनकी विचार-शक्ति को बढ़ाता है। कुछ समस्यामूलक उपन्यासकार हल भी व्यक्त करते हैं और उपन्यास का अन्त बीरे-बीरे कर, एक पार्श्व घाव के सामने उल्लिखित करते हैं। समस्याओं के हल का निर्देश यदि उपन्यासकार करता है तो वह उपन्यासकार के साव-साव नेत्र का भी क्षम



करता है। समाज की बदलने के धाम-साव उसके मर-निर्वाण में भी बोध देता है पर यहाँ उसके इस के व्यावहारिक होने का धरन पाता है। वहीं पर उन व्यावहारिक के व्यक्तिगत मण्डलों, आर्याओं विरवाओं धारि का परिचय मिलता है।

प्रत्येक उपन्यासकार का ध्येय उद्देश्य होता है। प्रायः यही देखा जाता है कि उपन्यासकार समस्याओं को ध्येय उद्देश्य की राशनी में ही देखते हैं। उनका जीवन-दृष्टि समस्याओं का देखने-धमलने व हल करने में सदैव धारण रहता है। मेलक का व्यक्तिगत ऐसे उपन्यासों में विशेष रूप से मचित होता है। वह सभी चीजों को ध्येय दृष्टिकोण से देखता है। पर उनका दृष्टिकोण वैयक्तिक नहीं होना चाहिए। यदि उसने वस्तुओं को देखने का ध्येय दृष्टिकोण सामाजिक चेतना व धारणकार्यों को सामने रख कर बनाया है तो उसकी दृष्टि समाज के लिए स्वस्वकार तथा सफ्योवी सिद्ध होगी।

पार्श्वों के चरित्र-चित्रण का स्थान समस्यामूलक उपन्यासों व समस्याओं के साथ ही रहता है। प्रायः इतने दृष्टान्त नहीं हो सकते जितने चरित्र-वर्णन या ब्रह्मा चरित्र-वर्णन उपन्यासों में। चरित्र-वर्णन उपन्यासों में मेलक का ध्यान पार्श्वों पर केन्द्रित रहता है जब कि समस्यामूलक उपन्यासों में समस्याओं पर। कभी कभी यह ध्यान इतना अधिक हो गया जाता है कि पार्श्वों का स्वतन्त्र प्रकृतिक तत्त्व संकट में बड़ जाता है और वे उपन्यासकार की दृष्टि पर नाचने लगते हैं—कठगुलकी की तरह। यह एक बोध धारण है और प्रत्येक उपन्यासकार को इनसे बचना चाहिए। समस्यामूलक उपन्यासकार का भी इस धारण से बचना धारणकार है। क्योंकि उसने उनके उद्देश्य के दुर्बल पड़ने की सम्भावना रखी है। समस्यामूलक उपन्यास में कथोपकथन केवल कथा के विकास धारण चरित्र-वर्णन के दृष्टिकोण से नहीं रखे जाते बल्कि समस्याओं के उद्घाटन करने व उनके कारणों पर प्रकाश डालने के लिये ही है। मेलक उनके द्वारा कथने विचारों की मसी-मति प्रकट करता है। प्रायः संसार मध्य ही जाते हैं। विचार प्रधान तो वे जाते ही हैं। पार्श्वों के मध्य से मेलक धारण मण्डलों को सामने रखा जाता है। ऐसे उपन्यासों के समाज उसका उद्देश्य यह नहीं होता कि संसार छोड़े हों, कथा को धारण बड़ाएँ, पार्श्वों की मनोवृत्तियों व स्वभाव पर प्रकाश डालें धारि। ध्येय समस्यामूलक उपन्यासों में यह स्वाभाविक है कि संसार कहीं-नहीं मेलक व धारण का रूप धारण कर लते हैं क्योंकि उपन्यासकार का प्रयोजन ही यही रहता है। धारणकार ऐसे संसार कथने उपन्यासकार पर धारण करते हैं। ध्येय का यह धारण मंगल नहीं हीयना क्योंकि समस्यामूलक उपन्यासकार का उद्देश्य उद्घाटन में मंगल रहता है। यह धारण-धारण उपन्यासों को

विचार का माध्यम बनाया है। यदि यह श्रेय माना भी जाय तो भी उपन्यासकार की चेतनावस्था का जनक है। अतः वह तो अग्रतः प्रतीक समस्यामूलक उपन्यास के रचनात्मक का एक तत्व ही बन जाता है।

अतः मैं, समस्यामूलक उपन्यास और कला का क्या सम्बन्ध है, प्रश्न स्पष्ट रखता हूँ। कीर्ति भी रचना बिना कलात्मक रूप प्रभावशाली नहीं हो सकती। कला को धीरे से समस्यामूलक उपन्यासकार भी अशाहीन नहीं रह सकता। कलात्मक रचनाओं की अन्तिम शक्ति होती है। वे पाठकों को प्रभावित भी नहीं कर सकती। लेकिन समस्यामूलक उपन्यासों और कलात्मक उपन्यासों में भेद है। कलात्मक उपन्यासों को कला के दृष्टिकोण से ही परखना चाहिए। अन्तिम समस्यामूलक उपन्यासों के विस्तार का आधार सामाजिक पृष्ठभूमि है। समस्यामूलक उपन्यासों में कला रहती है, लेकिन उनका मूल्यकाल कला की दृष्टि से करना अर्थहीन है। समस्यामूलक उपन्यासकार यदि कहीं-कहीं भीमाओं का उत्कर्षण भी कर जाए तो वह अक्षरशः नहीं क्योंकि ऐसे उपन्यास अल्प अक्षरों में इतने सुदृढ़ होते हैं कि उनका सामूहिक प्रभाव कला-प्रभाव की वृत्ति कर देता है। वे हमें सोचने के लिये विवश करते हैं। उनका प्रभाव उपन्यास पढ़ लेने के बाद भिन्न नहीं है। वे हमारी चेतना और सर्वना-शक्ति को क्रियाशील करते हैं।

अतः अन्तिम समस्यामूलक उपन्यासों से परिचित ता रहता ही है, बड़े-बड़े राजनीतिक नेता भी अपने भाषणों से अनेक समस्यामूलक से संबंध करने के लिए उत्तेजित करते रहते हैं। पर, इन बातों का उस पर इतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना साहित्य के द्वारा। उपन्यासकार कला के सहारे समस्यामूलक के सम्बन्ध में जा भी विचार व्यक्त करता है उसका ही प्रभाव समाज पर पड़ता है। स्पष्ट है कि इस क्रिया में कला का योग है जिसे हम समस्यामूलक उपन्यास की कला कहते हैं, पर, वहाँ कला प्रभाव पर पर आरुढ़ नहीं की जाती उसका तो मात्र सारा निवा जाता है। इस सहारे से उपन्यासकार के गहरे-से-गहरे विचार टिके रहते हैं और पाठकों को अन्तिम नहीं होती। वह अन्तिम टिप्पणियों को अन्तिम से पढ़ता है। ऐसे ही उपन्यास समाज को बदलने की शक्ति रखते हैं।

[ २ ]

प्रेमचन्द समस्यामूलक उपन्यासकार है अथवा नहीं यह एक विवादास्पद विषय है। स्वयं प्रेमचन्द अपने को व्यक्ति-चरित्र का उपन्यासकार बता गये हैं—  
 "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का विश्व मात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोजना ही उपन्यास का मूल तत्व है।"

कुछ घामोचक उन्हें सामाजिक उपन्यासकार घोषित करते हैं जैसे कि उनके उपन्यास मात्र सामाजिक कियों तक ही सीमित हैं। प्रेमचन्द को सामाजिक उपन्यासकार मानने पर भी समसामयिक उपन्यासकार की कोटि में रखा जा सकता है। पर "सामाजिक शब्द प्रेमचन्द की समस्त विद्येयताओं का परिचायक नहीं है। उनके उपन्यासों में मात्र सामाजिक समस्याएँ ही नहीं उठतीं हैं। दूसरे सामाजिक शब्द समस्या की ऐकाग्रिकता का सूचक भी नहीं है।

प्रेमचन्द के उपन्यास व्यक्तिपरिच के उपन्यास हैं। ऐसा मानकर प्रेमचन्द ही नहीं घनेक घामोचक भी बने हैं। यदि प्रेमचन्द के उपन्यासों की यह कसौटी मान ली जाय तो वे साधारण कोटि के उपन्यासकार ठहरते हैं। और जैसा हुआ है, प्रेमचन्द के घामोचकों ने इसी धार पर उनके उपन्यासों का मूल्यांकन किया है और उनके चरित्रांकन की दुर्बलताओं पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

प्रेमचन्द के पात्र बाह्य-जगत् बटुगुसी के समान क्रिया-बन्धन करते हैं। घामोचकों ने शास्त्रीय घामोचना विद्याओं के आधार पर प्रेमचन्द में यह एक बड़ा दोष बताया है। वास्तव में बात है भी ऐसी। यह दोष सत स्थिति में और भी उभर आता है जब स्वयं प्रेमचन्द मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना उपन्यास का मुख्य उद्देश्य बताते हैं।

फिर भी प्रेमचन्द के उपन्यास बड़े लोकप्रिय हैं। विरह-उपन्यासकारों की प्रथम श्रेणी में उनका स्थान है। मूलर तत्त्व में दुर्बल होते हुए भी उनके उपन्यास होने प्रभावशाली कैसे बन गये? यह कौन-सा रहस्य है जो उनकी प्रसिद्धि के लिए उत्तरदायी है। चरित्रांकन की दृष्टि से तो उनमें पर्याप्त दुर्बलताएँ हैं। घन प्रेमचन्द के उपन्यास व्यक्तिपरिच के उपन्यास नहीं बड़े आ सकते। उनमें व्यक्तिपरिच से भी प्रयुक्त ब बड़ी कौड़ी घोर ही चीज है। राह है यह चीज उनके उपन्यासों में पाई जाने वाली 'मस्य' है। पाठक समस्या पर घनका ध्यान केन्द्रित करना है। घन घन घमाओं की घोर जलना ध्यान नहीं आता। चरित्रांकन की दृष्टि से दुर्बल होते हुए भी समस्या की अवस्थिति उपन्यास की टीका बनाए रखती है।

प्रेमचन्द घनके उपन्यासों में केवल समस्या प्रस्तुत ही नहीं करते बल्कि उनका हल भी करत हैं। यह धारणक नहीं कि उद्धान मरिच हो हल आता हो। आकर्षक चित्रणप्रकार कर्ता के कर्ता से

ब समान-व्यवस्था पर एक तब के प्रहार करते घोर दूसरे तब में समस्या प्रस्तुत नये। समाज का बुधदवी को प्रस्तुत करना ही के घनका धर्म न बनकर घे प्रस्तुत बनका हल प्रस्तुतना भी के धारणक नमकने से।

प्रेमचन्द के उपन्यासों के मूल्यांकन की यह दूसरी बसोटी है। इस आधार पर उन्हें समस्यामूलक उपन्यासकार मानकर बना जाना है, जहाँ प्रमुख तत्त्व समस्या को रखना व उसका हल प्रस्तुत करना रहता है। उपन्यास के अन्य तत्त्व शीघ्र रूप में घाटे हैं।

समस्यामूलक उपन्यासकार घादरक्षारी या यथार्थवादी होते हैं या वैसे कि प्रेमचन्द थे—घादरक्षीमुखी यथार्थवादी हो सकते हैं। वस्तुतः समस्यामूलक उपन्यासकारको यथार्थवादी बनना घादरक्षीमुख यथार्थवादी ही होना चाहिए। घादरक्षारी समस्याओं का कोई ब्यावहारिक हल प्रस्तुत कर सकेगा यह विरवमनीय बात कम है। समस्यामूलक उपन्यासकार की सफलता ब्यावहारिक दृष्टिकोण पर ही निर्भर करती है।

प्रेमचन्द के प्रायः सभी उपन्यासों में कोई-न-कोई प्रमुख समस्या मिलती है। प्रमुख समस्या के साथ-साथ अन्य समस्याओं की भन्नक भी प्रायः प्रत्येक उपन्यास में विद्यमान है।

'बरदान' प्रेमचन्द का प्राथमिक कृति है। इसका रचना-काल १९०२ है, यद्यपि प्रकाशन 'सिंहासन' (१९१६) के बाद हुआ। 'बरदान' के पूर्व प्रेमचन्द ने एक छोट्टा-सा उपन्यास 'दृष्ट्या' लिखा था जो इण्डियन प्रेस प्रकाश संस्था का। यह उनके विद्यार्थी-जीवन की रचना है।

'बरदान' यद्यपि १९०२ में लिखा गया, लेकिन 'सिंहासन' के बाद प्रकाशित होने के कारण उसका प्राथमिकता समझी नहीं ही रह सकी होगी। कृति में आधारभूत परिवर्तन तो निरचय ही नहीं किन्तु अतः केवल इतने समय के अन्तर के कारण उस पर एक अनुभवो लक्षक का हाथ तो अवश्य पला होगा। यह तब हाथ हुए भी यह भी मानना पड़ेगा कि इस काल में प्रेमचन्द ने कोई विद्यार्थी कृति नहीं लो होगी क्योंकि इसमें अनेक साधारण भूमों रह गई हैं यथा इत्यादिवादि में द्वाबे बनवाना अथवा पानेदार का एक ही रस्मों से नारे पौर को बँधना देना आदि।

प्रश्न यह है कि क्या 'बरदान' समस्यामूलक उपन्यास है? यदि हाँ तो उसमें कौन-सी समस्या प्रमुख है एवं शीघ्र रूप में कौन-कौन-सी समस्याओं का उसमें प्रबल हुआ है।

बहुता न होगा कि 'बरदान' न तो समस्यामूलक उपन्यास है और न उसमें किसी प्रमुख समस्या का ही समानेक किया गया है। वास्तव में 'बरदान' कथानक-प्रधान उपन्यास है लेकिन कथानक की दृष्टि से भी वह सफल नहीं है। उपन्यास घटनाओं का घटाटोप मिलता है। कथा-वस्तु न समीप है और न मुख्य चरित्र। इनका कारण प्रेमचन्द का समस्या प्रेम है। 'बरदान' में बीज

अप म प्रेमकाव्य का समस्यार्थों के प्रति सम्पन्न स्पष्ट रूप से व्यक्त हुई है। समस्यार्थों के प्रति यह सम्पन्न ही 'बरदान' को न तो कवानक की दृष्टि से और न चरित्रात्मक भी दृष्टि से सफल उपन्यास बनने देती है। इसी कारण कुछ पाठकों को 'बरदान' 'दिलकुल हुआ में उड़ता हुआ शीखता है।'<sup>१</sup>

डा० एमरसन भटनागर 'प्रेमकाव्य आलोचनात्मक अध्ययन' में लिखते हैं 'कथा-संबन्ध और चरित्र चित्रण दोनों दृष्टि से 'बरदान' असफल उपन्यास ही कहा जायगा। जिस प्रकार कि प्रेम कहानियों की घूम उल्टियों उठावों के अन्तिम दो बरतों और बीचों-बीच शताब्दी के पहले बरत में भी उनसे यह उपन्यास बरा भी निम्न नहीं है। कथासंबन्ध सिद्धि है और उसमें समात्मकता को विशेष स्थान नहीं मिल सका है। स्वयं कथा इतनी मजबूती है कि पाठक उम्र जाते हैं। य कथा रस का विकास ही सम्भव है न चरित्रचित्रण का।'<sup>२</sup>

उल्टियों शताब्दी के अन्तिम दो बरतों और बीचों-बीच शताब्दी के पहले बरत की प्रेम कहानियों में डा० एमरसन भटनागर बरदान की समझ बखते हैं और पाठे चलकर उसके कथा-शक्ति और पाठक के ऊपर जाने की बात कहते हैं। यहाँ आलोचक स्वयं अपने मन का संकलन कर देते हैं और उन प्रेम-कहानियों का 'बरदान' से अन्तर भी स्पष्ट कर देते हैं। उपर्युक्त काम की प्रेम-कहानियाँ पाठक को उबाती नहीं हैं, जब कि 'बरदान' के कवानक में वह कमजोरी है। वास्तव में प्रेमकाव्य उल्टियों-बीचों-बीच शताब्दी के उपरिनिष्ठित काम जैसी प्रेमकहानियाँ लिखता नहीं चाहते थे। बरदान में तो वे उस परम्परा को तोड़कर एकरस नये क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं जिसके कारण 'बरदान' का कोई नया तिवर नहीं हो सका है।

'कथाकार प्रेमकाव्य' में भी सम्बन्धात् कुछ और रसोद्भव नहीं लिखत है, 'मनोवैज्ञानिक दृष्टि से विरक्त का चरित्र विस्तृत हुआ में उड़ता हुआ है। उनमें कोई सिर बंद है ही नहीं। प्रत्यय का चरित्र बहुत कुछ निष्ठा है पर अन्त में आकर वह भी बिगड़ जाता है।'<sup>३</sup> जब कथावस्तु की दृष्टि से ही 'बरदान' अत्यन्त ही कमजोरी है, तब चरित्रचित्रण के क्षेत्र में उसमें कोई महत्त्वपूर्ण बात जोड़ना दुरासा मान है।

'बरदान' मध्यवर्तीय जीवन में सम्पन्न रगता है। शरणकाव्य चट्टीराध्याय के देवदास की कथा बरदान में बहुत कुछ चिन्ती-जुगुनी है। कामधनाय कुछ उदाहरण दोनों उदाहरणों के बिना-आध्य पर लिखने हैं, 'एक मुकदमा का १८

१ सम्बन्धात् गुण 'कथाकार प्रेमकाव्य' पृ० १०३

२ प्रेमकाव्य आलोचनात्मक अध्ययन पृ० ५० ५१

३ 'कथाकार प्रेमकाव्य' पृ० १६५

दुबली से प्रेम होगा है। किसी कारण से सामाजिक कारण से दोनों का विवाह नहीं हो पाता। लड़कों का विवाह दूसरे व्यक्ति से हो जाता है। अब इसके बारे में बटलगाएँ उपद्रव होती है, यही इन दोनों पुस्तकों में दिखताया गया है।<sup>१</sup>

सामाजिक बाधाओं के कारण प्रभाव और विरजन का प्रेम वैवाहिक सम्बन्धों में नहीं बँध पाता। प्रभाव संन्यासी हो जाता है और विरजन सुरक्षित मुक्त समताओं के ब्याह की जाती है।

यहाँ प्रत्यक्ष रूप से वैवाहिक समस्या सामने आ जाती है। डॉ० रामरजन बटलगाएँ शरदचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'देवदास' से तुलना करते समय इस घोर स्पष्ट संकेत करते हैं, 'शरदचन्द्र के देवदास और अन्य उपन्यासों में असफल-प्रेम नायक को धारणा और धारमन्त्री बना देता है। प्रेमचन्द ने असफल प्रेम का नवाङ्गीर्षा और राजनीति-निष्ठ में फलबलाग किया है। मनोविज्ञान की दृष्टि से दोनों में कोई भेद नहीं है। परन्तु समाज हित की दृष्टि से समस्या का प्रेमचन्द द्वारा उपस्थित किया हुआ अधिक स्वल्प है।'<sup>२</sup>

इस दृष्टि में वैवाहिक समस्या की घोर प्रेमचन्द पाठकों का ध्यान उपन्यास बना की हत्या करके भी धारणित करना चाहते हैं।

"मुंशी जी के प्रगणित बागवत इसी भारतवर्ष में अब भी विद्यमान है जो पत्नी प्यारी कन्याओं को इसी प्रकार नेत्र बन्द करके कुर्से में डकेल दिया करते हैं।<sup>३</sup> और घाने बनकर अब विरजन विवाह हो जाती है जब प्रेमचन्द की धारणों के सामने वैवाहिक की समस्या नाचने लगती है, कथानक और चरित्र-चित्रण की घोर तो ध्यान ही नहीं देते।

इसके प्रतिरिक्त जमीन पुस्तों में 'कमला के नाम विरजन के पत्र नामक परिशिष्ट का उद्देश्य समझने पर यह बात घोर स्पष्ट हो जाती है। प्रेमचन्द ने इन पात्रों का विषय व्यक्तिगत-जीवन नहीं रखा है। पति-पत्नी के पत्र-व्यवहार का कोई रूप उसमें नहीं मिलता। इसके विपरीत इन वर्षों में ग्रामीण-जीवन की समस्याएँ बड़ी प्रमुखता से बखित की गई हैं। उपन्यासों के प्रति प्रेमचन्द की सम्यक प्रारम्भ से ही भी यह इन पात्रों की विषय-सामग्री से जमीनवि समझ का संकटा है। यही सम्यक 'बरदान' में प्रेमचन्द को 'तीवरे शर्म का उपन्यास कार' बनती है।

टीकाटिक पहलू पर भी 'बरदान' में यह-उप महत्वपूर्ण बातें विद्यती हुई हैं। मणिषा का प्रकाशन १९२-६ में हुआ। मणिषा 'प्रेमा' (१९०४-६)

- |   |                                |              |
|---|--------------------------------|--------------|
| १ | कथाकार प्रेमचन्द               | पृष्ठ ११३ १४ |
| २ | प्रेमचन्द ग्रामीणनाटक पद्यपत्र | पृ० २२       |
| ३ | बरदान                          | , ४४         |

का परिचयित्त रूप है जिसका उर्दू में 'इसखुरमा व इनसबाब' नाम से पहले प्रकाशन हो चुका था। 'प्रेमा का नाम धार्ये बलकर 'विभव' रखा गया जिसमें कुछ परिवर्तन भी किये गये। यही उपन्यास परिवर्तनों और परिवर्तनों के परभाव, 'प्रतिभा' के नाम से प्रकाशित हुआ। जिसका कहु धनुवाद 'देवा' के नाम से हुआ है।

'प्रतिभा' में विधवाओं पति-पत्नी के पारिवारिक सम्बन्धों और धर्मों की समस्या पर लिखा गया है।

प्रेमचन्द का दूसरा विवाह भोमती सिबराणी देवी से १९०५ में हुआ। सामाजिक दृष्टिकोण से इसे विधवा विवाह ही कहा जायगा भले ही शारीरिक व मानसिक दृष्टि से उसे विधवा विवाह की संज्ञा न भी जाय। सिबराणी देवी अपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द-पर में में लिखती है, मेरी पहली शादी ग्यारहवें साल में हुई थी। वह शादी कम हुई इसको मुझे प्यार मही। कम में विधवा हुई इसकी भी मुझे लज नही। विवाह के तीस बार महीने बाद ही मैं विधवा हुई। इसलिये मुझे विधवा कहना मेरे साथ धर्याव होगा। क्योंकि जो बान में बानगी ही नहीं वह मेरे माये बड़ना ठीक नहीं।<sup>१</sup>

प्रथम विवाह के बारे में प्रेमचन्द और सिबराणी देवी का संवाद इस प्रकार है

"कि मेरी रानी की बिराई का समय आया। कई रोज का धरणा ही गया था। अँटगाड़ी से लावा गया। अब हम अँटगाड़ी में उठते, मेरी रानी ने मेरा हाथ पकड़ कर चलना शुरू किया। मैं बसके लिये तैयार था था। मुझे फिफ्ट सालम हो रही थी। उमर में वह मुझसे ज्यादा थी। अब मैंने उठकी लूछ देवी तो मेरा धून धून गया।

'वह बरपूरत तो भी हो। उनके साथ-साथ बवान की भी मीठी न थी। वह रणाल को घोर मो हुर कर देता है।<sup>२</sup>

"मेने उनको उनके पर पहुँचा दिया और कुछ घंटे में यही रह गया।<sup>३</sup>

मेरी बारात आई। मेरे पिता को मालूम हुआ कि मेरी बीबी बहुत बरपूरत है। बेहवाई की हरकत उन्हें बाहर ही देख भी। यह मेरी शादी बाबों के विना मैं ठीक की थी। पिताको बाबों से बोने मालागी ने मेरे लड़के की दुपें में डकेन दिया। धरुजोत। मेरा मुनाब-सा लड़का और उठकी यह रानी। मैं तो उनकी पुसरी शादी करूँगा। बाबों ने कहा देवा बायेवा।...

१ प्रेमचन्द पर में पृष्ठ १३

२ वही पृष्ठ ८

३ वही पृष्ठ ९

४ वही पृष्ठ ९

बाबी मेरी पत्नी पर शासन करनी थी... परम बीच में बाबी न हूँगी तो हाबर मेरी उमड़ी जिन्दगी एक साथ बीत भी जाती।<sup>१</sup> यह बटना १९०४ की है। अभिप्राय यह कि इन दिनों प्रेमचंद का जीवन वैवाहिक मुत्तियों में बसना हुआ था। पहली पत्नी से न पटने के कारण उसे प्रकाश 'बैचम्य' के संसार में छोड़कर प्रेमचन्द अपने माबी-जीवन को सुचारु ढंग से चलाने के लिये दूसरे विवाह की घोषणा करते हैं। इस मन स्थिति में विधवा को समस्या सबसे प्रथम रूप में उनके सामने थी। वास्तव में विधवा विवाह विधवाओं की समस्या के हल की दिशा में एक प्रभावशाली कदम है। प्रेमचंद क्योंकि 'विधुर' कथा में से उन्होंने विधवा-विवाह का निरवयव किया और धर्म बलकर नाम विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया जो सामाजिकदृष्टिकोण से तत्कालीन समाज में एक क्रांतिकारी बटना था। पहली पत्नी के मामले में मानिक रूपमा भेदते रहे।

अभिप्रेत और समाजगत जीवन में विधवा-समस्या का समाधान प्रेमचंद को करना पड़ा। इसी समस्या को उन्होंने प्रतिज्ञा में लिया। विधवा-समस्या ही प्रतिज्ञा की प्रमुख समस्या है। यद्यपि इसमें साम्प्रत्य-जीवन के धर्मिक पहलुओं पर भी प्रकाश डाला है। धर्मियों की समस्या को भी प्रस्तुत उपन्यास में स्पष्ट दिवा गया है यद्यपि कला-विकास की दृष्टि से उसकी कोई सावरयफला नहीं थी समाज पर साक्षात् नियम पर बानताप का भाषण धर्मियों के संबंध में ही है।

प्रेमचंद ने प्रतिज्ञा में विधवा-समस्या को शरत्चन्द्र की तरह मात्र प्रस्तुत ही नहीं किया है बल्कि उसके निराकरण के लिये उपाय भी प्रस्तुत किये हैं। सामाजिक-सुधार की भावना प्रेमचंद में सबसे अधिक थी। प्रतिज्ञा की सहीसा निश्चित औपन्यासिक रचनात्मक के सिद्धान्तों पर नहीं की जा सकती। उसमें विधवाओं के उद्धार की समस्या इसी प्रकार है कि अरिशाऊन 'अस्तु' विन्यास इत्यादि सभी उद्योग के अभिउत होकर आते हैं।

'सेवासदन' का रचनाकाल धनु १९१६ है। यह उपन्यास प्रेमचंद की प्रीक रचनाओं में से है। 'सेवासदन' समस्यामूलक उपन्यास है, जिसमें गारी-जीवन से सम्बन्धित समस्याओं को उपस्थित किया गया है, यथा—भारतीय गारी की पण बीनता बहू-यथा बैरवा-समाज आदि गारी-जीवन सम्बन्धी प्रवाल-समस्या के अतिरिक्त अन्य पहलुओं पर भी सेवासदन में प्रेमचंद ने विचार किया है जैसे नागरिक-जीवन किशान आदि।



'बड़े कमादार धपने का कायरे जानून बनाते हैं। प्रेमचन्द भी कायरे पढ़कर उपन्यास लिखने में बैठते थे। 'प्रेमाधम' में ही उन किताबों की जिम्मेदारी की तस्वीर खींचना चाहते थे जिन्हें साहित्य के मजबूत-धर्मों में बगड़ न मिलती थी। वे उस धरणाचार धोर धम्याय भी कहानी सुनाता चाहते थे जिसे उपक्रम उपसंहार प्रयोजन धोर उत्पत्ति की चर्चा करन जाने सम्मन धरसर मूम जाना करते थे। १

निःसन्देह प्रेमचन्द ने धपने उपन्यासों में शास्त्रीयता को कोई महत्व नहीं दिया है। पर कुछ ही धोर यह भी सच है कि उन्हींने कई नये कायरे-कानून भी नहीं पड़े। वे तो कथा के माध्यम से धपने समय की विभिन्न समस्याओं का उद्घाटन करना चाहते थे। 'उपन्यास उनका एक साधन था। सेकिन धाकर्षक कथा के धारेल में धाकर उन्हींने मूम समस्या को कहीं भी दृष्टिधेप नहीं किया। समस्या ही स्वयं में इतना धाकर्षक उत्पद्य कर बेती है कि धोपन्यासिक कथा के धन्य तत्व धाँचों से धोम्यत हो जाते हैं। समस्यामूमक धरन्यासकार होने के ही कारण प्रेमचन्द के उपन्यासों में तकाकबिध कथा के रसत नहीं होते।

'प्रेमाधम' में मूमि-समस्या से धात्रिरिक्त धन्य समस्याओं को भी सामने रखा गया है। सेकिन उनमें उत्सेहनीय हिन्दू-मुस्लिम ऐषय की समस्या ही है। हिन्दू धोर मुसलमानों के संघर्ष का कोई धाधिक सांस्कृतिक धरबा धामिक कारण नहीं है। साम्राज्यधारी शक्तिधों ने धरना उन्मू सीपा करने के उत्तरध से इस प्ररत को जटिल से जटिलतर बनाने के भरसक प्रयत्न किये। प्रेमचन्द ने 'प्रेमाधम' में हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष के मूल कारणों पर पधाँठ प्रकाश डाला है। इस प्रकार 'प्रेमाधम' हिन्दी-साहित्य में तरकासीत ज्वलत समस्याओं के प्रति एक नवीन दृष्टिधेप को सेकर हमारे सामने धाता है।

'निर्मला' का रचना-काल सन् १९९३ धोर प्रकाश-त्रिध सन् १९२७ है। 'निर्मला' एक धोटा उपन्यास है किन्तु समस्या के उद्घाटन धोर प्रधाव की दृष्टि से प्रेमचन्द के प्रथम-धेली के उपन्यासों में स है। प्रेमचन्द का यह पहला दुगाँउ उपन्यास है।

कुछ धासोचकों ने निर्मला को मनोबैज्ञानिक उपन्यास की कोटि में रना है, यद्यपि वे उसकी समस्यामूमकता को भी स्वीकार करते हैं। निर्मला की धरधया प्रेमचन्द के धन्य उपन्यासों से धधिक स्पष्ट है। डा० रामविशाम शर्मा ने 'निर्मला' में मनोबिज्ञान को प्रधातता बेते जाने धमीचकों के विधातों का धिरने धाव करते हुए विधा है "कल्याणी धोर सुधा बैती नारियों हिन्दी उपन्यासों धोर नाटकों को उन समान महिधाओं से जिन्न है जो धमिधारी पति क धरलों को धीनुषों के धर कर बेती है धोर उसके न्याय का प्रतिधार करने की धान भी नहीं सोचती। वे बिरोध का ध धरतु बाधु की देधियों से जिन्न है जो

प्रतिक्रमण करने में बुरा-बुरा कर मरना पसन्द करती है। लेकिन समाज का सुना विरोध नहीं करती। प्रेमचन्द अपने उपन्यासों में नए ढंग से नारी पात्रों को रच रहे थे जो धर्मग्रन्थ और सुख सहृदी हैं। लेकिन उनका विरोध भी करती है। यदि नारी बुरा-बुरा कर मरने और सामाजिक स्थापनों का विरोध न करे तो सुख भोग इसे बहुत गम्भीर मनोविज्ञान समझती है। वास्तव में उससे उनके सामाजिक संस्कारों को संशोधन होता है।<sup>१</sup>

'निर्मला' की प्रमुख समस्या नारी-समस्या है जिसके निम्नस्थिति का पट्टन है—बहूत्र प्रथा खोहानु से विवाह प्रथा बन्ध-विवाह, विवाहिता नारी की समस्या और विवाह-समस्या। इन सभी समस्याओं का केन्द्र बहूत्र-प्रथा प्रथा धार्मिक व्यवस्था है, जिसका नारी की धार्मिक पराधीनता से भी गहरा सम्बन्ध है। सामाजिक और धार्मिक ढाँचे को बदलने बिना वैवाहिक-समस्या सुलभ नहीं सकती। प्रेमचन्द ने प्रस्तुत उपन्यास में 'सेवासदन' प्रथा प्रेमचन्द की तरह समस्या का हल किसी धार्मिक व्यवस्था करके प्रस्तुत नहीं किया है। निर्मला मध्यवर्गीय हिन्दू-समाज की प्रतिनिधि दलित नारी बनकर हमारे सामने आती है, जिन उसकी समस्या वैयक्तिक नहीं है और न पूर्व की भाँति उसका कोई वैयक्तिक हल ही प्रेमचन्द ने सुझाया है।

'रंगभूमि' का प्रकाशन सन् १९२४-२५ में हुआ। अन्य उपन्यासों की भाँति रंगभूमि में भी समस्याएँ मिलेंगी। डॉ० राजरत्न भटनागर ने भी लिखा है 'वास्तव में 'रंगभूमि' में स्वतंत्रता-पूर्व भारत की सारी धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याएँ आ जाती हैं। ऐसी विराट् चित्रपट्टी भारतवर्ष के किसी उपन्यासकार ने प्रकृत नहीं की।<sup>२</sup> 'रंगभूमि' का वैयक्तिक विरोध है। इसमें सम्बन्ध नहीं लेकिन इसमें स्वाधीनता-पूर्व भारत की समस्त धार्मिक राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं का समावेश है, इस बात में पर्याप्त शक्ति रचना है। वास्तव में, रंगभूमि में दो समस्याएँ ही प्रथम हैं। एक तो प्रीतिमी करण की समस्या और दूसरी भारतीय विवाहों की समस्या। 'रंगभूमि' में इन दो ही समस्याओं पर प्रेमचन्द की दृष्टि केन्द्रित है। 'रंगभूमि' का समस्त कथानक इन्हीं समस्याओं की आधार बनाकर चला किया गया है। राजनीय चरित्र के धारकों को 'रंगभूमि' के कथानक तत्व में बुझताई दिया देती है।<sup>३</sup> नन्दबुलारे बाबेयों 'रंगभूमि' की वस्तु विवेचना करते हुए लिखत है—

'घोरा-घोरी बटनारों को लेकर सम्मेलन-सम्मेलन धर्मग्रन्थ लिखे गए हैं जिससे कथावस्तु धारणकता से धार्मिक सम्बन्धी हो गई है। समस्त मुख्य बटनारों को

१ प्रेमचन्द और उनका युग पृष्ठ ९०-९१

२ प्रेमचन्द धार्मिकनात्मक धर्मग्रन्थ पृष्ठ ११२

सँकर प्रस्तुत धाकार से धावे म साठ उपम्यास सिद्धा जा सक्ता था ।<sup>११</sup> प्रेम-  
चन्द जी ने क्या-क्या करते हुए इस संयमशीलता को ध्यान में नहीं रखा ।  
वे बहुत धनावरयक रीति से प्रामोद्य-घटनाओं का वर्णन करते गए हैं ।<sup>१२</sup>  
लेकिन प्रेमचन्द के लिए प्रामोद्य-घटनाओं का वर्धन-विस्तार धनावरयक नहीं  
जा बनू व तो प्रमूय मानकर चले हैं । यदि इन स्वर्गों को उपम्यास में से  
निकास दिया जाय तो उसकी समस्त परिभा ही जाती रहेगी । प्रेमचन्द का मूल  
तो यही ध्यननिहित है ।

रंगभूमि सन् २८ के आलोचन के पृथ सिद्धा गया है अत उत पर गांधीबारी  
दर्शन की स्पष्ट ध्या है । अतःहयोग के धावरों की ध्या सर्वत्र मिलती है ।  
श्री ममबलाय गुप्त ने 'रंगभूमि' पर एक नई दृष्टि नामक परिच्छेद में एक नई  
खोज की है । ऐसे वस्तु की खोज जिससे स्वयं लेखक-प्रेमचन्द धनचित्त थे ।  
तर्क के धाधार पर श्री ममब गुप्त के विचार स्पष्ट धीर मानने योग्य हैं  
लेकिन उनसे 'रंगभूमि' का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता क्योंकि प्रेमचन्द को  
गांधीबाय पर धास्वा भंग नहीं हुई थी । वे तो सन्धे धूरय से गांधीबारी धान्ता  
की धतिष्ठा कर रहे थे । प्रेमचन्द में वैचारिक मोड़ का धान्ना तो बायी धाने  
बनकर दिशाई देता है । हाँ यह कहा जा सकता है कि प्रेमचन्द गांधीबारी  
दर्शन को 'रंगभूमि' में सप्लत धीय से प्रस्तुत नहीं कर सके धीर इत धररत धठा  
होते हुए भी धनत्राम में धनैक धसंधतियों को विधित कर गये हैं । गुरराम  
धांधो के समान धति-धानधीय स्तर तक नहीं पहुँच सता है यधयि वह धनके  
धाधधिक निष्कट धवरय है । उते धांधो का लघु-नाँधररत मानने में तो धाई  
धाधाल नहीं हो सधती । ता कुछ धनत्राम में हुई धानधतियों के धाधार पर  
'रंगभूमि' में धाई धानोचक गांधीबारी-दर्शन की पराधय बाना है तो उनधी  
बुद्धि की धाँ तो भी जा सधती है उम पर विरधात नहीं दिया जा सधता ।  
इसको धधिक सधला के गामन एक-धी गुरय धाने धाई धधिक बरुध नहीं रघनीं  
कम-के-कम इना ता नहीं ही रघनीं सि उधध्याय के धाधार को ही धनत्र कर  
रता है । श्री ममबल गुप्त कधाकार प्रेमचन्द' में निधुने है 'त्रिध अयोध के  
निए धारा धधया धा बड़ तो बधी नहीं यदि बधती ता हय बधतेकि ही धालधन  
न कुछ धाल सिद्धा । प्रेमचन्द जी उधध्याय के धधिसम धध्याधों में यह दिधधार्थ  
है कि नबके नब धांधे धिार गय है । को-क्यों गजा को-धनीं । नाधय  
गम धानर का सधला सैधा है बधरधी विधी धधय गांधे में जाधर धरमगा है

१ प्रेमचन्द गांधीबारी-विधेधन पृध ७०-७१

२ यही

पृध ७१

धरों वही धोर। मैं यह नहीं कहता कि हार हर क्षेत्र में कुटी खोज है। नहीं जैसा कि किट्टक लोरेस ने कहा है 'बोर के साथ सड़ाई के बाद हार होती है वह उतन ही महत्व का तथ्य है अितना कि आसानी से प्राप्त होता। पर, पराजय के बाद यदि सड़ने वाले लोग एक कर बैठ जायें तो व्यवस्था ही वह पराजय किसी प्रकार अच्छी चीज नहीं कही जा सकती। यहाँ पराजय का अर्थ यह है कि नए अंग के कार्य करने के लिए स्फूर्ति तथा प्रोत्साहन की प्राप्ति नहीं पराजय का अर्थ संघर्ष के जीवन में एक नया पन्ना उलटना होता है ऐसी पराजय पर हमें आति की आवश्यकता नहीं। ऐसी पराजय तो विजय की लूचक तथा उसकी दृष्टिकोण परबूती मास है। ऐसी पराजय होते हुए भी हम कह सकते हैं नैतिक जीत हुई नैतिक जीत माने अत्यन्त से जीत नहीं बल्कि नैतिक जीत माने ऐसी हार जो जीत की प्राप्ति देती है।<sup>१</sup> उपर्युक्त एक का कोई अर्थ नहीं है। 'रंगभूमि की पराजय स्फूर्त रूप से जीत की प्राप्ति नहीं बँधाती बल्कि यह सारी पराजय पाठक को बनता जो क्या संदेश देती है? क्या यह उसको प्रेरित करता है? क्या मूर काम का बलिदान धारण-वत् प्रदान नहीं करता? इन प्रश्नों के उत्तर उपर्युक्त आलोचक की स्वापनाओं के विच्छेद आर्ये। अतः 'रंगभूमि की प्रेमचंद न गांधी बाबू का मन्त्रोत्तर उद्देश्य के लिए अथवा गांधीबाबू की निरपेक्षा प्रवृत्ति करन के लिए नहीं लिखा है बल्कि उस पर पूरी आस्था-व्यथा के साथ पटनाओं और चरित्रों को रच-रच दिया है। यह व्यवस्था है कि प्रेमचंद का व्यक्तित्व गांधीबाबू के बीच बन नहीं गया है। गांधीबाबू आदर्शवाद और प्रेमचंदबाबू अस्तुवाद दोनों समाजांतर विचारार्थ देते हैं। अतः 'रंगभूमि' को इसी दृष्टिकोण से परलना वैज्ञानिक होना और हम लेखक के साथ भी इस प्रकार टीक-टीक व्यास कर सकेंगे।

प्रेमचंद ने आत्मता अथवा 'कायाकल्प' सन् १९२० में लिखा। प्रस्तुत अथवा साधारण कोटि की कृति है। उस एक सीमा तक प्रगति-विरोधी अत्याम भी कहा जा सकता है, क्योंकि उसमें धार्मिक बलों का प्रकाश बहुत है। लेकिन 'कायाकल्प' में केवल धार्मिकता अथवा अमरकार ही नहीं है उसमें क्या है एवं और भी पढ़ने है, जो अनेक समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। भाग्य कि अन्तः बहुमता के कारण प्रेमचंद इस उपन्यास में समस्याओं का विचार से व्याख्या नहीं कर सके हैं, फिर भी उनका समावेश अथवा पूरा महत्व रखा है। कायाकल्प का अर्थ है वा प्रकाश की समस्याएँ पार्य जाती हैं—सांघातिक और विरुद्ध। विरुद्ध समस्या का कोई वैज्ञानिक व्यापार नहीं है अतः उसका अस्तित्व उपन्यास को निरसनी बना देता है। पूर्व-अर्थ पर प्रेमचंद का विरवास या इसे स्वीकार

नहीं किया जा सकता। पर स्वीकार किया थापना नहीं किता 'कामाकल्प की कर्मा से विरहित होता है वह प्रेमचन्द की पूर्व जन्म सम्बन्धी कारणाओं को व्यक्त करता ही है। इसे एक विरोधाभास भी कहा जा सकता है।

'कामाकल्प का सबसे सबसे मान सामयिक समस्याओं से सम्बन्ध रखता है। ये समस्याएँ सामाजिक राजनीतिक और साम्प्रदायिक क्षेत्रों की हैं। सामाजिक क्षेत्र में विवाह और प्रेम की समस्या प्रमुख है। राजनीतिक क्षेत्र में राजाओं और जागीरदारों की संस्कृति की वास्तविकता का उखाड़न करना मुख्य लक्ष्य है तथा साम्प्रदायिक क्षेत्र में हिन्दू-मुस्लिम समस्या है। इन समस्याओं पर प्रेमचन्द के विचार प्रस्तुत उपन्यास में अपहृ त्रपहृ बिचरे हुए हैं। यदि प्रेमचन्द इतमें प्रतीकिक-कथा वा समाकट नहीं करते ता यह उपन्यास भी उत्कृष्ट कालि वा समस्या प्रकाश उपन्यास बन गया होता।

मदन मनु १९३१ के सास-याग सिद्धा गया और माच १९३२ म घुवा। पं० मंजुपारे बाबुपेयी घपनी पुस्तक 'प्रेमचन्द साहित्यिक-विशेषता में मदन की मनीसा करने हुए लिखते हैं। इतमें प्रेमचन्द जी में सामाजिक और मनो-वैज्ञानिक समस्याओं को साध-साध प्रकलित किया गया है। रमानाथ और यासपा मदन-विवाहित हगानि है। रमानाथ यासपा से धरमधिक प्रेम करता है पर वह उल्ले घपनी वास्तविक स्थिति को सदैव छिपाता रक्षता है। वह उपन्यास का मनोवैज्ञानिक प्रेरणा मूल है। उनको सामाजिक पृष्ठभूमि यह है कि रमानाथ घपनी पानो की मन-बुद्धि के लिए घपने सामर्थ्य के बाहर जाकर मरने माता और ऐमे उपाया वा धाधय लेता है, जो उमे धर्मधमिक कठिन परिस्थितियों में शान देने है।<sup>१</sup> मदन में सामाजिक समस्या का स्वरूप तो नि-मन्दर हाष्ट है पर उनम को<sup>२</sup> मनो-वैज्ञानिक समस्या नहीं है। जिस मनोवैज्ञानिक समस्या की घोर पं० मंजुपारे बाबु पेयी भी मे संकेत किया है वह सामाजिक समस्या का ही एक घम है। वा राम एतम अटनापर मे हनी बात को कुछ धमिक गुमने एव में व्यक्त किया है। मदन प्रेमचन्द वा अन्तिम सामाजिक उपन्यास है और कता एवं दुष्टिच्छेड की परिष्कणता को बृद्धि मे वह उनके मारे सामाजिक उपन्यासों में घेष्टनम है। हमने एग उप न्याग को मरने की दु-खिरी कहा है परन्तु कहानी का मूल बिषय मही होन पर भी समस्या का यह रूप एक धरमधर व्याकट समस्या वा ही घम है। यह समस्या है, बग बन घमन्मनन। मरने अर्थ-येलगा के ही प्रतीक है। हमारे एग पुरोवारी समाज की मारी व्यकता बग की विभिन्नता पर हो धाधित है।<sup>३</sup> वाताव में 'मदन मध्यवर्गीय समाज की समस्या वा उपन्यास है। मध्यवर्गीय परिवारों में जो रिवाज

११ प्रेमचन्द साहित्यिक विशेषता पृष्ठ ११८

२ प्रेमचन्द यानाचनारमक धम्मयन पृष्ठ १४१-४२

प्रश्नवा इकोनमा पाया जाता है, वह मूल में बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया गया है। उपन्यास में प्रारम्भ में गहने की समस्या को केन्द्र बनाकर मध्यवर्तीय भार तीव्र-भागी की समस्या का उद्घाटन किया है तथा घात में कसकते के बखान के प्रसंग में भारतीय स्वाधीनता की समस्या को पूरे मनोबोध से चित्रित किया गया है, धर्मेश्वरी-शासन में पुलिस के इन्फर्न्सों तथा की विद्वान्नाओं धारि का चित्रण उसके सम्पर्कत घाता है। इस प्रकार 'गहन' की समस्याएँ स्पष्ट हैं। 'गहन की विशेषता इस बात में भी है कि प्रेमचन्द इसमें घाने बृहिकोण के पथिक निष्क विचार देने हैं।

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द की प्रौढ़-कृति है, इतना रचना-काल सन् ३०-३२ का है। प्रेमचन्द जिस प्रारम्भिक के चरे में अभी तक प्रायः वे उसे छोड़कर घब पथ, क-भूमि में प्रवेश करते हैं। उनके भावी मोड़ का आघात 'कर्मभूमि' में मिलता है।

कर्मभूमि का कथानक बेविव्य पास है क्योंकि उसमें कई समस्याओं का प्रति पादन किया गया है। कथावस्तु के सौन्दर्य के सम्बन्ध में भी मननवताय गुप्त एक म्पन पर लिखते हैं स्वयं प्रेमचन्द भी तायर कमभूमि के कथानक को सिद्धि लता के सम्बन्ध में परिचित थे। उन्होंने जो घपन ४०० पन्ने के उपन्यास को पाँच भागों में बाँटा है, इससे हम सम्बन्ध में उनकी सज्जता बाहिर होती है।" १ स्पष्ट है, प्रेमचन्द के उपन्यासों में बाई जाने वाली रचनात्मक सम्बन्धी बुद्धिमानी लक्षण है। प्रेमचन्द उपन्यास के माध्यम से कई सुन्दर कहानी की कहना नहीं चाहने से प्रस्तुत सम्बन्धी घनेक समस्याओं की घोर भारतीय जनता को जायतक करना चाहते थे। कर्मभूमि में यदि कथानक सिद्धि है तो इसमें उनकी सज्जता पर को विवेक विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता। 'कर्मभूमि' को घेष्टता घबुल्लत ही बनी रक्षी है।

'कर्मभूमि' की मूल समस्या भी स्वाधीनता की समस्या है। घघुनों घोर किताबों की समस्याएँ उसी का ही घन बनकर घाती हैं। सैवधिकसम्बन्ध का भी उद्घाटन प्रस्तुत उपन्यास में किया गया है। इस प्रकार कर्मभूमि एक रास-नीतिक उपन्यास कहा जा सकता है।

पं० मधुसूदरे बाबूदेवी 'कर्मभूमि' के विचार-व्यय की विवेचना करने हुए लिखते हैं "कथानक के द्वारा प्रेमचन्द की म समय का विवगु तो सज्जता न किया किन्तु घातक के सम्पुन पथिक योजनाएँ नहीं घानों जिन्हें वह भावी घार्थ समाज को घुष्ट-भूमि मान लें।" २ स्पष्ट है उपन्यासकार विचारों के द्वारा मध्य का चित्रण यदि सज्जतापूर्वक कर रीता है तो यही उनकी सज्जता का सबसे बड़ा प्रमाय है। योजनाएँ प्रस्तुत करना कोई उनका घदिघार्थ तन्व नहीं

१ कथाकार प्रेमचन्द पृ० ४३०

२ प्रेमचन्द साहित्यिक विवेचन पृ० ११२

है। समय-विचित्र भी घनेक शास्त्रीय सीमार्थों को तोड़ कर करना पड़ता है। घोर यदि दोषनाथों का भी उसमें विचित्रत्व समावेश कर दिया जाये तब तो यह उपन्यास न खूबकर समाजशास्त्र या व्यवस्थाशास्त्र का पोषा ही बन जाए। इस प्रकार के धार्मिकक बहूँ उपन्यास-कथा की दुर्गर्ह बतते हैं, बहूँ भोजनार्थों की माँग भी करते हैं यह दृष्टिकोण स्वयं में विरोध मिये हुए है। 'कर्मभूमि' पाठक को सम्यग् विभिन्न समस्याओं पर सोचने के लिये विवश करता है। यह विवशता योजन-विचित्र से कहीं अधिक उपयोगी है। पूर्व परम्परा को तोड़कर प्रेमचंदने 'कर्मभूमि' को सच्चिद-से-सच्चिद पदार्थ से जाड़ने का प्रयत्न किया है।

योदान प्रेमचंद का अन्तिम पूर्ण उपन्यास है। इसका रचनाकाल सन् १९१६ है। 'योदान' में प्रेमचंद का दृष्टिकोण यथार्थवादी हो गया है। औपन्यासिक कौशल प्रस्तुत उपन्यास में सबसे अधिक है, किन्तु शास्त्रीय-पद्धति पर इसे भी नहीं परछाया या सफ़ाता।

'योदान' ग्रामीण जनता का महाकाव्य कहा जाता है। जिसमें उनमें ग्रामीण-जनता की विभिन्न समस्याओं पर ही लैसक की दृष्टि केन्द्रित है। 'बैठे बैठा जाय ता मोदान' की पृष्ठभूमि बड़ी ग्राहक है। उसमें खड़ी घोर ग्रामीण शर्तों जीवन का चित्रण है, तथा दोनों की समस्याएँ उसमें समाहित हैं। तबकि यदि बारीकी से देखा जाय ता खड़ी-जीवन का चित्रण ग्रामीण-जीवन से कुछ हटा हो नहीं मालूम पड़ता प्रस्तुत उठी के हनु औपन्यासिक कथा में स्थान रसाय है—यह सभी मीठि लचित ही जाता है।

'योदान' की मुख्य समस्या विज्ञान के सुता-जीवन की समस्या है। यद्यपि विज्ञान के जीवन के प्रत्येक पक्षों पर इस उपन्यास में प्रकाश डाला गया है किन्तु भी उसकी शूल-समस्या ही प्रमुख है। शूल के बोध के कारण भारतीय विज्ञान किम तरह पिन आया है यही योदान का केन्द्र बिन्दु है। होपी ऐसे ही विज्ञान का प्रतीक है।

'योदान' में प्रोफेसर मेहता प्रेमचंद के विचारों के बाहक है। प्रेमचंद कथा-विभाग के साथ-साथ घनेक समस्याओं पर प्रो० मेहता के मुख से मन्वी-मन्वी बकलाएँ भी दिखवाते चलते हैं। यदि प्रेमचंद का उद्देश्य केवल एक विज्ञान को कदापी निगता ही रहा होता तो कथा-विन्यास में उन रूपों की कोई पात्र शक्यता न होनी। वास्तव में वे स्थल योदान को महाकाव्यरव तक पहुँचाने में बड़े सहायक होने हैं। प्रेमचंद का व्यक्तित्व 'योदान' में भी घन उपन्यासों की तरह घाया हुआ है। काव्य कला को निमी रचना की श्रेष्ठता या लक्ष्यता की बसोही मानने वाला मीठक, इस प्रकार के रचना को मूल कर भी न रचता। मीठिन

प्रेमचन्द का ती मुख्य उद्देश्य समस्यियों को सामने रखना था इसीलिए उसे खालों पर उनकी प्रतिमा विशेष रूप से निहार कर हमारे सामने घाती है।

'मंगलसूत्र' प्रेमचन्द का अपूर्व उपन्यास है जो उनकी मृत्यु के १०-११ वर्ष परचात् प्रकाशित हुआ। 'गोदान' में प्रेमचन्द यथार्थवादी बन गये हैं। 'मंगलसूत्र' में हम उनके यथार्थवादी रूप का स्पष्ट वर्णन कर सकते थे किन्तु वह अपूर्व ही रह गया। बीछा भी प्रस्तुत उपन्यास सामने आया है उसको देखते हुए यह अनुमान लगाना था सकता है कि उसकी प्रमुख समस्या वैवाहिक होती है। पुष्पा और लक्ष्मण के साम्प्रत्य-जीवन का असंतोष प्रारम्भिक पृष्ठों में मिलता है। पुष्पा नाटी-नाटि की स्वतंत्रता और अधिकारों की समझक है। वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित विचारों का प्रथम संभवतः इसमें मूल्यपूर्ण स्थान रखा किन्तु अपूर्व कृति पर परफुल्ल वा संभावनाओं के आधार पर कुछ अधिक नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकार प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में किसी-न-किसी समस्या को प्रमुख स्थान मिला है जहाँ उनके प्रायः सभी उपन्यास समस्या प्रधान यथार्थ समस्या मूलक उत्पन्न हैं। कथानक के धारक समस्याओं का समावेश नहीं करते बल्कि समस्याओं को उपस्थित करने के लिए कथानक को गढ़ते हैं। चरित्र-चित्रण के लिए उनके उपन्यास नहीं लिखे गये बल्कि समस्याओं के उदात्त विकसित और हम हेतु पात्रों का उन्नत तथा चरित्र-चित्रण हुआ है। यथा विकसित करण के लिये वे संघर्षों को नहीं रखते बल्कि समस्याओं का स्वरूप प्रकट करने के लिए पात्रों के मुख से बनेक बातें कहलाते हैं। यद्यपि प्रेमचन्द के उपन्यास को समझने के लिये बड़ी वास्तविक व्याचार है। व्याचार की धार ध्यान न देकर यदि कोई आलोचक अन्य मानदण्डों से उनके उपन्यासों की परीक्षा करता है तो वह नलज बुद्धिबल प्रयत्नात् है। उसकी आभाषना का निष्कर्ष मही होगा कि प्रेमचन्द प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार नहीं हैं जबकि वे ज्ञान-समुदाय में दिन-पर-दिन लोकप्रिय होते जा रहे हैं। यदि वे एक उपन्यासकार नहीं होते तो वह लोकप्रियता मिलनी दुर्लभ होती। जब पूछा जाय तो प्रेमचन्द के उपन्यास केवल उपन्यास ही नहीं वे उपन्यास से कुछ अधिक हैं।

प्रेमचन्द के उपन्यासों में कटई गई प्रमुख समस्याओं के इन पथविचार से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उनके प्रायः सभी उपन्यास समस्यामूलक हैं। यह तथा उनके उपन्यासों को समीक्षा करते समय ध्यान में रखना निम्नलिखित आवश्यक है यथार्थ प्रेमचन्द को समझने में ही हम धूम नहीं करेंगे प्रस्तुत उनके उपन्यासों के प्रति भी उचित स्वाय नहीं कर पाएँगे।

प्रेमचन्द और अन्य विरहविख्यात उपन्यासों में यही मन्त्र बड़ा उत्तर है कि बड़ी धन्य प्रथम श्रेणी के उपन्यासकार चरित्रचित्रण की कला में अद्वितीय हैं।







वहाँ प्रेमचंद समस्या के उपस्थित करने, उसका पूर्णरूपेण उद्घाटन करने और उसका हल सुझाने में सम्यक्तम है। यदि प्रेमचंद के उपन्यासों की परछाईं चित्रांकन के दृष्टिकोण से की जायगी तो वे चित्र-चित्राण्ड उपन्यासकारों की प्रथम-श्रेणी में स्थान नहीं पा सकेंगे। इस बात को स्वीकार करने में कोई हानि मानना वा घृणा भव हमें नहीं करना चाहिये। चित्र-चित्राण्ड में प्रेमचंद कहानियों में मिलने सफल हुए हैं अपने उपन्यासों में वहीं। अन्वय रूप में, जो चार औपन्यासिक पात्रों के सख्त चित्रांकन का उल्लेख कर देने मात्र से उसकी समन्वयकता पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ता।

प्रेमचंद की औपन्यासिक-कला का सबसे उत्कृष्ट नमूना समस्यात्मक उत्पत्ति है, जिसके धारण पर हम प्रेमचंद की कृतियों पर गौरव कर सकते हैं और बिल्कुल माहित्य के सम्मुख उनकी अपारिपक्वता सिद्ध कर सकते हैं।

